गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला-५४

मैथिलाभिनवकालिदासप्रणीतः

सकलरससारसङ्ग्रहः

सम्पादकोऽनुवादकश्च

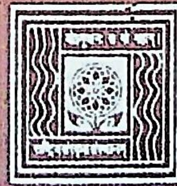
जनार्दनप्रसादपाण्डेयो "मणिः"

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझापरिसरः
(गङ्गानाथझा-अनुसन्धानसंस्थानम्)
प्रयागः
२०११

सकलरससारसङ्ग्रहः

(मैथिलाभिनवकालिदासप्रणीतः)

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ॰ जनार्दनप्रसादपाण्डेयो "मणिः"



गङ्गानाथझापरिसरः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)
आजादोद्यानम्, प्रयागः-211 002

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः
मानितविश्वविद्यालयः

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला
प्रसूनम् - 54
प्रधानसम्पादकः
डॉ. प्रकाशपाण्डेयः

मैथिलाभिनवकालिदासप्रणीतः

सकलरससारसङ्ग्रहः

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. जनार्दनप्रसादपाण्डेयो "मणिः"

गङ्गानाथझापरिसरः
(राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्)
प्रयागः-2
2011

Rashtriya Sanskrit Sansthanam
Deemed University
Under the auspices of the ministry of Human Resources Development,
Govt. of India

Ganganatha Jha Campus
Text Series
No. 54
General Editor
Dr. Prakash Pandey

Sakalrasasārsaṅgrahḥ

by Maithilābhīnavkālidas

Edited & Translated by
Dr. Janardanprasad Pandey "Mani"

Ganganatha Jha Campus
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Allahabad - 2
2011

सकलरससारसङ्ग्रहः

(मैथिलाभिनवकालिदासप्रणीतः)

सम्पादकोऽनुवादकश्च

डॉ॰ जनार्दनप्रसादपाण्डेयो "मणिः"



गङ्गानाथझापरिसरः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)

आजादोद्यानम्, प्रयागः-211 002

प्रकाशकः

प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

प्रथमं संस्करणम्

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् :

पृष्ठविन्यासकरः
ब्रह्मानन्द मिश्रः

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस
दारागंज, प्रयागः

प्राथमिकी

चन्द्रश्चन्द्रिकयेव श्रीशिवया मिलितः शिवः।
विघ्नाद्रिभेददम्भोलिर्विघ्नेशश्चास्तु भूतये।।

सारार्थदीपिकाया अभिज्ञानशाकुन्तलटीकायाः मङ्गलश्लोकः

सहर्षं प्रस्तूयते सहृदयानां विदुषां रञ्जनाय विद्यार्थिनामुपकाराय च मैथिलाभिनवकालिदासाख्येन केनचित्कविना प्रकल्पितः सकलरससारसङ्ग्रहाभिधः ग्रन्थः। नाम्ना कवेः सोत्साहवत्त्वं विद्वदभिमानित्वं कुलाभिमानित्वं च गम्यते। विविधमुक्तकप्रस्तावनयेन रसाभिव्यञ्जने समर्पितसंरम्भः ग्रन्थकृत् प्रस्तूयमाणं प्रस्तावं मङ्गलं कामयमानः देवस्तुति-शृङ्गार-हास्यादि-नानाविधकालान्योक्तिनीति-शान्तवर्णनाख्येषु प्रकरणेषु विभज्य प्रास्तौत्। ग्रन्थाभिधानेन कवेर्विवक्षा सिसाधयिषा वा रसमात्रवर्णनपर्यवसायिनी न प्रतीयते अपितु सकलत्वविशिष्टानतिविस्तरप्रकृतित्वे सति रसवर्णने अस्तीति प्रतीयते। सकलेति कलया सहितं, कलापदेन चाङ्गानां ग्रहणं स्यात्। तथा हि देवस्तुतिप्रकरणे वागुपासनानन्तरं वागुपासकानां लौकिकविबुधानां कालिदासादीनां महाकवीनां वस्तुनिर्देशप्रकारेण स्तुतिः विहिता ततश्चान्यासां देवतानां, तदङ्गत्वेन हि गङ्गादिव्यनद्यादीनां त्रिवेण्यादिस्थलानाञ्च। एवमेवशृङ्गारप्रकरणे तदङ्गानां, हास्यादिप्रकरणे शिष्टानां शान्तातिरिक्तानां रसानां साङ्गं वर्णनं विहितम्। कालवर्णनप्रकरणेऽपि तं रसाङ्गं कल्पयित्वा रसानुकूलानां प्रभातसन्ध्यारात्र्यादिकालविशेषानां वर्णनं दृश्यते। कविना शृङ्गारस्य रसेशत्वादादौ शान्तस्य च निःश्रेयस् साधनत्वाच्चरमे प्रकरणे प्रस्तावः कृतः। एवं प्रकारेण मुक्तकश्लोकात्मकस्य ग्रन्थस्योपस्थापनचातुर्यं कविना प्रदर्शितम्। अपि च ग्रन्थकलेवरोपस्थापनमात्रकुशलः कविरिति न रसवस्त्वलङ्कारसंयोजनेऽपि तस्य तथैव सिद्धतां पश्यामः। वर्णेषु प्रसादः शब्देषु संस्कारः अर्थेषु सुग्राह्यता वस्तूपस्थापनेषु स्वभाविकता अलङ्करणेऽकृत्रिमता सर्वत्रानुभूयते। कविः स्वयमेव पुष्पिकायां स्वशैलीं प्रकाशयति तद्यथा -

नानालङ्कारपूर्णा सुललितवचनन्यासतो व्यङ्ग्यमर्थ
सद्भावा बोधयन्ती मधुरनवरसोन्मीलिता नैकभङ्गिः।
दृक्पातादेव सद्यो रसिकजनमनस्याविशन्तीव सद्यो
मोदं केषां न कुर्यान्मम कृतिरपरा मोदिनीवाङ्गनेयम्।।

एतादृशस्य ग्रन्थस्य सम्यक् संस्करणं विधातुं परिसरस्य सह–आचार्यः डॉ. जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः' सोत्साहमुरीचकार। ग्रन्थस्यास्य अनन्यैव मातृका राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान–प्रयागपरिसरस्य मातृकागारे संरक्षिता वर्तते सापि लिपिकजन्यदोषैर्दूषिता वर्तते। तथापि ग्रन्थसंस्कर्त्रा साहित्यशास्त्रे कृतप्रभूतश्रमेण श्रीमता धीमता मणिना जनार्दनपाण्डेयेन सावधानेन दोषमार्जनं विधाय सविस्तृतभूमिकं सम्पादनमकारि तथा च पाठकानां सौकर्याय सान्वयो हिन्दीभाषानुवादोऽप्यकारि। अहं सप्रश्रयं डॉ. पाण्डेयमहोदयं साधुवचोभिराशीर्वचोभिश्च सम्भावयन् तोषमनुभवामि।

ग्रन्थस्य सम्यक्प्रकाशनव्यवस्थार्थं परिसरकार्यालयजनान् अकादमीमुद्रणालयजनान् टङ्ककं श्रीब्रह्मानन्दमिश्रं प्रति च साधुवादान् प्रकाश्य विरमामि।

प्रकाश पाण्डेयः
प्राचार्यः

प्रस्तावना

संस्कृतसाहित्य चिरन्तनकाल से ही अपनी विविध काव्यविधाओं में पल्लवित एवं पुष्पित होता रहा है। रस की अक्षय मन्दाकिनी संस्कृतकविता की समग्रयात्रा में प्रतिक्षण प्रवाहित होती रही है, जिससे सहृदय सामाजिक आनन्दित एवं सत्प्रेरित होता हुआ पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर जीवन सौभाग्य का अनुभव कर कृतकृत्य होता रहा है। "रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत्" अर्थात् "राम की तरह आचरण करना चाहिए, रावण आदि की तरह नहीं" यह शिवसन्देश संस्कृतकविता के वागर्थविग्रह से निरन्तर उद्भासित होता रहा है, जिसके कारण विश्वसाहित्य में संस्कृत साहित्य का अनुपम स्थान आज तक सुरक्षित बना हुआ है। विश्व की किसी भी भाषा का साहित्य संस्कृत साहित्य की बराबरी करने में समर्थ नहीं हो पा रहा है।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त विचार संस्कृतकविता की आदर्श रूपरेखा एवं लोकप्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। संस्कृतकविता इन्हें आत्मसात् किए हुए है इन्हें सँजोये हुए है तथा भविष्य में भी इन जीवनमूल्यों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सर्वात्मना प्रयत्नशील है। यही कारण है कि वेदों से लेकर आज तक के नित्यनूतन संस्कृतवाक्स्पन्दनों में आनन्दावाप्ति लोकरञ्जन एवं लोक मङ्गल के स्वर हरपल अभिगुञ्जित होते रहते हैं। संस्कृतसाहित्य की समूची लोकमङ्गलयात्रा का यदि सर्वेक्षण किया जाय, किं वा सम्पूर्ण साहित्य का यदि समीक्षण किया जाय तो यह निःसन्दिग्धरूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत का पञ्चानबे प्रतिशत साहित्य उपर्युक्त सद्भाव फलक पर ही विस्तारित किया गया है। उस साहित्य की मात्रा पाँच प्रतिशत है जो नितान्त वैयक्तिक होने के कारण समष्टि के प्रति थोड़ा सदाग्रह शून्य है, हाँ, दुराग्रह का वहाँ भी कोई अवकाश नहीं है। साहित्य शब्द का प्रयोग प्रकृतप्रकरण में व्यापक अर्थ में किया गया है। इसका आशय नियताक्षर एवं अनियताक्षरबन्धपरक (पद्यगद्यपरक) समग्र संस्कृत रचना संसार से है, जिसे हम लौकिकसंस्कृतसाहित्य की परिधि में देखते हैं। अस्तु ......।। प्रस्तुत सन्दर्भ में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृत साहित्य की इस शिवत्वापेक्षिणी पावन परम्परा में ऐसी कोई निरङ्कुश व्यवस्था नहीं बनायी गयी है कि संस्कृत का प्रत्येक कवि इसी

आदर्शकाव्यपथ का ही पथिक बने। नितान्त निर्वैयक्तिक लोकोपकारक मात्र मार्ग पर ही अपने वाग्वैभव के साथ प्रवृत्त हो। इस कथ्य में सब की सहमति है कि कवि स्वयं में स्वतन्त्र एवं निरङकुश होता है। इसीलिए तो संस्कृतसाहित्य भी वैविध्यपूर्ण काव्यार्थों से अभिमण्डित हुआ है।

कभी पौराणिक चरित्रों को लेकर अपनी प्रतिभा एवं कल्याणगर्भा कल्पनाओं के सहारे कवियों के द्वारा प्रबन्धकाव्य खण्डकाव्य एवं नाट्यादि की रचनाएँ की गयी हैं तो कभी ऐतिहासिक चरित्रों, नवीन चरित्रों, नितान्त नवीन चरित्रों एवं काल्पनिक चरित्रों को केन्द्र में रखकर भी गद्यकाव्यों, गीतिकाव्यों एवं महाकाव्यों की सर्जनाएँ हुई हैं। किसी विशेष कथा से पृथक् होकर किं वा कथा के व्याज एवं बन्धन से मुक्त होकर अन्योक्तिपर, नीतिपरक, देवस्तुतिपरक, नव-रस-भावाभिव्यञ्जनपरक, ऋङ्ऋतुवर्णनपरक, स्थानविशेषचित्रणपरक, व्यक्तिविशेषचाटूक्तिपरक, बहुविधकालप्रकृतिपरिचित्रणपरक, स्त्री-अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यसौन्दर्यनिरूपणपरक तथा प्रेमदैन्यकारुण्यनिवेदनपरक स्वतन्त्रकाव्यों एवं काव्यसङ्ग्रहों के निर्माण का सिलसिला भी कवियों द्वारा संस्कृत काव्य लोक में जारी रहा है। वर्तमान युग में तो संस्कृत का अत्यन्त जागरूक कवि समसामयिक विषयों, राष्ट्रिय एवं वैश्विक समस्याओं तथा सामाजिक राजनीतिक विशृङ्खलताओं को लक्ष्य कर काव्य लेखन मे जरा सा भी आलस्य एवं प्रमाद का अनुभव नहीं कर रहा है। उसकी लेखनी प्रतिक्षण चल रही है। उसकी भावनाओं का प्रवाह सतत प्रवहमान है। संस्कृत कविता की इस लोकाकर्षक एवं चित्ताह्लादक स्रोतस्विनी में सदैव युगीन गतिविधियाँ, सामाजिक परिदृश्य लोकव्यवहार, सतत परिर्वतनशील अभिरुचियाँ एवं मान्यताएँ बहती रही है। जिस किसी ने उसमें जो देखना चाहा है, जानना चाहा है उसे उसकी शक्ति एवं समझ के अनुसार वहाँ उसका सूक्ष्म अन्तः प्रत्यक्ष हुआ है। जीवन की सारी कुण्ठाओं को तो संस्कृतकवियों ने प्रायः पी लिया है, उगला है तो सिर्फ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के सन्तुलित आस्वाद को धारण करने वाला अमृत। इसीलिए संस्कृतकवितामन्दाकिनी अमृतावहा के रूप से जानी जाती है। संस्कृत कवि को यह सदैव याद रहा है कि उसकी लेखनी जिस कविता को लिखकर अनन्तकाल तक धन्य हो जायेगी वह कविता कोई और नहीं मात्र "सर्वमङ्गला" कविता है। उसका स्वरूप चाहे पद्यात्मक-गद्यात्मक हो किं वा प्रबन्धात्मक-खण्डात्मक -स्वतन्त्रसङ्ग्रहात्मक या फिर मुक्तक ही क्यों न हो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

संस्कृतकविता के सम्बन्ध में यह एक तत्त्व और भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृत कविता की मङ्गलयात्रा लोक से लोक तक सीमित एवं स्थूल नहीं, यह लोक से लोकोत्तरपर्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म है। इसकी पृष्ठभूमि मानुषी न होकर दैवी है। निरा भौतिक न होकर आध्यात्मिक है। जुगुप्सित यथार्थ भी संस्कृत कविता के आलोक में

अवलोकनीय एवं चिन्तनीय हो जाता है। इसकी प्रकृति समाधानमूलक है तथा तेवर उद्बोधनात्मक है। व्यष्टि में भी समष्टि की संवेदना है। मृत्यु में भी जीवन है। दुःखों के महोदधि में भी कहीं कोई आनन्द की तरङ्गमाला है। भोग में भी त्याग है। अभिलाषा में भी अनिच्छा है। जड़ में भी चैतन्य का आभास है। व्यक्ति कहीं भी अकेला नहीं है। उसके साथ सर्वत्र ब्रह्माण्ड का महानायक विद्यमान है। आस्था श्रद्धा एवं विश्वास की इस सांस्कृतिक विरासत को बिना समझे संस्कृतकविता का अन्तः साक्षात्कार सम्भव नहीं है। ब्रह्माण्ड का सारा रहस्य संस्कृतकविता के स्वरूप में रसरूप हो गया है। जिसका अन्तःकरण निर्मल है, वह सहृदय संस्कृत कविता के रस को जितना चाहे उतना पी सकता है, क्योंकि बुद्धिवाद एवं तथाकथित अन्य वादों में संस्कृतकविता आज तक बोझिल नहीं हो सकी है। यहाँ वह निरर्गल कृत्रिमता नहीं, निसर्ग रमणीयता है। बस एक बहुत बड़ा सा हृदय है, एक जमीनी किन्तु आकाशव्यापी अहसास है तथा कभी न समाप्त होने वाला लोकोत्तर आनन्द है॥

प्रस्तुत ग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" उपर्युक्त संस्कृतकवितावधूटी की ही मङ्गलयात्रा की कोई सुमधुर झङ्कृति है। जिसकी परम्परा में कहीं भर्तृहरि की "शतकत्रयी" है, तो कहीं शृङ्गारी कवि उत्प्रेक्षावल्लभ का "सुन्दरी शतक" है। कहीं जनार्दनभट्ट एवं नरहरी का शृङ्गारशतक है तो कहीं कामराज दीक्षित की शृङ्गारकलिकात्रिशती है। कहीं अमरुकशतक भल्लट शतक एवं विश्वेश्वरपाण्डेय का रोमावलीशतक है तो कहीं व्रजराजदीक्षित का षड्ऋतु वर्णन है। कहीं कुलशेखर की मुकुन्दमाला, वेदान्तदेशिक का पादुकासहस्र एवं वैङ्कटाध्वरि का लक्ष्मीसहस्र है। तो कहीं पण्डिराज की गंगा लहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी, एवं भामिनी विलास है। कहीं शम्भू कवि की अन्योक्तिमुक्तिलता है तो कहीं नीलकण्ठदीक्षित का अन्यापदेशशतक है। लोष्ठक कवि का दीनकुन्दनस्तोत्र भी "सकलरससारसङ्ग्रह" की पूर्व परम्परा को प्रतिष्ठित करता है, क्योंकि "सकलरससारसङ्ग्रह" में जहाँ एक ओर शृङ्गारादि नवरसों के भावाभिव्यञ्जक पद्य हैं तो वहीं दूसरी ओर नीति एवं अन्योक्ति के प्रभावोत्पादक श्लोक हैं। एक तरफ जहाँ ऋतुओं एवं ऋतुसन्धियों के वर्णन हैं तो दूसरी तरफ काल की अन्यविविध रागच्छटाओं के चित्र हैं। कहीं वाणी देवी, लक्ष्मी, गङ्गा एवं त्रिवेणी की स्तुतियाँ हैं तो कहीं कवि की वैयक्तिक अभिलाषाओं एवं क्रन्दनाओं की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार यह प्रकृतग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" अपने स्वरूप में विविध रागरङ्ग से सम्बन्धित पद्यों को धारण किए हुए हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकाल का पता नहीं चल सका है। अतः यह कहना असङ्गत है कि एतद्विषयविभूषित पूर्वोक्त कवियों की रचनाओं में कौन ग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" का पूर्ववर्ती है तथा कौन इसका परवर्ती है। इसीलिए पूर्व पर का ध्यान दिये बिना "सकलरससारसङ्ग्रह" की परम्परा में प्राप्त होने वाले ग्रन्थों का उपर्युल्लेख किया गया

है।

ज्ञातव्य है कि सकलरससारसङ्ग्रह की परम्परा में प्राप्त होने वाली संस्कृतरचनाओं में किसी एक ही विषय को लेकर श्लोक प्राप्त होते हैं। चाहे वे नीतिपरकश्लोक हों, अन्योक्ति परक हों, रसों में भी किसी एक रस से सम्बद्ध हों, ऋतुवर्णन मात्रपरक हों या फिर स्तुति परक हों, स्तुतियों में भी चाहे किसी एक देवता की स्तुति से जुड़े हों, किन्तु सकलरससारसङ्ग्रह में इन सर्वविध पद्यों का एक ही जगह सङ्ग्रह प्राप्त होता है, इसलिए "सकलरससारसङ्ग्रह" अपने आप में एक अनूठा एवं अद्वितीय ग्रन्थ प्रतीत होता है। महाकवि कालिदास ने भी "ऋतुसंहारम्" ग्रन्थ लिखा तो उसमें उन्हीं षड्ऋतुओं का ही वर्णन किया। अर्थात् वह भी एक विषय विशेष से सम्बधित ग्रन्थ प्रतीत हुआ, किन्तु "सकलरससारसङ्ग्रह" में कवि ने अनेक विध विषयों की हृद्य पद्यों में रसाभिव्यञ्जनपरक प्रस्तुति की।

"सकलरससारसङ्ग्रह" के रचयिता के रूप में इस ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण के अन्त में "मैथिलाभिनवकालिदास" यह नाम प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह कवि मिथिला में जनमा है। वहीं इसका पैत्रिक वंश है। तभी यह मैथिल है। कवि के पिता का नाम "रामकृष्ण" है। इस काव्य के प्रथम प्रकरण के अन्तिम श्लोक में कवि ने इसका उल्लेख किया है। यह अपने को अभिनव कालिदास कहता रहा होगा या फिर तत्कालीन समाज में इसे यह उपाधि प्राप्त हुई होगी, इसलिए यह कवि अपने को रचनाकार के रूप में इसी नाम से अभिहित करता है। यद्यपि यह कवि का नाम तो प्रतीत नहीं होता, हाँ इससे उसके वंश (जन्मस्थल) एवं कवित्व का परिचय अवश्य प्राप्त होता है। वैसे इस कवि का कवित्व तो इस ग्रन्थ के अवलोकन से स्पष्ट हो ही जाता है। अस्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ का सामान्यपरिचय अधोलिखित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" छः प्रकरणों में विभक्त है। जिनमें कुलमिलाकर ३१५ (तीन सौ पन्द्रह) श्लोक (पद्य) हैं।

१. ग्रन्थ का प्रथम प्रकरण "देवतास्तुति प्रकरण" है। इसमें पहले पहल मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया गया है। मङ्गलाचरण का श्लोक भगवती सरस्वती से सम्बन्धित है। इसके बाद भगवती सरस्वती से ही सम्बन्धित कुछ और श्लोक हैं। फिर कवियों की स्तुति एवं कालिदास की प्रंशसा से जुड़े श्लोक हैं। एतदनन्तर क्रमशः लक्ष्मी, देवी, गङ्गा एवं त्रिवेणी की स्तुतियों से जुड़े पद्य हैं। इस प्रकार इस प्रकारण में सब ८० (अस्सी) पद्य प्राप्त होते हैं।

ग्रन्थ का दूसरा प्रकरण "शृङ्गाररसप्रकरण" है। इसमें सम्भोग, अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, प्रवास, शाप, (शापहेतुक, शापप्रयोजक, उभयसङ्कीर्ण) प्रवासशापसङ्कीर्ण, भाव,

रसाभास एवं भावाभास शीर्षकों में तत्तद् विषयसम्बन्धित कुल ६५ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का तीसरा प्रकरण हास्यादि प्रकरण है। इसमें हास्यरस, करुण रस, रौद्ररस, वीररस, भयानकरस, वीभत्सरस, एवं अद्भुत रस की अभिव्यक्ति से जुड़े कुछ श्लोक हैं तथा कुछ श्लोक रौद्र-भयानक-हास्य-बीभत्स- करुणरस-सङ्कीर्ण हैं एवं कुछ श्लोक वीर-भयानक-रस-सङ्कीर्ण तथा शान्त-भयानक-अद्भुत-रस-सङ्कीर्ण हैं। इस प्रकार इस प्रकरण में कुल ३९ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का चौथा प्रकरण "नानाविधकालवर्णनप्रकरण" है। इसमें आरम्भ में काव्य एवं कविविषयक दो श्लोक हैं। तदनन्तर श्रृङ्गार हास्य, करुण, भयानक एवं रौद्ररसाभिव्यक्ति से जुड़े प्रभातवर्णन - मध्याह्नवर्णन - अपराह्णवर्णन- सन्ध्यावर्णन- अन्धकारवर्णन- तारावर्णन- निशीथवर्णन - शिशिरवसन्तसन्धिवर्णन- वसन्तवर्णन- वसन्तग्रीष्मसन्धिवर्णन- ग्रीष्मवर्णन - ग्रीष्मवर्षासन्धिवर्णन- वर्षावर्णन- वर्षाशरत्सन्धिवर्णन- शरद्वर्णन - शरद्हेमन्तसन्धिवर्णन- हेमन्तवर्णन - हेमन्तशिशिरसन्धिवर्णन एवं शिशिरवर्णनपरक श्लोक हैं। इस प्रकार इसप्रकरण में कुल ६१ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का पाँचवाँ प्रकरण अन्योक्तिनीतिप्रकरण है। इसमें अनेक प्रकार की अन्योक्तियों एवं नीतियों से सम्बन्धित कुल ५३ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का छठाँ प्रकरण शान्तरसप्रकरण है। इसमें शान्तरस की अभिव्यक्ति से जुड़े १५ श्लोक हैं।

छठों प्रकरणों की समाप्ति पर इस ग्रन्थ की पुष्पिका में ०२ श्लोक और प्राप्त होते हैं। जिनमें प्रथम श्लोक में कवि मैथिलाभिनवकालिदास अपनी कृति की प्रशंसा करते हैं तथा दूसरे श्लेक में श्रीविष्णु के नेत्रोन्मीलन को ही अपने काव्य का साधन स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि "सकलरससारसङ्ग्रह" अपने अन्दर विविधविषय विषयक भावसम्पत्ति को सँजोये हुए है। कवि मैथिलाभिनव- कालिदास की बहु आयामी प्रतिभा इस ग्रन्थ में प्रस्फुटित होती हुई दिखायी पड़ती है। इस ग्रन्थ के काव्य सौन्दर्य का संक्षिप्त रेखाङ्कन अधोलिखित पङ्क्तियों में द्रष्टव्य है।

१. 'सकलरससारसङ्ग्रह' इस ग्रन्थ का शीर्षकाभिधान है। इस शीर्षक से ही इस ग्रन्थ की केन्द्रीभूत मूलप्रकृति का पता चल जाता है। नवरसों एवं नवरसों की परस्पर सङ्कीर्णताओं (सम्पृक्तताओं) की जो चित्ताकर्षक अभिव्यक्तियाँ इस ग्रन्थ में हुई हैं वे इस ग्रन्थ को ध्वनिकाव्य के रूप में प्रतिष्ठापित करती हैं। ध्वनि में भी रसध्वनि की अद्भुत अभिव्यञ्जना इस काव्य को सुवासित करती है। ग्रन्थारम्भ में ही मङ्गलाचरण के ठीक बाद के पद्य में उद्धृत कवि की गर्वोक्ति से भी इस बात का सङ्केत मिल जाता है। यथा -

है।

ज्ञातव्य है कि सकलरससारसङ्ग्रह की परम्परा में प्राप्त होने वाली संस्कृतरचनाओं में किसी एक ही विषय को लेकर श्लोक प्राप्त होते हैं। चाहे वे नीतिपरकश्लोक हों, अन्योक्ति परक हों, रसों में भी किसी एक रस से सम्बद्ध हों, ऋतुवर्णन मात्रपरक हों या फिर स्तुति परक हों, स्तुतियों में भी चाहे किसी एक देवता की स्तुति से जुड़े हों, किन्तु सकलरससारसङ्ग्रह में इन सर्वविध पद्यों का एक ही जगह सङ्ग्रह प्राप्त होता है, इसलिए ''सकलरससारसङ्ग्रह" अपने आप में एक अनूठा एवं अद्वितीय ग्रन्थ प्रतीत होता है। महाकवि कालिदास ने भी "ऋतुसंहारम्" ग्रन्थ लिखा तो उसमें उन्हीं षड्ऋतुओं का ही वर्णन किया। अर्थात् वह भी एक विषय विशेष से सम्बधित ग्रन्थ प्रतीत हुआ, किन्तु "सकलरससारसङ्ग्रह" में कवि ने अनेक विध विषयों की हृद्य पद्यों में रसाभिव्यञ्जनपरक प्रस्तुति की।

"सकलरससारसङ्ग्रह" के रचयिता के रूप में इस ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण के अन्त में "मैथिलाभिनवकालिदास" यह नाम प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह कवि मिथिला में जनमा है। वहीं इसका पैत्रिक वंश है। तभी यह मैथिल है। कवि के पिता का नाम "रामकृष्ण" है। इस काव्य के प्रथम प्रकरण के अन्तिम श्लोक में कवि ने इसका उल्लेख किया है। यह अपने को अभिनव कालिदास कहता रहा होगा या फिर तत्कालीन समाज में इसे यह उपाधि प्राप्त हुई होगी, इसलिए यह कवि अपने को रचनाकार के रूप में इसी नाम से अभिहित करता है। यद्यपि यह कवि का नाम तो प्रतीत नहीं होता, हाँ इससे उसके वंश (जन्मस्थल) एवं कवित्व का परिचय अवश्य प्राप्त होता है। वैसे इस कवि का कवित्व तो इस ग्रन्थ के अवलोकन से स्पष्ट हो ही जाता है। अस्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ का सामान्यपरिचय अधोलिखित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" छः प्रकरणों में विभक्त है। जिनमें कुलमिलाकर ३१५ (तीन सौ पन्द्रह) श्लोक (पद्य) हैं।

१. ग्रन्थ का प्रथम प्रकरण "देवतास्तुति प्रकरण" है। इसमें पहले पहल मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया गया है। मङ्गलाचरण का श्लोक भगवती सरस्वती से सम्बन्धित है। इसके बाद भगवती सरस्वती से ही सम्बन्धित कुछ और श्लोक हैं। फिर कवियों की स्तुति एवं कालिदास की प्रंशसा से जुड़े श्लोक हैं। एतदनन्तर क्रमशः लक्ष्मी, देवी, गङ्गा एवं त्रिवेणी की स्तुतियों से जुड़े पद्य हैं। इसं प्रकार इस प्रकारण में सब ८० (अस्सी) पद्य प्राप्त होते हैं।

ग्रन्थ का दूसरा प्रकरण "शृङ्गाररसप्रकरण" है। इसमें सम्भोग, अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, प्रवास, शाप, (शापहेतुक, शापप्रयोजक, उभयसङ्कीर्ण) प्रवासशापसङ्कीर्ण, भाव,

रसाभास एवं भावाभास शीर्षकों में तत्तद् विषयसम्बन्धित कुल ६५ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का तीसरा प्रकरण हास्यादि प्रकरण है। इसमें हास्यरस, करुण रस, रौद्ररस, वीररस, भयानकरस, वीभत्सरस, एवं अद्भुत रस की अभिव्यक्ति से जुड़े कुछ श्लोक हैं तथा कुछ श्लोक रौद्र-भयानक-हास्य-बीभत्स- करुणरस-सङ्कीर्ण हैं एवं कुछ श्लोक वीर-भयानक-रस-सङ्कीर्ण तथा शान्त-भयानक-अद्भुत-रस-सङ्कीर्ण हैं। इस प्रकार इस प्रकरण में कुल ३९ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का चौथा प्रकरण "ऩानाविधकालवर्णनप्रकरण" है। इसमें आरम्भ में काव्य एवं कविविषयक दो श्लोक हैं। तदनन्तर श्रृङ्गार हास्य, करुण, भयानक एवं रौद्ररसाभिव्यक्ति से जुड़े प्रभातवर्णन - मध्याह्नवर्णन - अपराह्नवर्णन- सन्ध्यावर्णन- अन्धकारवर्णन- तारावर्णन- निशीथवर्णन - शिशिरवसन्तसन्धिवर्णन- वसन्तवर्णन- वसन्तग्रीष्मसन्धिवर्णन- ग्रीष्मवर्णन - ग्रीष्मवर्षासन्धिवर्णन- वर्षावर्णन- वर्षाशरत्सन्धिवर्णन- शरद्वर्णन - शरद्हेमन्तसन्धिवर्णन- हेमन्तवर्णन - हेमन्तशिशिरसन्धिवर्णन एवं शिशिरवर्णनपरक श्लोक हैं। इस प्रकार इसप्रकरण में कुल ६१ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का पाँचवाँ प्रकरण अन्योक्तिनीतिप्रकरण है। इसमें अनेक प्रकार की अन्योक्तियों एवं नीतियों से सम्बन्धित कुल ५३ श्लोक हैं।

ग्रन्थ का छठाँ प्रकरण शान्तरसप्रकरण है। इसमें शान्तरस की अभिव्यक्ति से जुड़े १५ श्लोक हैं।

छठों प्रकरणों की समाप्ति पर इस ग्रन्थ की पुष्पिका में ०२ श्लोक और प्राप्त होते हैं। जिनमें प्रथम श्लोक में कवि मैथिलाभिनवकालिदास अपनी कृति की प्रशंसा करते हैं तथा दूसरे श्लेक में श्रीविष्णु के नेत्रोन्मीलन को ही अपने काव्य का साधन स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि "सकलरससारसङ्ग्रह" अपने अन्दर विविधविषय विषयक भावसम्पत्ति को सँजोये हुए है। कवि मैथिलाभिनव- कालिदास की बहु आयामी प्रतिभा इस ग्रन्थ में प्रस्फुटित होती हुई दिखायी पड़ती है। इस ग्रन्थ के काव्य सौन्दर्य का संक्षिप्त रेखाङ्कन अधोलिखित पङ्क्तियों में द्रष्टव्य है।

१. 'सकलरससारसङ्ग्रह' इस ग्रन्थ का शीर्षकाभिधान है। इस शीर्षक से ही इस ग्रन्थ की केन्द्रीभूत मूलप्रकृति का पता चल जाता है। नवरसों एवं नवरसों की परस्पर सङ्कीर्णताओं (सम्पृक्तताओं) की जो चित्ताकर्षक अभिव्यक्तियाँ इस ग्रन्थ में हुई हैं वे इस ग्रन्थ को ध्वनिकाव्य के रूप में प्रतिष्ठापित करती हैं। ध्वनि में भी रसध्वनि की अद्भुत अभिव्यञ्जना इस काव्य को सुवासित करती है। ग्रन्थारम्भ में ही मङ्गलाचरण के ठीक बाद के पद्य में उद्धृत कवि की गर्वोक्ति से भी इस बात का सङ्केत मिल जाता है। यथा -

मदीयेऽस्मिन् वाणीविरचनकलाकौशलविधौ
ध्वनीभूतं किञ्चिन्मृगयतु रसज्ञो बुधजनः।
सुधाधारासारैरिव हृदयतोषोत्थितवचो-
विलासैरानन्दं जनयतु न वायं मम पुनः ।।

सकलरससारसङ्ग्रह, देवतास्तुतिप्रकरण पद्य सं. २

अर्थात् रसज्ञ बुधजन यहाँ कुछ ध्वनीभूत को ढूँढ़े। इस गर्वोक्ति में भी एक विलक्षण प्रकार की शिष्टता एवं विनम्रता है। कवि का प्रबल आत्मविश्वास भी इस पद्य में अभिव्यञ्जित होता है, किन्तु अपने काव्य के आभ्यन्तर बाह्य सर्वविधसौन्दर्य को कवि ग्रन्थ के षठ् प्रकरणों के समापन के अनन्तर इस की पुष्पिका में बड़ी सुन्दर शैली में बड़ी दृढ़ता के साथ व्यक्त करता है। यथा -

नानालङ्कारपूर्णा सुललितवचनन्यासतो व्यङ्ग्यमर्थं
सद्भावा बोधयन्ती मधुरनवरसोन्मीलिता नैकभङ्गिः।
दृक्पातादेव सद्यो रसिकजनमनस्याविशन्तीव सद्यो
मोदं केषां न कुर्यान्मम कृतिरपरा मोदिनीवाङ्गनेयम्।।

-सकलरससारसङ्ग्रह, पुष्पिका पद्य सं. १

अर्थात् नाना प्रकार के अलङ्कारों से पूर्ण सुन्दर भावों वाली, सुललित वचनन्यास से व्यङ्ग्यार्थ को प्रकाशित करती हुई, अनेकभङ्गिमाओं वाली, मधुर एवं नवरसों से उन्मीलित, सद्यः नजर डालने से ही रसिक जनों के मन में मानो प्रवेश करती हुई मेरी यह बेजोड़ (अद्वितीय) कृति (नायिका पक्ष में) नाना प्रकार के आभूषणों से परिपूर्ण, अनुकूल भावों वाली, सुन्दरमधुर वचन प्रयोग से वोद्धव्यवैशिष्ट्यानुरूप सहृदयरामणीयक विलक्षण अर्थ का अवबोध कराती हुई, अनेक विच्छित्तियों (वाग्विच्छितियों एवं नेत्रविच्छितियों) वाली, मधुर एवं नित्यनवीन कामोन्मादयुक्त शृङ्गाररसाभिव्ञ्जन हेतु आँखों को खोले हुए सद्यः नेत्रकटाक्ष से ही कामिजनों के मन में मानों उतरती हुई (प्रवेश करती हुई) आनन्दित करने वाली नायिका की भाँति किसके चित्त का अनुरञ्जन नहीं करेगी या किसके चित्त को आनन्दित नहीं करेगी? किं वा यह सब के चित्त को आनन्दित करे।

कवि यहाँ "कुर्यात्" पद का प्रयोग करता है। यह डुकृञ् धातु के आशीर्लिङ् प्रथमपुरुष एक वचन का रूप है। इससे ऐसा लगता है कि जैसे कवि अपनी रचना को सहृदयहृदयाह्लादकत्व का आशीष देता है। काव्य की समस्त विशेषताएँ कवि के ही शब्दों में उसके काव्य में विद्यमान है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि "सकलरससारसङ्ग्रह" काव्य अलंकारों रसों एवं व्यङ्ग्यार्थों (ध्वनिकाव्यतत्त्वों) से सर्वात्मना माण्डित है। इस काव्य के कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं जिनमें काव्य तत्त्वों की एक वानगी देखी जा सकती है।

१. उदाहरण (संयोगशृङ्गार) -

अन्योन्यं नयनान्तपातपरयोरन्योन्यमुन्मीलितै-
र्हासैः कुन्दकदम्बपूरितमिवावासं भृशं कुर्वतोः।
अन्योन्यं पुलकाङ्कुरैः कवलितां गण्डस्थलीं बिभ्रतोः
शृङ्गारार्णवपारतारणविधिर्यूनोः क्रमेणाभवत्।।

-सकलरससारसङ्ग्रह, शृङ्गाररसप्रकरण पद्य सं. ०२

२. उदाहरण - (विप्रलम्भशृङ्गार)

शून्यं लीलागृहं तत्प्रणयविनयतो मन्मुखेनैव तादृग्
वाचो भङ्गिर्न तस्या गतिरपि मधुरा या पुरा मे पुरस्तात्।
सा दूती नैव तादृग्वचनविरचनं कर्तुमायाति कोऽयं
देहे प्राणानुबन्धो दलति न हृदयं हन्त कस्मादिदं नः।।

-सकलरससारसङ्ग्रह, शृङ्गाररसप्रकरण पद्य सं. ३३

इसी प्रवीणता के साथ अन्य अष्टरसों की भी अभिव्यञ्जनाएँ हैं जिन्हें तत्तत् रस प्रकारणों में देखा जा सकता है।

३. उदाहरण (प्रकृतिचित्रण) सन्ध्यावर्णन -

आशानां तिमिरावगुण्ठनमभून्मध्ये धराकाशयो -
र्न ज्योतिर्न तमोऽपि धूम्रमभवत्सर्वं नभोमण्डलम्।
सारङ्गा वनवीथिकान्तरगता रोमन्थमारेभिरे
शार्दूला गिरिगह्वराद् गलगलद्जिह्वादला उत्थिताः।।

- सकलरससारसङ्ग्रह, नानाविधकालवर्णन, पद्य सं. १३

४. उदाहरण (वसन्तवर्णन) अनुप्रासअलङ्कार, उत्प्रेक्षाअलंकार. माधुर्यगुण

आबद्धा पद्मरागैरिव विविधतरुश्रेणयस्ताम्रपत्राः
कुत्रापि प्रौढपुष्पोत्करमधुरमधुस्त्रोतसां नो विरामः।
भ्राम्यद्भृङ्गावलीनां रणितमपि पिकीकाकलीकामिनीनां
काञ्चीझङ्कारभारो जनयति मदनाद्वैतसाम्राज्यलक्ष्मीम्।

- सकलरससारसङ्ग्रह, नानाविधकालवर्णन. पद्य सं. २३

५. उदारहण (अन्योक्ति) -

एकस्मिन् गिरिगह्वरे निवसतिश्चैवैव जातिस्ततो
मा खड्गादिचतुष्पदा मृगपतौ स्पर्धां कुरुष्व ध्रुवम्।
भिन्नोऽयं किल कोऽपि यत्खरनखव्याघातभिन्नद्विपि-
व्रातोन्मुक्तविशालमौक्तिकफलैराशङ्किंतेयं मही।।

–सकलरससारसङ्ग्रह, अन्योक्तिनीतिप्रकरण पद्य सं. ४

६. उदाहरण (नीति)

वैराग्यं दृढमस्ति चेकिमु जनासङ्गैः श्मशानेन किम्
चेदन्तस्तरलायमानमखिलं प्रीतिर्न चेत्किं गुणैः।
वैदेश्यैः किमु नो यदुद्यमविधिर्धैर्येण चेत्किं महद्-
व्यापारैरुपकारिता यदि न तद्रूपप्रसादेन किम्।।

–सकलरससारसङ्ग्रह, अन्योक्तिनीतिप्रकरण, पद्य सं. ३९

७. उदाहरण (अद्भुतरस)

अहो पाणिरहोवक्त्रमहो कुक्षिरहोऽनलः।
अगस्तेरम्बुधिर्यस्याचमतोऽभवद्खारिः॥

– सकलरससारसङ्ग्रह, हास्यादिप्रकरण, पद्य सं. ३८

८. उदाहरण (शान्तरस)

सुशीतायां सीतातटभुवि विगीताखिलरसः
परीतापं हित्वा परमलयनीतामपि मतिम्।
विधाय त्वं गीताभ्यसनपरिपीतां वरगुण-
प्रकाशेन स्फीतामिह कलय सीतापतिपदम्॥

– सकलरससारसङ्ग्रह, शान्तरसप्रकरण, पद्य सं. ८४

९. उदाहरण (लक्ष्मी से दुःखनिवारणहेतु प्रार्थना) ध्वनिकाव्य

दुःखैरेव दृढीकृतं यदि हृदम्भोजे पदं मामके
तत्त्वत्केलिसरोजसद्मनि पदं धत्ते हठान्मे मतिः।
एतच्चेदरविन्दवासिनि! तव क्लेशावहं जायते
तद् दूरीकुरु दुःखदारुणपदं मच्चेतसः सत्वरम्।।

– सकलरससारसङ्ग्रह, देवतास्तुतिप्रकरण, लक्ष्मीश्लोक, पद्य सं. ३४

१०. उदाहरण (भगवती के चित्त में उद्भूत करुणा में ही संसार सागर तारिणी नाव की कवि द्वारा अनुभूति)

मातस्त्वां प्रणमामि यामि बहलक्लेशाब्धिपारं क्षणा-
दित्याशाशतमांसलेन मनसा त्वामेव वन्दे पुनः।।
तत्र त्वत्करुणैव तारणकरी काचित्तरी राजते
सत्कर्मोदयनाविकः पुनरसौ तस्यां जरीजृम्भते।।

–सकलरससारसङ्ग्रह, देवतास्तुतिप्रकरण, देवीश्लोक, पद्य सं. ५५

११. उदाहरण (कवि द्वारा प्रयाग (त्रिवेणी) के निर्मल प्रवाहों से पवित्र होने की कामना)

मुक्तिस्त्रीकण्ठहाराः किमु सकलमनोराज्यसङ्कल्पसिद्धाः
संशुद्धाः कल्पवृक्षाः किमु विषमयमत्रासपाशे कुठाराः।
ब्रह्मानन्दैककन्दाः कलुषकुलमहारण्यदावानलाभाः
पायासुर्मां प्रयागाहितविमलजला निर्मलास्ते प्रवाहाः।।

–सकलरससारसङ्ग्रह, देवतास्तुतिप्रकरण, त्रिवेणीश्लोक, पद्य सं. ७५

इस प्रकार इन उपर्युक्त उदाहृत पद्यों में विद्यमान काव्यसौष्ठव, काव्यसौष्ठव के आधायक तत्त्वों की प्रयोगिकमूर्च्छना एवं सुन्दर भावाभिव्यञ्जना में "सकलरससारसङ्ग्रह" काव्य के काव्यसौन्दर्य का संकेत मिल जाता है। देवतास्तुति प्रकरण में कवि मैथिलाभिनवकालिदास ने अपने दुःख दैन्य एवं सन्ताप से आकुल अन्तः करण को भगवती लक्ष्मी, देवी पार्वती एवं गङ्गा के समक्ष खोल कर रख दिया है। इन देवताओं के ऐश्वर्य एवं माहात्म्य को बड़ी गम्भीरता के साथ प्रस्तुत करते हुए अपने दासत्व की दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठा की है। नवरस-विविधसङ्कीर्णरस-षड्ऋतु-ऋतुसन्धि-एवं कालादिक वर्णनों में कवि की प्रतिभा का वैलक्षण्य देखने को मिलता है तो अन्योक्ति-नीतिवर्णनों में उसकी लोकसर्वेक्षणकला का साक्षात्कार होता है।

भाषा पर सकलरससारसङ्ग्रहकार मैथिलाभिनवकालिदास का असाधारण अधिकार है। विषयानुसार एवं रसानुसार कोमलकान्तपदशय्या एवं कठोरपदशय्या का निर्माण करने में कवि की कुशलता के दर्शन होते हैं। माधुर्य गुण ओजो गुण एवं प्रसादगुण जहाँ आवश्यक हैं, वहाँ कवि ने उन्हें अपने काव्य में उतारा है।

इस सन्दर्भ में एक बात विशेष रूप से कथनीय है कि भाषा पर पाण्डित्य को धारण करता हुआ तथा उसे बार बार प्रमाणित करता हुआ भी कवि अपाणिनीय प्रयोगों की गिरफ्त में आ गया है। ग्रन्थसम्पादक के रूप में मैने उनका संशोधन किया है। छन्द

बिगड़ने की स्थिति में टिप्पणी में उन्हें स्पष्ट कर दिया है।

छन्द की दृष्टि से कवि ने स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी एवं प्रमाणिका छन्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया है।

ग्रन्थ की समाप्ति पर लिखे गये अपने अन्तिम पद्य में कवि ने इस बात को स्वीकार किया है कि कविता में कहीं कहीं दोष हो ही जाता है, इसलिए जाग्रत्काव्य की समीक्षण बुद्धि से विद्वज्जन मन को व्यग्र नहीं करेंगे, क्योंकि उसकी समग्र कवितायात्रा में (काव्यव्यापारलीलाप्रवृत्ति में) नीलमेघ की भाँति सुन्दरकान्ति वाले भगवान् विष्णु के नेत्रों का उन्मीलन ही साधन (सङ्घटकतत्त्व) है। यथा –

कालुष्यं कवितासु कुत्रचिदपि स्यादेव नैवं जना
जाग्रत्काव्यविचारकौशलवशाद् व्यग्रं कुरुध्वं मनः।
एतस्मिन्नवकालिदासरचनाव्यापारलीलाविधौ
नीलाम्भोधरसुन्दरद्युतिदृशोरुन्मीलनं साधनम्।।

–सकलरससारसङ्ग्रह, पुष्पिका, पद्य सं. २

यहाँ कवि मैथिलाभिनवकालिदास अपने समग्र काव्य व्यापार को भगवान् विष्णु की कृपा का फल मानता है। अतः वह नहीं चाहता कि कोई उसकी कविता के दोषों से दुःखी हो, इस पद्य से एक ओर तो कवि की विनम्रता दिखती है कि उसका अपना है ही क्या किन्तु एक तरफ उसकी धृष्टता दिखती है कि कविता में कालुष्य (दोष) हो ही जाता है। यह कोई सत्य सिद्धान्त नहीं है। यह अपने को बचाने के लिए रचा गया एक वाक्प्रपञ्च मात्र है। ज्यादा अच्छा होता यदि कवि अपने प्रमाद वश किए गये दोषों के लिये क्षमा माँग लेता। अस्तु...।। ये सब बातें अपने स्थान पर हैं। लेकिन यह बात निःसन्दिग्ध रूप से कही जा सकती है कि यह "सकलरससारसङ्ग्रह" एक उत्कृष्ट काव्य है, इसमें कवि मैथिलाभिनवकालिदास की उत्कृष्ट प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति अभिप्रमाणित हुई है।

मैने मैथिलाभिनवकालिदासप्रणीत प्रस्तुत ग्रन्थ "सकलरससारसङ्ग्रह" का सम्पादन किया है। इसके प्रत्येक पद्य का अन्वय किया है तथा उसी क्रम से बड़ी स्पष्टता के साथ इसका हिन्दी अनुवाद किया है। पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखकर देवभाषा के इस काव्य को राष्ट्र भाषा में समझाने का प्रयास किया है। ग्रन्थ की एक ही मातृका के होने के कारण अशुद्धपाठों को शुद्ध करने, तथा अर्थसङ्गति के आधार पर अन्वय निष्पन्न करने में काफी काठिन्य का अनुभव हुआ है। पर्याप्त प्रयत्न के बाद समाधान प्राप्त हुआ है। अस्तु। मल्लिकाक्षवाहिनी भगवती सरस्वती की महनीय कृपा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। हृदय प्रतिक्षण माँ के इस अनुग्रह का अनुभव करता है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं अन्वयानुवाद की अनुमति प्रदान करने के लिए मैं राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के पूर्व-कुलपति प्रो. वैम्पट्टि कुटुम्ब शास्त्री के प्रति तथा प्रकाशन की अनुमति प्रदान करने के लिए संस्थान के वर्तमान कुलपति प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। निवेदन के अग्रसारण हेतु गङ्गानाथझा परिसर इलाहाबाद के पूर्व-प्राचार्य प्रो. गोपराजु रामा के प्रति तथा प्रकाशन कराने के लिए अपने वर्तमान प्राचार्य डॉ० प्रकाश पाण्डेय के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पाण्डुलिपि को उपलब्ध कराने के लिए तथा समय समय पर कार्य के प्रति उत्साहित करने के लिए मैं परिसर की सङ्ग्रहालयाध्यक्षा एवं सङ्ग्रहालय के अन्य कर्मचारियों प्रति भी अपना साधुवाद व्यक्त करता हूँ।

सम्पादन एवं अन्वयानुवाद में यदि कुछ कमियाँ प्रतीत हों तो विद्वज्जन उनका स्वयं परिष्कार कर मुझे क्षमा करने की कृपा करेंगे। यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर संस्कृतसाहित्य की किसी रिक्तता को भरेगा तो मैं अपने आप को कृतकृत्य अनुभव करूँगा।

भवदीय

जनार्दनप्रसादपाण्डेय 'मणि'

सम्पादक एवं अनुवादक

मातृकाविवरण

शीर्षक (ग्रन्थनाम)	-	सकलरससारसङ्ग्रहः
रचयिता	-	मैथिलाभिनवकालिदास
विषय	-	काव्य
सङ्ग्रहस्थान	-	राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, (मानितविश्वविद्यालय) गङ्गानाथझापरिसर, आजादपार्क, इलाहाबाद
आगम संख्या	-	३४२५६
आधार	-	कागज
लिपि	-	देवनागरी
पत्रसंख्या	-	१- ३९, पूर्ण
आकार	-	२४.५ ग १०.५ सें. मी.
प्रतिपत्रपङ्क्तिसंख्या	-	०९
प्रतिपङ्क्तिवर्णसंख्या	-	३५
मातृकासमय	-	सं. १८६६
लिपिकार	-	मुन्नीलालमिश्र वैद्य

प्रस्तुत सम्पादन इसी एक ही मातृका के आधार पर किया गया है। इसकी और कोई मातृका उपलब्ध नहीं हुई है। कैटलागस् कैटलागारम् एवं न्यू कैटलागस् कैटलागारम् में इस ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। ऐसी स्थिति में यत्र कुत्रचित् पाठ संशोधन में काफी कठिनाई का अनुभव हुआ है। अर्थान्वय एवं छन्द की दृष्टि से कहीं कहीं मेरे द्वारा लिपिगत दोषों का संशोधन किया गया है। उस संशोधित रूप को [ ] इस चिह्न के बीच रखा गया है।

-सम्पादक

देवतास्तुतिप्रकरणम्

श्रीगणेशाय नमः

सान्द्रानन्दवचःप्रपञ्चनरणन्मञ्जीरमञ्जुध्वनि -
वाणी नृत्यमहो करोति रसनारङ्गस्थले सत्कवेः।
यस्या एव नियोगपालनपरा संसारसारायितं
सेयं कापि नवीननीरदघटाकारा चिरं पातु वः।।१।।

अन्वय- अहो! सत्कवेः रसनारङ्गस्थले सान्द्रानन्दवचःप्रपञ्चनरणन्मञ्जीर- मञ्जुध्वनिः वाणी नृत्यं करोति। यस्याः एव संसारसारायितम्। सा इयं का अपि नियोगपालनपरा नवीननीरदघटाकारा वः चिरं पातु ।।१।।

अनुवाद-अरे! सत्कवि के जिह्वारूपी रङ्गस्थल पर प्रचुर आनन्दमय शब्दों के विस्तारण से बजते हुए मञ्जीर की तरह मञ्जुध्वनिवाली वाणी नृत्य करती है। जिससे ही संसार सारभूत है। वह यह कोई संसार का पालन करने वाली अभिनव बादल की घटा के सदृश आकार वाली (वाणी) तुम लोगों की रक्षा करे।।१।।

मदीयेऽस्मिन् वाणीविरचनकलाकौशलविधौ
ध्वनीभूतं किञ्चिन्मृगयतु रसज्ञो बुधजनः।
सुधाधारासारैरिव हृदयतोषोत्थितवचो-
विलासैरानन्दं जनयतु न वायं मम पुनः।।२।।

अन्वय- रसज्ञः बुधजनः मदीये अस्मिन् वाणी विरचनकलाकौशलविधौ किञ्चिद् ध्वनीभूतं मृगयतु। अयं पुनः सुधाधारासारैः इव हृदयतोषोत्थितवचो विलासैः मम आनन्दम् जनयतु वा न ।।२।।

अनुवाद-रसज्ञ बुधजन मेरी इस काव्यरचनाकौशलपद्धति में कुछ ध्वनिरूप (व्यङ्ग्यार्थ) को ढुँढ़वावें। यह फिर सुधाधारा की वर्षा की भाँति हृदयतोष से उठे हुए वाग्विलासों से मेरे आनन्द को उत्पन्न करे अथवा नहीं (इसकी कोई चिन्ता नहीं है)।।२।।

आस्ते बाणवचोविनोदनविधिः श्रीकालिदासानन-
क्रीडाकोमलभारतीविलसितं व्रीडा तथापीह मे।
सूक्तिस्त्रोतसि मज्जतो न भवति प्रायस्तदीहे गिरां
देवी लोकविमोहनक्षमविधिं जानाति कञ्चित्परम्।।३।।

अन्वय- बाणवचो विनोदनविधिः श्रीकालिदासाननक्रीडाकोमलभारतीविलसितम् आस्ते, तथापि गिरां सूक्तिस्त्रोतसि प्रायः मज्जतः मे व्रीडा न भवति। देवी कञ्चित् परं लोकविमोहनक्षमविधिं जानाति। तत् ईहे ।।३।।

अनुवाद-बाणभट्ट की वचनविनोदनविधि, श्रीकालिदास की मुखक्रीडा से कोमल भारती का विलास विद्यमान है, फिर भी वाणी की सूक्तिस्त्रोतस्विनी में प्रायः नहाते हुए मुझे लज्जा नहीं लगती। देवी (वाग्देवी) किसी श्रेष्ठ लोक को मोहित करने में समर्थ विधि को जानती है। उसी की कामना करता हूँ ।।३।।

कविर्भानुर्गोवर्धन [कवेर्भानोर्गोवर्धन] वदनमागत्य कुतुकं
कियद् वाणी लेभे तदनु जयदेवे विलसिता।
मुरारौ श्रीहर्षे बहुवचनविन्यासविविध-
प्रयासेन व्यस्ता तदनु बत कुत्रागमदियम् ।।४।।

अन्वय- कवेः भानोः गोवर्धनवदनम् आगत्य तत् अनु जयदेवे मुरारौ श्रीहर्षे विलसिता इयं वाणी कियत् कुतुकं लेभे। तत् अनु बहुवचनविन्यास- विविधप्रयासेन व्यस्ता (वाणी) बत कुत्र अगमत् ।।४।।

अनुवाद-कविभानु से गोवर्धन के मुख में आकर फिर जयदेव में मुरारि में तथा श्रीहर्ष में सुशोभित यह वाणी कितने कौतूहल को प्राप्त की! तत्पश्चात् बहुतों (कवियों) के वचनविन्यास के विविध प्रयास से व्यस्त (वाणी) आश्चर्य है, कहाँ चली गयी?।।४।।

गङ्गानन्दमुखे सुखेन समभूत् क्रीडावती भारती
प्रागल्भ्यं बहु कल्पितं श्रुतिधरे देव्या गिरां लोचने।
धावन्त्या किमकारि किं च न कृतं तन्नैव जानीमहे
विश्रामाय चिराय कस्य वदनाम्भोजं तया लक्षितम्।।५।।

अन्वय- क्रीडावती भारती गङ्गानन्दमुखे सुखेन समम् अभूत्। देव्या श्रुतिधरे बहुप्रागल्भ्यं कल्पितम्। गिरां लोचने धावन्त्या किम् अकारि, किम् च न कृतम्, चिराय विश्रामाय तया कस्य वदनं लक्षितम्, तत् न एव जानीमहे ।।५।।

अनुवाद-क्रीड़ा करने वाली वाणी गङ्गानन्द के मुख में सुखपूर्वक (उद्भासित) रही। श्रुतिधर में (वाणी के द्वारा) बहुत नैपुण्य को कल्पित किया गया। शब्दों के नेत्र में दौड़ती हुई (वाणी) के द्वारा क्या किया गया? क्या न किया गया? चिर काल तक विश्राम के लिए उसके द्वारा किसका मुखकमल लक्षित किया गया? उसे (हम) नहीं जानते हैं ।।५।।

य [या] त्वां नानाकविमुख [मुखि] यथा सत्वरं सञ्चरन्ती
सम्प्राप्तासि क्षणमपि तथात्रापि मायाहि मातः।
आयातासि त्वमपि सरसार्थैकसार्था वहन्ती
मन्दं मन्दं कुरु किल पदारोपणं देवि वाचा।।६।।

अन्वय- नानाकविमुखि मातः। या त्वं सत्वरं सञ्चरन्ती यथा क्षणम् अपि सम्प्राप्ता असि तथा अत्र अपि मा आयाहि। देवि! सरसार्थैकसार्था वहन्ती अपि त्वं आयाता असि किल वाचा मन्दं मन्दं पदारोपणं कुरु।।६।।

अनुवाद-बहुत से कवियों के मुख में निवास करने वाली (कविरूपी मुखवाली)माँ! जो तुम तेजी से संचरण करती हुई जैसे क्षण भर के लिए भी प्राप्त हो गयी हो वैसे यहाँ मेरे पास भी आ जाओ। हे देवि! सरस अर्थ के साथ प्रवाहित होती हुई भी तुम आ गयी हो (तो) निश्चित रूप से वाणी के द्वारा मन्द मन्द पदारोपण करो ।।६।।

कण्ठे हारलतेव कुण्डलमिव श्रोत्रे च वक्त्रे सुधा-
धारेव स्मरसङ्गरोत्सुकवधूदृग्भङ्गवन्मानसे।
केषाञ्चिज्जगतीह सत्कविमुखोद्भूता गिरां विभ्रम-
व्यापारस्फुटपद्धतिर्विजयते तेभ्यो नरेभ्यो नमः।।७।।

अन्वय- इह जगति, कण्ठे हारलता इव, श्रोत्रे कुण्डलम् इव, वक्त्रे सुधाधारा इव, मानसे स्मरसङ्गरोत्सुकवधूदृग्भङ्गवत् केषाञ्चित् सत्कविमुखोद्भूता गिराम् विभ्रमव्यापारपद्धतिः विजयते। तेभ्यः नरेभ्यः नमः ।।७।।

अनुवाद-इस संसार में, कण्ठ में हारलता की भाँति, कान में कुण्डल की भाँति, मुख में अमृतधारा की भाँति, मन में काम की स्वीकृति के लिए वधू की नेत्रभंगिमा की भाँति किन्हीं सत्कवियों के मुखों से उद्भूत वाणी के विभ्रम- व्यापार की स्फुट पद्धति विजयिनी हो रही है। उन नरों के लिए (सत्कवियों के लिए) नमस्कार है।।७।।

भारतीरससम्भारक्षीरधारां पिबन्मुहुः।
बालवत्कुरुते लीलां कालिदासोऽतिभङ्गिभिः।।८।।

अन्वय- कालिदासः भारतीरससम्भारक्षीरधारां मुहुः पिबन् अतिभङ्गिभिः बालवत् लीलां कुरुते ।।८।।

अनुवाद- कालिदास सरस्वती के रससमुच्चयरूपी क्षीर की धारा को वार-वार पीता हुआ अत्यन्त (सुन्दर) भङ्गिमाओं से बच्चे की भाँति लीला करता है ।।८।।

अत्रादौ लक्ष्मीवर्णनश्लोकाः

कौङ्घो [कौघे] माला इति मधुकरैर्मौक्तिकानीतिहंसै-
श्चान्द्र्यो ज्योत्स्ना इति परिचयाल्लुसद्भिश्चकोरैः।
सोधं स्रोतः स्फुटमिति सुरैर्योऽनुबद्धः समन्तात्-
लक्ष्म्याः सोऽयं पदनखरुचां राशिरास्तां मुदे नः।।९।।

अन्वय- लक्ष्म्याः पदनखरुचाम् यः राशिः मधुकरैः कौघे माला इति, हंसैः मौक्तिकानि इति, परिचयात् उल्लसद्भिः चकोरैः चान्द्र्यः ज्योत्स्नाः इति, सुरैः स्फुटं सोधं स्रोतः इति समन्ताद् अनुबद्धः सः अयं (राशिः) वः मुदे आस्ताम् ।।९।।

अनुवाद-लक्ष्मी के चरणनख की कान्ति का जो समुच्चय भौंरो के द्वारा जलप्लावन के बीच माला है ऐसा, हंसों के द्वारा मोती का ढेर है ऐसा, परिचय से उल्लसित होते हुए चकोरों के द्वारा चन्द्रमा की ज्योत्स्ना है ऐसा, देवताओं के द्वारा अमृत का स्फुट स्रोत है ऐसा (मानकर) चारों ओर से अनुबद्ध है, वह यह (पदनखकान्तिसमुच्चय) हम लोगों के आनन्द के लिए हो।।९।।

स्वाधिष्ठानाम्बुजदलमिलद्भृङ्गदोधूयमाना
विष्वग्व्याप्ताः कनकरुचयो रेजिरे रेणुधाराः।
तासामासादयति सुखमाहंसकासक्तरत्न-
ज्योतिर्जालं वलयितमिदं वारिधेः कन्यकायाः।।१०।।

अन्वय- स्वाधिष्ठानाम्बुजदलमिलद्भृङ्गदोधूयमानाः विष्वग् व्याप्ताः कनकरुचयः रेणुधाराः रेजिरे। वारिधेः कन्यकायाः इदं वलयितम् आहंसकासक्त- रत्नज्योतिर्जालं तासां सुखमासादयति।।१०।।

अनुवाद-अपने स्थान (आसन) कमलदल के पास एकात्रित होते हुए भौंरों के द्वारा उड़ायी जाती हुई चारों ओर व्याप्त स्वर्ण जैसी आभावाली धूलि धाराएँ[१] सुशोभित

हुई हैं। समुद्र की कन्या की यह कंगनाकार नूपुरपर्यन्त सम्यक् सम्पृक्त रत्नज्योति का समूह उनके (रेणु धाराओं के) सुख को प्राप्त कर रहा है।।१०।।

श्रेणीभूताः कनकलतिकामञ्जरीमञ्जुरूपाः
स्वावासाब्जस्फुरितरजसामग्रतोयास्तु धाराः।
शङ्के पङ्केरुहनिवसतेरङ्गुलीराजिरूपं
तासु स्वैरं वहति वहुसो [बहुशो] माधवस्यापि दृष्टिः।।११।।

अन्वय- स्वावासाब्जस्फुरितरजसाम् तु कनकलतिकामञ्जरीमञ्जुरूपाःअग्रतोयाः याः धाराः श्रेणीभूताः (सन्ति)। शङ्के तासु पङ्केरुहनिवसतेः माधवस्य अपि दृष्टिः बहुशः स्वैरं वहति ।।११।।

अनुवाद-(तुम्हारे)अपने आवास के कमल के स्फुरित परागों की तो स्वर्णलता की मञ्जरी की भाँति सुन्दररूपवाली आगे की तरफ जल को धारण की हुई जो धाराएँ पङ्क्तिबद्ध हैं। ऐसा लगता है कि उन पर कमल के ऊपर निवास करने वाले विष्णु की भी दृष्टि बार बार स्वच्छन्दता को धारण करती है (उन्मुक्त भाव से पड़ती है)।।११।।

इतोऽप्येतन्मुग्धं कुचकमलमित्यासनतलाद्
घनीभूता भृङ्गावलिरुपरि येयं प्रसरति।
तया शङ्के पङ्केरुहकुहर-विन्यस्त-चरणे
शरण्ये लोकानां भवति तव रोमावलिमतिः।।१२।।

अन्वय- पङ्केरुहविन्यस्तचरणे शरण्ये! एतत् कुचकमलम् इतः अपि मुग्धम् इति या इयम् आसनतलात् घनीभूता भृङ्गावलिः उपरि प्रसरति, शङ्के, तया लोकानां तव रोमावलिमतिः भवति ।।१२।।

अनुवाद-कमलपर रखे चरणोंवाली हे शरणदायिनी! यह स्तनरूपी कमल, इससे (आसनकमल से) भी सुन्दर है, ऐसा (जानकर) जो यह तुम्हारे आसन तल से घनीभूतभौंरों की श्रेणी ऊपर की ओर फैलती है, ऐसा लगता है कि उससे लोगों को तुम्हारी रोमावली होने की समझ होने लगती है। (अर्थात् वह तुम्हारी रोमावली है, ऐसा लोग सोचने लगते हैं)।।१२।।

अकस्मादायाते मदनमदमोदे मधुरिपोः
समाश्लेषोत्कण्ठाकुलहृदयदेशाद्विगलिता।
त्वदीयेऽस्मिन्नाभीसरसि वनमाला तदनु सा
समाकृष्टेवोर्ध्वं विरचयति रोमावलिरुचिम्।।१३।।

अन्वय- अकस्मात् मधुरिपो: मदनमदमोदे आयाते समाश्लेषोत्कण्ठाकुलहृदयदेशात् त्वदीये अस्मिन् नाभीसरसि विगलिता तदनु ऊर्ध्वं समाकृष्टा सा वनमाला रोमावलिरुचिम् विरचयति इव ।।१३।।

अनुवाद- अचानक मधुरिपु (विष्णु) के कामोल्लासजन्य आनन्द के उभर जाने पर समालिंगन की उत्कण्ठा से आकुल वक्षस्थल से तुम्हारी इस नाभिवापी में गिरी हुई, उसके बाद ऊपर की ओर खिंची हुई वह वनमाला रोमावली की शोभा का मानो निर्माण करती रहती है। ।।१३।।

श्रियं धत्ते मूर्ध्ना कुचकलशयोर्वारणवरो
दलैरङ्घ्रिद्वन्द्वस्य च विबुधवाटीतरुवर:।
चिरासङ्गायातां तव वदनशोभामविरलं
वहन्निन्दु: प्राप्तस्त्रिजगदतिसौन्दर्यपदवीम्।।१४।।

अन्वय- वारणवर: मूर्ध्ना कुचकलशयो: श्रियम् धत्ते। विबुधवाटीतरुवर: दलै: अङ्घ्रिद्वयस्य च (श्रियं धत्ते)। चिरासङ्गायातां तव वदनशोभाम् अविरलं वहन् इन्दु: त्रिजगदतिसौन्दर्यपदवीम् प्राप्त: ।।१४।।

अनुवाद- गजराज सिर से (तुम्हारे) कुचकलश की शोभा को धारण करता है। देवोपवन का कल्पतरु पत्तियों से दोनों चरणों की शोभा को (धारण करता है) और बहुत दिनों तक साथ रहने से प्राप्त हुई (अन्तर्निविष्ट हुई) तुम्हारी मुख की शोभा को निरन्तर धारण करता हुआ चन्द्रमा तीनों लोकों में अत्यधिक सुन्दरता की पदवी को प्राप्त कर लिया है ।।१४।।

करद्वन्द्वन्यस्तस्फुटकमलकोशादविरलं
मरन्दस्य स्त्रोतो द्वयमुपरि यत्ते विजयते।
तदेतत्ते धत्ते जननि जनसौभाग्यजननीं
समुन्मीलन्मञ्जुस्मितरचितवीचीरुचिरताम्।।१५।।

अन्वय- जननि! करद्वन्द्वन्यस्तस्फुटकमलकोशात् उपरि यत् ते द्वयं मरन्दस्य अविरलं स्त्रोत: तत् विजयते। एतत् जनसौभाग्यजननीं ते समुन्मीलन्मञ्जुस्मितरचितनीवीरुचिरतां धत्ते ।।१५।।

अनुवाद- हे जननि! (तुम्हारे) दोनों हाथों में रखे हुए विकसितकमल कोश से ऊपर जो तुम्हारे दो पराग के सघन स्त्रोत हैं, वे विजय शील हो रहे हैं। ये लोगों के सौभाग्य

को उत्पन्न करने वाली तुम्हारी समुन्मीलित होती हुई मधुरमुसकान से निर्मित लहरों की रुचिरता को धारण करते हैं ।।१५।।

लक्ष्म्याः क्षीरसमुद्रविद्रुमलतालग्ना मुखेन्दौ सुधा-
धारार्द्रीकृतमौक्तिकावलियुता या कापि सा राजते।
स्वीये केलिनिकेतने जलनिधौ स्वापं गतायाश्चिरं
स्मेरस्निग्धरदावलीपरिलसन्मुग्धाधरस्यच्छलात्।।१६।।

अन्वय- स्वीये केलिनिकेतने जलधौ चिरं स्वापम् गतायाः लक्ष्म्याः मुखेन्दौ क्षीर-समुद्रविद्रुमलतालग्ना सुधाधारार्द्रीकृतमौक्तिकावलियुता कापि या स्मेर-स्निग्धरदावली। सा परिलसन्मुग्धाधरस्यच्छलात् राजते ।।१६।।

अनुवाद-अपने केलिनिकेतन समुद्र में बहुत समय तक सोयी हुई लक्ष्मी के चन्द्रवत् मुख में क्षीरसमुद्र की विद्रुमलता से सम्पृक्त, सुधा धारा के जल से गीली हुई मुक्तावलीमयी कोई जो मुसकान से स्निग्ध दन्तपंक्ति (है) वह परिलक्षित होते हुए मुग्धाधर के छल से (अधर के खुलने से) शोभित हो रही है।।१६।।

दृगम्भोजक्रीडन्मधुपपटलीपक्षतिरियं
मरन्दाली लीढा विरचयति पक्ष्मावलिरुचिम्।
किमुन्मीलन्नीलोत्पलदल मिलन्ती मधुकणा
प्रनाडी त्वन्नेत्रद्युतिकपटशीला विजयते।।१७।।

अन्वय- (देवि) इयं दृगम्भोजक्रीडन्मधुपपटलीपक्षतिः लीढा मरन्दाली पक्ष्मावलि-रुचिम् विरचयति। उन्मीलन्नीलोत्पलदल। किं मधुकणा मिलन्ती त्वन्नेत्रद्युतिकपटशीला प्रनाडी विजयते? ।।१७।।

अनुवाद-(हे माँ) यह नेत्रकमलसे क्रीडा करते भौंरों के (समूह का) पंखों का मूल भाग, चूसी गयी पुष्परसराशि पक्ष्मावली की शोभा को रच रही है, (पक्ष्मावली के प्रति अभिरुचि जगा रही है)। हे उन्मीलन करते हुए नीलकमलदल। क्या मधुकणों को धारण करने वाली तुमसे नेत्रविषयिणी कान्ति हेतु छल करने वाली (लक्ष्मी की) ऐन्द्रजालिकता विजयिनी हो रही है? ।।१७।।

हाराः कण्ठे किमु विरचिताः सम्पदम्भोरुहाक्ष्या
लीलावालावरणविहिताः किन्नु कुन्दस्य मालाः।
वेलालग्ना धवलमणयो मोदपाथोनिधेः किं
लक्ष्म्याः क्षीराम्बुधिघनकणासारशङ्काः कटाक्षाः।।१८।।

अन्वय- अम्भोरुहाक्ष्याः लक्ष्म्याः कण्ठे विरचिताः हाराः किमु (तस्याः) सम्पत् ? किम् नु लीलावालावरणविहिताः कुन्दस्य मालाः? किम् मोदपाथोनिधेः वेलालग्नाः धवलमणयः क्षीराम्बुधिघनकणासारशङ्काः कटाक्षाः? ।।१८।।

अनुवाद-कमल की तरह नेत्रवाली लक्ष्मी के कण्ठ में विरचित हार क्या (उसकी) सम्पत्ति हैं? क्या सचमुच लीला के आलवाल के आवरण से निर्मित कुन्द की मालाएँ हैं? आनन्द के समुद्र की लहरों से संलग्न श्वेतमणियाँ, क्षीरसमुद्र में मेघबिन्दुओं की वर्षा की शङ्का को उत्पन्न करने वाले (लक्ष्मी के) कटाक्ष हैं? ।।१८।।

आनन्देन्दूदयसमुदिताम्भः कणासारकीर्णा
माला चन्द्रोपलदलमयी सम्पदा ग्रथ्यमाना
कण्ठे दातुं मम परिलसत्यग्रतो देवि शङ्के
येयं पङ्केरुहनिवसते त्वद्दृगान्दोललक्ष्मीः।।१९।।

अन्वय- पङ्केरुहनिवसते देवि! आनन्देन्दूदयसमुदिताम्भः कणासारकीर्णा सम्पदा ग्रथ्यमाना चन्द्रोपलदलमयी माला कण्ठे परिलसति। शङ्के, इयं त्वद्दृगान्दोललक्ष्मीः दातुं मम अग्रतः (परिलसति) ।।१९।।

अनुवाद-हे कमल पर निवास करने वाली देवी! आनन्दरूपीचन्द्र के उदय से बढ़े हुए जलकणों की वर्षा से बिखरी हुई, अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति से गुँथी जाती हुई चन्द्रसदृश मणिपुञ्जवाली जो माला (तुम्हारे) कण्ठ में सुशोभित हो रही है, ऐसा लगता है कि यह तुम्हारे नेत्रों के हिलने डुलने से उत्पन्न होने वाले सौभाग्य को देने के लिए मेरे आगे (सुशोभित हो रही है)।।१९।।

सान्द्रं चन्द्रमरीचिमण्डलमिव स्फीतं समुन्मीलितं
वन्दे चित्तचकोरपारणमिदं युष्मद्दृगान्दोलनम्।
मातर्लक्ष्मि ललामलास्यकलया लावण्यलीलाम्यी
जाता प्रातरुदञ्चदम्बुजवनाकीर्णेव मद् देहली।।२०।।

अन्वय- मातः लक्ष्मि! चन्द्रमरीचिमण्डलम् इव स्फीतं सान्द्रं समुन्मीलितं चित्तचकोरपारणम् इदं युष्मद्दृगान्दोलनं वन्दे। मद् देहली ललामलास्य-कलया लावण्यलीलामयी प्रातरुदञ्चदम्बुजवनाकीर्णा इव जाता ।।२०।।

अनुवाद-हे माँ लक्ष्मी! चन्द्रकिरणमण्डल की भाँति स्वच्छ, सघन, समुन्मीलित चित्तरूपी चकोर के लिए पारणभूत इस तुम्हारे नयनान्दोलन की वन्दना करता हूँ। (जिसके चलते) मेरी (घर की) डेहरी ललाम लास्य की कला से लावण्यलीलायुक्त,

(तथा) प्रातः काल विकसित होने वाले कमलों के वनों से भरी सी हो गयी है ।।२०।।

मातर्लक्ष्मि ललामलोचनचमत्कारेण चञ्चत्सुधा-
वीचिव्रातनिभेन सिञ्चय महापापाभितापाकुलम्!
मामीषत्करुणायिते सुरतरुं पण्डीकरोति क्षणा-
दश्लाघ्यत्वमुपानयत्यविरतं चिन्तामणिं सर्वथा।।२१।।

अन्वय- मातः लक्ष्मि! चञ्चत्सुधावीचिव्रातनिभेन ललामलोचनचमत्कारेण महापापाभितापाकुलं मां सिञ्चय। ईषत् करुणायिते (सति) क्षणात् सुरतरुं पण्डीकरोति अविरतं चिन्तामणिं सर्वथा अश्लाघ्यत्वम् उपानयति।।२१।।

अनुवाद- हे माँ लक्ष्मी! फुदकती हुई अमृत की लहरों के समुच्चय सरीखे अपने सुन्दर नेत्रों के चमत्कार से अत्यन्त पाप एवं सन्ताप से व्याकुल मुझको सींच दो। थोड़ा सा करुणान्वित होने पर (तुम्हारा नेत्रचमत्कार) कल्पवृक्ष को क्षीण (निश्चेष्ट) बना देता है, शीघ्र चिन्ता मणि को सब प्रकार से अप्रशंसनीय बना देता है (अप्रशंसनीयता को प्राप्त करा देता है) ।।२१।।

दारिद्र्योरगदर्पदारणकरी गारुत्मती मालिका
पापस्तोमकृताभितापशमनस्फूर्जद्रसा वापिका!
वाञ्छारूढफलप्रदा सुरतरुश्रेणी सुखस्त्रोतसा-
माकीर्णा घनशीकरावलिरियं लक्ष्म्याः कटाक्षावलिः।।२२।।

अन्वय- इयं लक्ष्म्याः कटाक्षावलिः दारिद्र्योरगदर्पदारणकरी गारुत्मती मालिका, पापस्तोमकृताभितापशमनस्फूर्जद् रसा वापिका, वाञ्छारूढफलप्रदा सुरतरुश्रेणी सुखस्त्रोतसाम् आकीर्णा घनशीकरावलिः (अस्ति) ।।२२।।

अनुवाद-यह लक्ष्मी की कटाक्ष पंक्ति दरिद्रतारूपी सर्प के दर्प को नष्ट करने वाली गरुड़निर्मित माला है, पाप के सञ्चय से उद्भूत सन्ताप का शमन करने वाली उमड़ते हुए रसों वाली बावली (वापी) है, इच्छाजन्य फल को प्रदान करने वाली कल्पद्रुम की पङ्क्ति है, सुख के स्रोतों की चारों ओर बिखरी हुई, घने फुहारों वाली कतार है ।।२२।।

भृङ्गासङ्गविलोलदम्बुजमयच्छत्रादधो विन्दवः
श्रेणीभूय पतन्ति सन्ततमतिस्फीता मरन्दस्य ये!
शङ्के ते तव कण्ठसङ्गमवशादासादयन्तः श्रियं
हारस्यैव समुल्लसन्ति हि पुरो नारायणप्रेयसि ।।२३।।

अन्वय- नारायणप्रेयसि! भृङ्गासङ्गविलोलद् अम्बुजदलच्छत्रात् अधः सन्ततम् अतिस्फीताः मरन्दस्य ये विन्दवः श्रेणी भूय पतन्ति, शङ्के ते तव कण्ठसङ्गमवशात् हारस्यैव श्रियम् आसादयन्तः पुरः हि समुल्ल- सन्ति।।२३।।

अनुवाद-हे नारायण की प्रियतमा! भौंरों के आसङ्ग से चलायमान कमलमय छत्र से नीचे अनवरत अत्यन्त उज्ज्वल पराग की जो बिन्दुएँ पङ्क्तिबद्ध गिर रही हैं ऐसी शङ्का होती है कि जैसे वे तुम्हारे कण्ठ के मिलन के कारण हार की ही शोभा को प्राप्त करती हुई (तुम्हारे) सामने ही समुल्लसित हो रही हैं।।२३।।

सद्मायाता स्वसद्मायितकमलदलान्दोलिरोलम्बमाला-
व्यालोलद्भिर्मरन्दैरखिलमपि ममावासमाच्छालयन्ती।
छत्रीभूतारविन्दच्छदपटलगलद्भिः परागैः सरागैः
सन्ध्या रागायमानं गगनमविरलं घूर्णयन्ती पुनातु।।२४।।

अन्वय- सद्मायाता स्वसद्मायितकमलदलान्दोलिरोलम्बमालाव्यालोलद्भिः मरन्दैः मम अखिलम् अपिआवासं छालयन्ती छत्रीभूतारविन्दच्छदपटलगलद्भिः सरागैः परागैः रागायमानं गगनं घूर्णयन्ती सन्ध्या पुनातु ।।२४।।

अनुवाद- घर में आयी हुई, अपना घर बना लिये गये कमलदल को आन्दोलित करने वाली भ्रमरों की पङ्क्ति से विशेषरूप से चारों ओर दोलायमान (प्रवहणशील) परागों से मेरे सम्पूर्ण आवास को धोती हुई सक्षत्रीभूत कमलखण्ड के समुच्चय से निकलते हुए रागयुक्त परागों से रागायमान आकाश को निरन्तर घुमाती हुई सन्ध्या (मुझे) पवित्र करे ।।२४।।

कारुण्यं परिकल्प्य कल्पविटपिप्रागल्भ्यपण्डीकरं
वाजिद्वीपिसुवर्णरत्नवसनालङ्कारभारोदयम्।
आनन्दद्रुममञ्जरीपरिमलस्तोमायमानं दृशो-
रुल्लासप्रविकासनं विदधतीं वन्देऽरविन्दासनाम् ।।२५।।

अन्वय- कारुण्यं परिकल्प्य कल्पविटपिप्रागल्भ्यपण्डीकरं वाजिद्वीपिसुवर्ण-रत्नवसनालङ्कारभारोदयम् आनन्दद्रुममञ्जरीपरिमलस्तोमायमानं दृशो-रुल्लासप्रविकाशनं विदधतीम् अरविन्दासनाम् वन्दे ।।२५।।

अनुवाद- कारुण्य की परिकल्पना करके कल्पविटप (कल्पवृक्ष) की प्रगल्भता को क्षीण कर देने वाले (निश्चेष्ट कर देने वाले) घोड़ा-हाथी-स्वर्ण-रत्न एवं वस्त्राभूषणजन्य श्रेष्ठता को विकसित कर देने वाले आन्नदरूपीवृक्ष की मञ्जरी की सुगन्धि से समृद्ध नेत्रों के उल्लास जन्य विकाशसामर्थ्य को धारण करने वाली कमलासना

(लक्ष्मी) को प्रणाम करता हूँ ।।२५।।

यद् वाञ्छास्वपि नागतं न च दृशाप्यालोकितं यत् क्वचि-
द्यद्वाचापि न कल्पितं सुखमहो तत्त्वं ददासि क्षणात्।
दीनेभ्यो भयभारभञ्जिनि भवत्कारुण्यकल्पद्रुमो-
न्मीलन्मञ्जुमरन्दविन्दुलहरी लोके जरीजृम्भते।।२६।।

अन्वय- भयभारभञ्जिनि! यत् सुखम् वाञ्छासु अपि न आगतम् च न दृशा अपि यत् क्वचित् आलोकितम्, अहो! तत् त्वं क्षणात् ददासि। भवत्कारुण्यकल्पद्रुमोन्मीलन्मञ्जुमरन्दविन्दुलहरी लोके दीनेभ्यः जरीजृम्भते ।।२६।।

अनुवाद-हे भय के भार को नष्ट कर देने वाली (लक्ष्मी)! जो सुख इच्छाओं में भी नहीं आया, और न आँखों के द्वारा भी जो कहीं देखा गया, आश्चर्य है कि उसे तुम क्षणभर में दे देती हो। आप के कारुण्यरूपी कल्पद्रुम से उन्मीलित होती हुई सुन्दरपरागविन्दुओं की लहरी संसार में दीनों के लिए (दीनों के कल्याण हेतु) जमुहाई ले रही है।।२६।।

द्वारि द्वारि द्रविणविरही याच्यमानोऽतिदीनः
स्नातोऽकस्मादपि तव कृपापातपीयूषपूरैः।
द्वारे द्वारे वितरणकलाकौशलं तत्क्षणं सः
कर्तुं चित्तं कलयति वलन्मोदसन्दोहमूर्तिः।।२७।।

अन्वय-द्वारि द्वारि याच्यमानः अतिदीनः सः द्रविणविरही अकस्मात् तव कृपापातपीयूषपूरैः स्नातः तत्क्षणम् द्वारे द्वारे वितरणकलाकौशलं कर्तुं चित्तं कलयति।।२७।।

अनुवाद-द्वार द्वार पर भीख मँगवाया जाता हुआ अत्यन्त दीन वह धनहीन (व्यक्ति) अचानक तुम्हारे कृपापात से अमृतधाराओं से नहाया हुआ तत्क्षण द्वार द्वार पर वितरण की कला के कौशल को आत्मसात् करने के लिए चित्त को तैयार करने लगता है (लगाने लगता है)।।२७।।

त्वत्कारुण्यकटाक्षकल्पविटपिच्छायासु संशेरते
ये केऽपि क्षणमप्यहो भुवि पुनस्तेषामपूर्वं फलम्।
उद्यद्दारुणदुष्कृतातपकृतोत्तापो न सम्पद्यते
त्रैलोक्ये भ्रमतामपि क्वचिदपि श्रीरम्ब तुभ्यं नमः।।२८।।

अन्वय- श्रीः अम्ब! ये अपि के क्षणम् त्वत्कारुण्यकटाक्षकल्पविटपिच्छायासु संशेरते, अहो! भुवि तेषाम् अपि अपूर्वम् फलम्। त्रैलोक्ये भ्रमताम् अपि उद्यद्दारुणदुष्कृतातपकृतोत्तापः क्वचित् अपि न सम्पद्यते। तुभ्यं नमः।। २८।।

अनुवाद-हे लक्ष्मी माँ! जो भी कोई (जन) क्षण भर तुम्हारे कारुण्यकटाक्षरूपी कल्पवृक्ष की छाया में सोते हैं, आश्चर्य है कि पृथ्वी पर उनका भी अपूर्व फल होता है। (वे भी अपूर्व फल प्राप्त करते हैं)। तीनों लोकों में भ्रमण करते हुए भी (उनके सम्बन्धों में) उठते हुए भीषणपापरूपी आतप से उद्भूत सन्ताप कहीं भी नहीं सम्पन्न हो पाता (उन्हें सम्बद्ध नहीं कर पाता)। तुम्हारे लिए (तुम्हें) नमस्कार है।।२८।।

मज्जत्यम्भोधिमध्ये निपतति भुजगे शूकरादिस्वरूपे
मायापाशेन सद्यो जगदपि सकले प्रापयत्युग्रकष्टे।
पुण्ये वृन्दावने यः परयुवतिगणालिङ्गनानन्दशाली
सोऽयं कृष्णोऽतिपूज्यस्तदिह तव समासङ्ग एवास्य हेतुः।।२९।।

अन्वय- यः शूकरादिस्वरूपे अम्भोधिमध्ये मज्जति, भुजगे निपतति, मायापाशेन सद्यः सकलं जगत् अपि उग्रकष्टे प्रापयति, यः पुण्ये वृन्दावने परयुवतिगणालिङ्गनानन्दशाली, सः अयं कृष्णः इह अतिपूज्यः। तत्, तव आसङ्ग एव अस्य हेतुः ।।२९।।

अनुवाद-जो शूकर आदि के स्वरूप में समुद्र के अन्दर डूबता है, सर्प पर गिरता है, मायापाश से शीघ्र सारे संसार को भी उग्र कष्ट में डाल देता है, जो पवित्र वृन्दावन में दूसरी स्त्रियों के आलिङ्गनजन्य आनन्द को धारण करता है (भोगता है) वह यह कृष्ण यहाँ (पृथ्वी पर) अत्यन्त पूज्य है, तो तुम्हारा साथ ही इसका कारण है।।२९।।

पयोराशेरन्तः क्वचिदतिकलङ्केन विकलः
स्थितो मग्नः पङ्के स च सकलसौन्दर्यनिलयः।
इदानीमानन्दं जनयति हि चन्द्रस्त्रिजगता -
मये मातर्लक्ष्मि स्फुरति तव सङ्गोत्तमफलम् ।।३०।।

अन्वय- अये मातः लक्ष्मि ! पयोराशेः अन्तः स्थितः क्वचित् अति कलङ्केन विकलः च पङ्के मग्नः स सकलसौन्दर्यनिलयः चन्द्रः इदानीं त्रिजगताम् आनन्दं हि जनयति। तव सङ्गोत्तमफलं स्फुरति ।।३०।।

अनुवाद- हे माता लक्ष्मी! समुद्र के अन्दर स्थित, कहीं अत्यन्त कलङ्क से विकल और कीचड़ में मग्न वह समस्त सौन्दर्य का निलय चन्द्रमा इस समय तीनों लोकों का आनन्द ही उत्पन्न कर रहा है। तुम्हारे साथ का उत्तमफल स्फुरित हो रहा है ।।३०।।

शिलाखण्डं लेभे किमपि किल चिन्तामणिपदं
जडो वृक्षो धत्ते त्रिजगदतिदातृत्वपदवीम्!
पशुर्धेनुः सापि प्रभवति हि कामोदयकरी
गरीयांस्त्वत्सङ्गोदितसुकृतरङ्गो विजयते।।३१।।

अन्वय- शिलाखण्डं किमपि चिन्तामणिपदं लेभे। जडः वृक्षः त्रिजगदति- दातृत्वपदवीं धत्ते। सा धेनुः पशुः अपि कामोदयकरी हि प्रभवति। गरीयान् त्वत्सङ्गोदितसुकतरङ्गः विजयते।।३१।।

अनुवाद- कोई शिलाखण्ड चिन्तामणि के पद को प्राप्त कर लिया। जड़ वृक्ष तीनों लोकों में अत्यन्त दाता की (दातृत्व की) पदवी को धारण करता है। वह पशु गाय भी कामनाओं की पूर्ति करने वाली ही बनी हुई है, गुरुतर तुम्हारे साथ रहने से उत्पन्न पुण्य का रंग विजयशील हो रहा है। ।।३१।।

करे धत्ते शौरिः परिमृशति देवो दिनकरः
करैरावासाय स्पृहयति विधाता स्वयमपि।
सरोजातं मातस्तव चरणसंसर्गसुभगं
जगन्मध्ये को वा न गणयति सेवासुखविधौ।।३२।।

अन्वय- मातः! तव चरणसंसर्गसुभगं सरोजातं शौरिः करे धत्ते। देवः दिनकरः करैः परिमृशति। स्वयं विधाता अपि आवासाय स्पृहयति। वा जगन्मध्ये कः सेवासुखविधौ न गणयति ।।३२।।

अनुवाद-हे माँ! तुम्हारे चरण के संसर्ग से सौभाग्यशील कमल को विष्णु हाथ में धारण करते हैं। देव सूर्य किरणों से परामर्श करते रहते हैं। स्वयं ब्रह्मा भी आवास के लिए (उसकी) स्पृहा करते रहते हैं। या (फिर) संसार के अन्दर (ऐसा) कौन है (जो) सेवा से प्राप्त होने वाले सुखविधान के लिए (उस कमल की) गणना नहीं करता (अपेक्षा नहीं रखता) ।।३२।।

समन्तादुन्मीलद्बहलबडवाग्निप्रतपिते
विषज्वालाजालाकुलसकलतोये जलनिधौ!
त्वदीयाङ्घ्रिद्वन्द्वद्रवदमृतवीचीपरिचया-
दये मातस्तस्थौ चिरममरवाटीतरुवरः।।३३।।

अन्वय- अये मातः! समन्तादुन्मीलद्बहलबडवाग्निप्रतपिते विषज्वालाजालाकुलसकलतोये जलनिधौ त्वदीयाङ्घ्रिद्वन्द्वद्रवदमृतवीचीपरिचयात् अमरवाटीतरुवरः चिरं तस्थौ।।३३।।

अनुवाद-हे माँ! चारों तरफ से उठती हुई (उन्मीलन करती हुई) अविरल बडवाग्नि से तपते हुए, विष की ज्वाला के जाल (समूह) से आकुल सम्पूर्ण जलवाले समुद्र में तुम्हारे चरणयुगल से द्रवित होती हुई अमृतमयी लहरों के परिचय से (संसर्ग से) सुरोपवन का कल्पवृक्ष चिरकाल तक स्थित है।।३३।।

दुःखैरेव दृढीकृतं यदि हृदम्भोजे पदं मामके
तत्त्वत्केलिसरोजसमनि [सद्मनि] पदं धत्ते हठान्मे मतिः।
एतच्चेदरविन्दवासिनि तव क्लेशावहं जायते
तद् दूरीकुरु दुःखदारुणपदं मच्चेतसः सत्वरम्।।३४।।

अन्वय- अरविन्दवासिनि! यदि मामके हृदम्भोजे दुःखैः एव पदं दृढीकृतम्, तत् मे मतिः हठात् त्वत्केलिसरोजसद्मनि पदं धत्ते। चेत् एतत् तव क्लेशावहं जायते, तत् दुःखदारुणपदं मच्चेतसः सत्वरं दूरीकुरु।।३४।।

अनुवाद-हे कमल पर निवास करने वाली! यदि मेरे हृदयकमल पर दुःखों के द्वारा ही पाँव दृढ़ कर दिया गया है, तो मेरी बुद्धि तुम्हारे लीलाकमलरूपी गृह में अपना पद (स्थान) धारण करती है। यदि यह तुम्हारे क्लेश को उत्पन्न करने वाला हो रहा है तो दुःख के दारुणपद को मेरे चित्त से शीघ्र दूर कर दो।।३४।।

देवाः काञ्चनशैलसेवनपरा रत्नाकरं सेवते
विष्णुः सख्यमहो कृतं दिनकृता पद्मालये पङ्कजे।
योगीन्द्रोऽपि दधाति वारिधिसुताभ्रातेति चन्द्रं शिवो
लोकेऽस्मिन्नहि कोऽपि लोभजलधेः पारं गतो लक्ष्यते।।३५।।

अन्वय- पद्मालये! अहो! देवाः काञ्चनशैलसेवनपराः, विष्णुः रत्नाकरं सेवते, दिनकृता पङ्कजे सख्यं कृतम्। योगीन्द्रः शिवः अपि वारिधिसुताभ्राता इति चन्द्रं दधाति। अस्मिन् लोके कोऽपि लोभजलधेः पारम् गतः न लक्ष्यते।।३५।।

अनुवाद-हे कमलसदन वाली! आश्चर्य है कि देवगण सोने के पर्वत के सेवन में संलग्न हैं। विष्णु रत्नाकर (समुद्र) का सेवन करते हैं। सूर्य के द्वारा भी कमल में (से)मैत्री स्थापित कर ली गयी है। योगीन्द्र शिव भी समुद्रपुत्री (लक्ष्मी) का भाई है ऐसा (मानकर) चन्द्र को धारण करते हैं। इस संसार में कोई भी लोभरूपीसमुद्र के पार गया हुआ नहीं दिखाई देता है ।।३५।।

अथ देवीश्लोका:

समुन्मीलन्नीलोत्पलदलवितानैरिव दृशो:
प्रकाशैरानन्दं जनय मम संसारजननि!
अलं गाढालस्यं कलयसि वलन्तीमविरलं
फलन्तीमानन्दं प्रकटय कृपाकल्पलतिकाम्।।३६।।

अन्वय- **संसारजनानि! समुन्मीलन्नीलोत्पलदलवितानै: इव दृशो: प्रकाशै: मम आनन्दं जनय। अलं गाढालस्यं कलयसि। वलन्तीम् आनन्दं फलन्तीं कृपाकल्पलतिकां प्रकटय ।।३६।।**

देवीश्लोक

अनुवाद-हे संसार की माता! समुन्मीलित होते हुए नीलकमलदल के वितानों की भाँति नेत्रप्रकाशों से मेरे आनन्द को उत्पन्न करो। (मेरे) प्रचण्ड आलस्य को पर्याप्त रूप से जानती हो। हिलती डुलती हुई, आनन्द को फलती हुई कृपाकल्पलतिका को प्रकट करो।।३६।।

न कालोऽयं बालो न च घनतमालोपमरुचे
विलम्बस्य प्रायो जननि जनसौभाग्यजननीम्।
निधेहि त्वं दीप्तिं दरविदलदिन्दीवरदल-
स्त्रगाकारामारादुपहितविहारां मयि दृशो:।।३७।।

अन्वय- **घनतमालोपमरुचे जननि! विलम्बस्य अयं काल: प्राय: बाल: न। त्वं दृशो:दरविदलदिन्दीवरदलस्त्रगाकाराम् उपहितविहारां जनसौभाग्यजननीं दीप्तिं मयि निधेहि ।।३७।।**

अनुवाद-हे घने तमाल के समान कान्तिवाली माँ। विलम्ब का यह समय प्राय: छोटा नहीं है। तुम नेत्रों की थोड़े विदलित होते हुए कमलदल की माला के आकार वाली उपयुक्त विहार वाली लोगों की सौभाग्यजननी दीप्ति को मुझ पर डालो।।३७।।

त्वदीयेयं मातः सकरुणदृगान्दोललहरी
जरीजृम्भन्नीलाम्बुजवनपरीवाहरुचिराम् [रुचिरा]।
मदीयोऽयं चेतोमधुकरयुवा कोमलतर-
स्थलासंशी संशीलयतु निजपुण्योदयफलम्।।३८।।

अन्वय- मातः! जरीजृम्भन्नीलाम्बुजवनपरीवाहरुचिरा त्वदीया इयं सकरुणदृगान्दोललहरी। कोमलतरस्थलासंशी मदीयः अयं चेतोमधुकरयुवा निजपुण्योदयफलं संशीलयतु ।।३८।।

अनुवाद-हे माँ! बार-बार अलसाते हुए नीलकमलवन में प्रवहण से सुन्दर तुम्हारी यह क़रुणा से युक्त नेत्रान्दोललहरी है। सुकुमारस्थल की आशंसा करने वाला मेरा यह चित्त रुपी युवा मधुकर अपने पुण्योदय के फल को सम्यक् प्रकार से अनुभव करे ।।३८।।

त्वदीयेयं मातर्मृदुलमधुहास्यामृतनदी
न दीनात्मानं मां स्नपयति कथं दीपनकरी।
समुन्मीलन्पापानलजनिततापाकुलमनाः
मनागप्यस्याः स्यामहमुदितमोदो मतिरियम्।।३९।।

अन्वय- मातः! त्वदीया इयं दीपनकरी मुदृलमृदुहास्यामृतनदी मां दीनात्मानं कथं न स्नपयति। समुन्मीलत्पापानलजनिततापाकुलमनाः अहं मनाक् अपि उदितमोदः अस्याः स्याम्। इयं मतिः ।।३९।।

अनुवाद-हे माँ! तुम्हारी यह चमका देने वाली मृदुलता से मधुर हास्य (सन्तुष्टि) रूपी अमृत की नदी मुझ दीनात्मा को क्यों नहीं नहला रही है। समुन्मीलित होते हुए पाप रूपी अनल से उत्पन्न ताप (सन्ताप) से आकुल मन वाला मैं जरा सा भी उद्भूत आनन्द वाला इसका (अमृत नदी का) हो जाऊँ, ऐसी सोच (मति) है।।३९।।

जातं प्रातर्विमलकमलस्तोमपूर्णा स्त्रवन्ती
रम्यं सम्यग्जगदपि यशोमण्डलैर्मे भवानि!
पद्मापद्मासनसुरभितं यावदेतद् गृहं मे
भूयात्तावद्भवति महती व्यग्रता मत्कृते ते।।४०।।

अन्वय- भवानि! मे प्रातर्विमलकमलस्तोमपूर्णा स्त्रवन्ती (असि)। यशोमण्डलैः जगत् अपि सम्यक् रम्यम् जातम्। एतत् मे गृहम् यावत् पद्मा पद्मासनसुरभितं भूयात् तावत् मत्कृते ते महती व्यग्रता भवति ।।४०।।

अनुवाद-हे भवानी! मेरे लिए (तुम) प्रातः कालीन स्वच्छ कमलरूपी धन से परिपूर्ण होकर बहने वाली (हो)। यशोमण्डल से संसार भी सम्यक् रूप से रम्य हो गया है। यह मेरा घर जब तक पद्मा (लक्ष्मी) के पद्मासन से सुरक्षित हो रहा है (इस मेरे घर को जब तक पद्मा के पद्मासन से सुरभित हो जाना चाहिए) तब तक मेरे प्रति तुम्हारी अत्यन्त व्यग्रता हो रही है।।४०।।

यावन्नाम्ब तवाम्बुदावलिरुचे कारुण्यकल्पद्रुम-
च्छायामेत्य समस्तपापजनितोत्तापक्लमं मुञ्चति।
तावत्तारविषादभारविकलः संसारगर्भे भ्रमन्
नानाकारविचारविस्मितमना दासोऽयमास्ते तव।।४१।।

अन्वय- अम्बुदावलिरुचे अम्ब! यावत् तव अयं दासः कारुण्यकल्पद्रुमच्छायाम् एत्य समस्तपापजनितोत्तापक्लमं न मुञ्चति, तावत् तारविषादभारविकलः नानाकारविचारविस्मितमनाः संसारगर्भे भ्रमन् आस्ते ।।४१।।

अनुवाद-हे बादल की पङ्क्ति के समान कान्तिवाली माँ! जब तक तुम्हारा यह भक्त कारुण्यकल्पद्रुम की छाया में पहुँच कर समस्त पापों से उत्पन्न सन्ताप की श्रान्ति को नहीं त्याग देता है, तब तक कर्कश विषाद के भार से विकल नाना प्रकार के विचारों से स्तब्ध मन वाला संसार के गर्भ में घूमता हुआ स्थित है।।४१।।

दारिद्र्यानलदाहदर्शनवशादुद्दामदम्भोरगे
लोभध्वान्तकरालकालसलिले मोहाम्बुधौ मज्जतः।
स्यादेतस्य कदापि जीवितमहो नो चेदुदञ्चेदिदं
चेतस्ते नवनीरदावलिरुचे कारुण्यपोतोदये।।४२।।

अन्वय- नवनीरदावलिरुचे! दारिद्यानलदाहदर्शनवशादुद्दामदम्भोरगे लोभध्वान्त-करालकालसलिले मोहाम्बुधौ मज्जतः एतस्य चेतः ते कारुण्यपोतोदये इदं जीवितं स्यात् उदञ्चेत् अहो! चेत् कदापि नो ।।४२।।

अनुवाद-हे अभिनव कमल की पङ्क्ति के समान कान्ति को धारण करने वाली! दरिद्रता रूपी अग्नि की ज्वाला के दर्शन के कारण (अनुभव के कारण) उद्दामदम्भरूपी सर्प को धारण करने वाले, लोभरूपी अन्धकार के करालकाल सरीखे जल को धारण करने वाले मोहरूपी समुद्र में डूबते हुए इसका (तुम्हारे भक्त का) चित्त तुम्हारी करुणा की जहाज के उदित हो जाने पर इस जीवन को शायद सँवार ले (सँभाल ले)। आहा! शायद (फिर) कभी भी नहीं ।।४२।।

आद्या निर्वाणपद्यायितविमलवलद्गद्यपद्यावलीका
विद्याभिर्द्योतयन्ती हृदयमविरलं सद्य उद्यत्प्रसादात्।
अद्यारभ्यैव दद्यान्मुदममरपुरोद्यानविद्याधराली
विद्याविद्योतहृद्याननगणितगुणोद्योगसद्योगगाथा।।४३।।

अन्वय- निर्वाणपद्यायितविमलवलद्गद्यपद्यावलीका, अमरपुरोद्यानविद्याधराली-विद्याविद्योतहृद्याननगणितगुणोद्योगसद्योगगाथा, आद्या उद्यत्प्रसादात् सद्यः विद्याभिः हृदयं द्योतयन्ती अद्य आरभ्य अविरलं मुदम् एव दद्यात्।।४३।।

अनुवाद-ब्रह्मानन्द से पद्यवत् प्रतीत स्वच्छ आकर्षणशील गद्य एवं पद्य की पङ्क्ति रूप, अमरपुरोपवन के विद्याधरों की सखी, विद्या से प्रकाशित कमनीय मुख के द्वारा गिने गये गुणों के उद्योग एव सद्योग (उपयोग एवं सदुपयोग) की गाथा आद्या उदित होती हुई प्रसन्नता से शीघ्र विद्याओं के द्वारा हृदय को द्योतित करती हुई आज से लेकर निरन्तर प्रसन्नता को ही दे ।।४३।।

प्रमाणिकाछन्दः

जगत्समस्तमेतदस्तमेव यत्र जायते
तनोति या गुणत्रयालया यया च पालितम्।
तदीयपादपङ्कजं मदीयचेतसि स्थितिं
दधाति तत्सुधासमं यशो मया सुशोभितम्।।४४।।

अन्वय- एतत् समस्तं जगत् एव यत्र अस्तं जायते। या गुणत्रयालया तनोति च यया पालितम्। मदीयचेतसि तदीयपादपङ्कजं स्थितिं दधाति। तत्सुधासमं यशः मया सुशोभितम् ।।४४।।

प्रमाणिकाछन्द

अनुवाद-यह सारा संसार ही जहाँ अस्त हो जाता है। जो तीनों गुणों (रजोगुण, सतोगुण एवं तमोगुण) की अधिष्ठान (है), प्रेरित करती है, और जिसके द्वारा (जगत्) पालित है। मेरे चित्त में उसका चरणकमल स्थिति धारण करता है (स्थित है)। उसका अमृतवत् (स्वच्छ) यश मेरे द्वारा सुशोभित है ।।४४।।

नयेन देहरूपनिर्जितालिजालकालिका
कदापि सेविता विचिन्तिता नतापि कालिका।
कथं सकुन्दचन्द्रचन्दनद्रवातिसुन्दरं
यशो मरालमाहितं करोतु विश्वपञ्जरे।।४५।।

अन्वय- देहरूपनिर्जितालिजालकालिका कदापि सेविता विचिन्तिता नयेन नता कालिका कथम् अपि सकुन्दचन्द्रचन्दनद्रवातिसुन्दरं यशो मरालं विश्वपञ्जरे आहितं करोतु ।।४५।।

अनुवाद- देह रूप से सर्वथा जीत लिए हुए भ्रमरसमूह की कालिमा वाली, कभी सेवित, विचिन्तित, नियमानुसार प्रणत कालिका किसी प्रकार से कुन्दयुक्तचन्द्र (जैसे उज्ज्वल) एवं चन्दन (जैसे शीतल) द्रव से अतिसुन्दर यशरूपी हंस को विश्वरूपी पिजरे में स्थापित करे।।४५।।

भवानि ये भजन्ति ते पदं तदन्तिके नद-
न्ति दन्तिनः सदा गलन्मदातिलुब्धषट्पदाः।
परो न किं करोति किङ्करोपमो यमोऽपि किं
करिष्यतीह दुष्कृतावृतेषु तेषु कोपतः ।।४६।।

अन्वय- भवानि! ये ते पदं भजन्ति। तदन्तिके सदा गलन्मदातिलुब्धषट्पदाः दन्तिनः नदन्ति। दुष्कृतावृतेषु तेषु परः किं न करोति। किङ्करोपमः यमः अपि कोपतः इह किं करिष्यति ।।४६।।

अनुवाद-हे भवानी! जो तुम्हारे चरण को भजते हैं उनके पास सदैव चूते हुए मदजल से अत्यन्त लुब्ध भौंरों वाले हाथी चिग्घाड़ते रहते हैं। दुष्कृतावृत (हाँ हजूरी किये जाते हुये दुर्जनों से घिरे हुए) उन पर शत्रु क्या नहीं करता है? दास सरीखा यमराज भी क्रोध से यहाँ क्या करेगा? (अर्थात् कुछ नहीं कर सकता है) ।।४६।।

नवीन' भानुभानुभिन्ननीलनीरजातिर-
म्यमाननं रणेषु शोणितौघसेकशोभितम्!
विराजते तवारिचक्रचर्वणस्फुरत्करा-
लदन्तसन्ततिद्युतिप्रभाशितक्षमातले।।४७।।

अन्वय- रणेषु शोणितौघसेकशोभितं नवीनभानुभानुभिन्ननीरजातिरम्यं तव आननम् अरिचक्रचर्वणस्फुरत्करालदन्तसन्ततिद्युतिप्रभाशितक्षमातले विराजते।।४७।।

अनुवाद-युद्धों में रक्त की बाढ़ के अभिषेक से सुशोभित प्रातः कालीन सूर्य की दीप्ति से विकसित नीलकमलकी तरह अत्यन्तसुन्दर तुम्हारा मुख शत्रुसमूह को चबाने से चमकते हुए भीषण दाँतों की पङ्क्ति की कान्ति की प्रभा से क्षीण (निस्तेज) पृथ्वीतल पर सुशोभित हो रहा है।।४७।।

रराज शैलराजकन्यकालिकादुदञ्चिता
रणाभिलाषिणी मनागियं तथैव कालिका।
यथा दलत्प्रभातहेमवारिजातनिर्गतं
घनं समुन्नतं मधुव्रतप्रलोलमण्डलम्।।४८।।

अन्वय- इयम् अलिकात् उदञ्चिता रणाभिलाषिणी शैलराजकन्यका तथैव मनाक् रराज यथा दलत्प्रभातहेमवारिजातनिर्गतं मधुव्रतप्रलोलमण्डलं समुन्नतं घनम् (राजते) ।।४८।।

अनुवाद-यह मस्तक से ऊपर की ओर मुड़ी हुई युद्ध की इच्छा करने वाली शैलराज कन्यका (पार्वती) उसी प्रकार से क्षणभर के लिए सुशोभित हुई जैसे फूटते हुए प्रभातकालीन स्वर्णकमल से बाहर आये हुए भौंरों के चञ्चलमण्डलवाला समुन्नत बादल (शोभित होता है) ।।४८।।

महासिना शितामरद्विषद्बलस्खलत्कपा-
लजालनिस्सरद्विशालशोणिताहितानना।
मुकुन्दचन्द्रमौलिवन्दिता सनन्दनादिम-
न्दबोधनाशिनी प्रबोधमाशु मे ददातु सा।।४९।।

अन्वय- महासिना शितामरद्विषद्बलस्खलत्कपालजालनिस्सरद्विशालशोणि- ताहितानना मुकुन्दचन्द्रमौलिवन्दिता सनन्दनादिमन्दबोधनाशिनी सा मे आशु प्रबोधं ददातु ।।४९।।

अनुवाद- महान् खड्ग के द्वारा क्षीण राक्षसों के बल के कारण गिरते हुए कपालसमूह से निकलते हुए प्रचुररक्त से सर्वथा सने हुए (पुते हुए) मुखवाली, विष्णु एवं शिव से पूजित, सनन्दनादि (शनक, सनन्दन, सनातन, शनत्कुमार) के अज्ञान को नष्ट करने वाली वह (पार्वती) मेरे लिए शीघ्र प्रबोध को प्रदान करे ।।४९।।

शिवे शिवेन पूरयस्व मामनाथमाकुलं
कुलं समुज्ज्वलं भवत्विदं मया दयां कुरु।
अनेकजन्मशुद्धकर्मपाकतः पपात मे
श्रुतौ श्रुतिप्रसिद्धसिद्धसेवितो मनुस्तवा (मनुस्तवः)।।५०।।

अन्वय- शिवे! अनाथम् आकुलं मां शिवेन पूरयस्व। कुलं मया समुज्ज्वलं भवतु, इदं दयां कुरु। अनेकजन्मशुद्धकर्मपाकतः मे श्रुतौ श्रुतिप्रसिद्धसिद्धसेवितः मनुस्तवः पपात।।५०।।

अनुवाद- हे कल्याणरूपिणी! अनाथ आकुल मुझे कल्याण से भर दो। (मेरा) वंश मेरे द्वारा समुज्ज्वल हो जाय, यह दया करो। अनेक जन्मों के शुद्ध कर्मों के परिणाम से मेरे कानों में वेदप्रसिद्धसिद्धों के द्वारा सेवित 'मनुस्तव' गिरा है ।। ५०।।

विहाय मूढतानिगूढमन्त्रचिन्तनं तनो-
ति सन्ततं जनोऽन्तरिक्षसंवृते तवेह यः।
विभाति तत्पदारविन्दमानमन्महीशमौ-
लिलोलरत्नजालभृङ्गमालया समायुतम्।।५१।।

इति प्रमाणिकाछन्दः

अन्वय- अन्तरिक्षसंवृते इह यः जनः मूढतानिगूढमन्त्रचिन्तनं विहाय सन्ततं तव तनोति, तत्पदारविन्दम् आनमन्महीशमौलिलोलरत्नजालभृङ्गमालया समायुतम् विभाति ।।५१।।

अनुवाद- अन्तरिक्ष से सम्यक् रूप से घिरे यहाँ (पृथ्वीतलपर) जो मनुष्य मूर्खता में अन्तर्गुप्त मन्त्रचिन्तन को छोड़कर हरक्षण तुम्हारा विस्तार करता है (तुम्हारी महिमा का गुणगान या तुम्हारी अर्चना हेतु प्रेरणा में संग्लन रहता है) उसका चरणकमल सर्वात्मना प्रणाम करते हुए राजाओं के मुकुट के हिलते डुलते रत्नसमूहरूपी भौरों की माला से युक्त होकर सुशोभित होता है॥ ५१॥

(प्रमाणिका छन्द समाप्त)

छनच्छन्नं (घनच्छन्नं) बालद्युमणिकरजालैरुभयतः
समालीढं भूयादमृतकरबिम्बं यदि शिवे।
तदागच्छेत्सृक्वद्वयगलितरक्तं परिपतत्
कचस्तोमं मन्ये तव वदनमेतत्सदृशताम्।।५२।।

अन्वय- शिवे! यदि अमृतकरबिम्बम् उभयतः घनच्छन्नं बालद्युमणिकरजालैः समालीढं भूयात् तदा मन्ये सृक्वद्वयगलितरक्तम् परिपतत्कचस्तोमं तव एतत् वदनं सदृशताम् आगच्छेत् ।।५२।।

अनुवाद-हे कल्याणरूपिणी! यदि चन्द्र का बिम्ब दोनों ओर से बादलों से घिरा हुआ, प्रातः कालीन सूर्य की किरणों के समूह से सम्यक् रूप से आलीढ (परिव्याप्त) हो जाय, तब मानता हूँ कि दोनों किनारों से बहती हुई रक्तिमा वाला (दोनों किनारों से उद्भासित होती हुई लालिमा वाला) चारों ओर से गिरते हुए केश समूह वाला

(चारों ओर लटकते हुए कुन्तलसमूह वाला) तुम्हारा यह मुख सादृश्य को प्राप्त करे ।।५२।।

समुन्मीलन्तीभी रुधिरलहरीभिः परिगतं
महः किञ्चिद् ध्यानादिदमुदितमास्तां मम पुरः।
अकस्मादाकाशे विकसित उदारद्युतिचयो
जवापुष्पस्त्रग्भिर्वलित इव मार्तण्डनिकरः।।५३।।

अन्वय- आकाशे अकस्मात् विकसितः जवापुष्पस्त्रग्भिः वलितः उदारद्युतिचयः मार्तण्डनिकरः इव किञ्चिद् ध्यानाद् उदितम् समुन्मीलन्तीभिः रुधिर-लहरीभिः परिगतम् इदम् महः मम पुरः आस्ताम् ।।५३।।

अनुवाद-आकाश में अचानक विकसित जवापुष्प की मालाओं से लिपटा हुआ, उत्कृष्ट ज्योति के समुच्चयरूप सूर्यझुण्ड जैसा, कुछ ध्यान से उद्भूत, समुन्मीलित होती हुई रुधिर की तरह लाल लहरिकाओं से घिरा हुआ यह प्रकाश मेरे सामने स्थित हो।।५३।।

समुन्मीलन्तीयं तव दलितकण्ठादविरलं
चिरं पायात्सा मां ललिततरकीलाललहरी।
सपर्यापर्यायप्रहितनवबन्धूककुसुम-
स्त्रजोबोधं या मे विरचयति मातः प्रतिपलम् ।।५४।।

अन्वय- मातः! तव दलितकण्ठादविरलं समुन्मीलन्ती सा इयं ललिततरकीला- ललहरी मां चिरं पायात्। या मे प्रतिपलं सपर्यापर्यायप्रहितनवबन्धूक- कुसुमस्त्रजोबोधं रचयति।।५४।।

अनुवाद-हे माँ! तुम्हारे दलित कण्ठ (कृपा करने हेतु द्रवित कण्ठ) से निरन्तर समुन्मीलित होती हुई वह यह अत्यन्त मधुर अमृतोपम लहरी मेरी चिरकाल तक रक्षा करे। जो मेरे लिए प्रतिपल (तुम्हारी) शुश्रूषा की तैयारी हेतु प्रकृष्ट रूप से धारण की गयी अभिनव बन्धूक के फूलों की माला का बोध कराती रहती है ।।५४।।

मातस्त्वां प्रणमामि यामि बहलक्लेशाब्धिपारं क्षणा-
दित्याशाशतमांसलेन मनसा त्वामेव वन्दे पुनः।
तत्र त्वत्करुणैव तारणकरी काचित्तरी राजते
सत्कर्मोदयनाविकः पुनरसौ तस्यां जरीजृम्भते।।५५।।

अन्वय- मातः! त्वां प्रणमामि, क्षणाद् बहलक्लेशाब्धिपारं यामि इति आशाशत-मांसलेन मनसा पुनः त्वाम् एव वन्दे। तत्र तारणकरी काचित्तरी त्वत्करुणैव राजते। असौ सत्कर्मोदयनाविकः तस्यां पुनःजरीजृम्भते।।५५।।

अनुवाद-हे माँ! तुम्हें प्रणाम कर रहा हूँ। एकक्षण में बहुविध क्लेशरूपी समद्र के पार जा रहा हूँ। इस प्रकार की सैकड़ों आशाओं से पुष्ट मन से फिर तुम्हारी वन्दना करता हूँ। वहाँ तारने वाली किसी नाव के रूप में तुम्हारी करुणा ही सुशोभित हो रही है। यह सत्कर्मों को उभारने में लगा हुआ नाविक उसमें (नाव में) पुनः जमुहाई ले रहा है ।।५५।।

आस्तामग्रत एव देवविटपी किं तेन हस्ते पते-
दागत्य स्वयमेव चेन्मम शिवे चिन्तामणिस्तेन किम्।
त्वत्पादाम्बुजचारुचिन्तनसुधासंसेकसंवर्धिता
त्वत्कारुण्यसुरद्रुमादविरलं वाञ्छा ग्रहीतुं फलम्।।५६।।

अन्वय- शिवे! मम अग्रतः देवविटपी एव आस्ताम् तेन किम्? चेत् चिन्तामणिः स्वयमेव आगत्य मम हस्ते पतेत् तेन किम्? त्वत्कारुण्यसुरद्रुमादविरलं फलं ग्रहीतुं त्वत्पादाम्बुजचारुचिन्तनसुधासंसेकसंवर्धिता वाञ्छा ।।५६।।

अनुवाद-हे कल्याणरूपिणी! मेरे आगे कल्पवृक्ष ही स्थित हो, उससे क्या (हो सकता है)? यदि चिन्तामणि स्वयं ही आकर मेरे हाथों में गिर जाय, उससे क्या (हो सकता है)? तुम्हारे करुणारूपी कल्पवृक्ष से निरन्तर फल को ग्रहण करने के लिए तुम्हारे चरणकमल के सुन्दर चिन्तनरूपी सुधा के संसेक से बढ़ी हुई (मेरी) इच्छा है ।।५६।।

हे कल्पद्रुम निर्विकल्पममरोद्यानोदरे स्थीयतां
स्वच्छन्दं चर सर्वतस्त्रिभुवने त्वं कामधेनो ध्रुवम्।
चिन्तां मा वह हन्त सन्ततमहो चिन्तामणे सर्वथा
दृष्ट्वापि स्पृहयन्ति नैव भवने कात्यायनीचिन्तकाः ।।५७।।

अन्वय- हे कल्पद्रुम! निर्विकल्पकम् अमरोद्यानोदरे स्थीयताम्। कामधेनो! त्वं त्रिभुवने ध्रुवं सर्वतः स्वच्छन्दं चर। चिन्तामणे! सन्ततं हन्त चिन्ताम् मा वह। अहो! कात्यायनीचिन्तकाः भवने दृष्ट्वा अपि नैव स्पृहयन्ति।।५७।।

अनुवाद-हे कल्पद्रुम ! विकल्पशून्य होकर अमरोद्यान के अन्दर स्थित रहो। हे कामधेनु! तुम त्रिभुवन में दृढ़ता के साथ हर तरफ से स्वच्छन्द होकर विचरण करो। हे

चिन्तामणि! हर क्षण हाय चिन्ता को मत ढोओ! अरे! कात्यायनी के चिन्तक तुम लोगों को घर में देखकर भी नहीं ही स्पृहा करते हैं।।५७।।

सौजन्य स्फुटतामुपैहि पटुतां वैदग्ध्य विस्मारय (विस्तारय)
प्रागल्भ्य प्रकटीभव ध्रुवमहो मान प्रमाणीभव।
कीर्ते कल्पय दिक्प्रदक्षिणकलां दाक्षिण्य साक्षाद्भव
प्रत्यक्षीभवतीह भूधरसुताकारुण्यकल्पद्रुमः ।।५८।।

अन्वय- **सौजन्य! स्फुटताम् उपैहि, वैदग्ध्य! पटुतां विस्तारय, प्रागल्भ्य! प्रकटीभव, मान! ध्रुवम् प्रमाणीभव, कीर्ते! दिक् प्रदक्षिणकलां कल्पय, दाक्षिण्य! साक्षाद् भव! अहो! इह भूधरसुताकारुण्यकल्पद्रुमः प्रत्यक्षीभवति।।५८।।**

अनुवाद - हे सौजन्य! विकासशीलता को प्राप्त करो, हे वैदग्ध्य! पटुता का विस्तार करो, हे प्रागल्भ्य! प्रकट होओ, हे मान! दृढता के साथ प्रमाण बनो! हे कीर्ति! दिशाओं की परिक्रमा की कला की कल्पना करो, (उस कला में समर्थ हो जाओ) हे उदारता! प्रकट हो जाओ! अरे! यहाँ पार्वती का कारुण्यकल्पद्रुम प्रत्यक्ष हो रहा है ।।५८।।

स्थानं क्वापि गवेषय द्रुतमितो दारिद्र्यदन्तावल
द्रागुन्मीलति चण्डिकाचरणयोः कारुण्यकण्ठीरवः।
भूयः कालविलासमन्दिरमिदं धात्रा हृतं तावकं
जन्मारभ्य वयस्यता परिचिता हा हा हृता सावयोः।।५९।।

अन्वय- **दारिद्र्यदन्तावल! द्रुतम् इतः क्व अपि स्थानं गवेषय। चण्डिकाचरणयोःद्राक् कारुण्यकण्ठीरवः उन्मीलति। धात्रा भूयः तावकम् इदं कालविलास- मन्दिरम् हृतम्। जन्मारभ्य परिचिता सा आवयोः वयस्यता हा हा हृता ।।५९।।**

अनुवाद-हे दारिद्र्य रूपी हाथी! शीघ्र यहाँ से (जाकर) कहीं स्थान ढूँढ़ लो। चण्डिका के चरणों में तुरन्त कारुण्यरूपी सिंह उन्मीलन कर रहा है। विधाता के द्वारा बार बार तुम्हारा यह कालविलासमन्दिर हर लिया गया है। जन्म से लेकर (आज तक) परिचित वह हम दोनों की मित्रता हाय हाय हर ली गयी है।।५९।।

रे रे दारिद्र्य! दूरं व्रज भवन [भुवन] तलात्क्वापि पातालगर्भे
दुर्भेदे तिष्ठ मुक्तस्त्वमसि खलु मया वंशसंसेवकोऽसि।
कारुण्याम्भोधिपूरे प्रसरति परितो भूधराधीशजाया-
निर्दारिद्र्यं त्रिलोकीतलमिदमधुना कर्तुमुत्कण्ठितोऽस्मि।।६०।।

अन्वय- रे रे दारिद्र्य! भुवनतलाद् दूरं व्रज। क्वापि दुर्भेदे पालागर्भे तिष्ठ। त्वं खलु मया मुक्तः असि। वंशसेवकः असि। परितः भूधराधीशजाया-कारुण्याम्भोधिपूरे प्रसरति अधुना अहम् इदम् त्रिलोकीतलं निर्दारिद्र्यं कर्तुम् उत्कण्ठितः अस्मि ।।६०।।

अनुवाद- रे रे दारिद्र्य! भुवनतल से दूर चले जाओ। किसी दुर्भेद पातालगर्भ में बैठो। तुम निश्चय रूप से मेरे द्वारा मुक्त हो। वंश के सेवक हो। चारों ओर पार्वती के कारुण्यरूपी समुद्र की बाढ़ के व्याप्त हो जाने पर इस समय मैं इस त्रिलोकी तल को दारिद्र्यरहित करने के लिए उत्कण्ठित हो गया हूँ ।।६०।।

जीर्णं वस्त्रं वपुरतितरां शीर्णमेतत्समस्तं
कीर्णं चित्तं भुवनमखिलं दीनतालापपूर्णम्।
त्वत्कारुण्ये प्रसरति पुरः सर्वमन्यादृशं मे
जातं मातश्चरणकमलं तावकं चिन्तयामि।।६१।।

अन्वय- मातः! वस्त्रं जीर्णम्। एतत्समस्तं वपुः अतितराम् शीर्णम्। चित्तं कीर्णम्। अखिलं भुवनं दीनतालापपूर्णम्। पुरः त्वत्कारुण्ये प्रसरति मे सर्वम् अन्यादृशं जातम्। तावकं चरणकमलं चिन्तयामि ।।६१।।

अनुवाद- हे माँ! वस्त्र पुराना हो गया है (फट गया है)। यह सारा शरीर अत्यन्त सूख गया है (सड़ गया है)। चित्त विखर गया है। सारा संसार दीनता के आलाप से भर गया है। सामने तुम्हारे कारुण्य के प्रसरित होने पर मेरा सब बदल गया है। तुम्हारे चरणकमल का चिन्तन कर रहा हूँ ।।६१।।

अथ गङ्गाश्लोकाः

आलीवद्देवताली रचयतु परितश्चामरालीकवातं
मालामादाय बाला त्रिदशपुरयतेराकुलास्तां पुरस्तात्।
गङ्गे युष्मत्तरङ्गैरितरुचिरजलकणासारसङ्गे मदङ्गे
भूतानीताहिहारः पतति परमसौ द्वीपिचर्मानिलोऽयम्।।६२।।

अन्वय - गङ्गे! त्रिदशपुरयतेः पुरस्ताद् देवताली आलीवत् परितः चामरालीकवातं रचयतु। बाला मालाम् आदाय आकुला आस्ताम्। परम् युष्मत्तरङ्गैरितरुचिरजलकणासारसङ्गे मदङ्गे भूतानीताहिहारः द्वीपिचर्मा असौ अयम् अनिलः पतति ।।६२।।

गङ्गाश्लोक

अनुवाद- हे गङ्गा! शिव के सामने देवाङ्गना सखी की तरह चारों ओर से चँवरों से सुखकर वायु को रचे (चँवर झले)। रमणी माला को लेकर आकुल स्थित रहे। किन्तु तुम्हारी तरङ्गों से प्रेरित रुचिर जल कणों के अभिवर्षण (संस्पर्श) से युक्त मेरे अङ्ग पर प्रेतों के द्वारा लाये गये सर्परूपी हार वाली सिंह की खाल वाली हवा पड़ रही है ।।६२।।

नेतुं कुत्र प्रवृत्ता त्वमसि सुरसरिद् दृश्यते भूतसार्थः
स्फूर्जत्यग्रे भुजङ्गो वसनमपि तनोः केन सद्यो हृतं मे।
देवस्त्रीसेवनेन प्रसरति परितः केवलं कामदेव-
क्रीडा मन्दारनीडाकुलसमदपिकीकाकलीभिः क्षणेन।।६३।।

अन्वय- हे सुरसरित्! त्वं कुत्र नेतुं प्रवृत्ता असि। भूतसार्थः दृश्यते। अग्रे भुजङ्गः स्फूर्जति। केन सद्यः मे तनोः वसनम् अपि हृतम्। मन्दार-नीडाकुलसमदपिकीकाकलीभिः क्षणेन देवस्त्रीसेवनेन परितः केवलं कामदेवक्रीडा प्रसरति ।।६३।।

अनुवाद- हे देवनदी! तुम (मुझे) कहाँ ले जाने के लिए प्रवृत हो। प्रेतरूपी सार्थवाह दिखाई दे रहा है। सामने सर्प फुफकार रहा है। (न जाने) किसके द्वारा शीघ्र मेरे शरीर का वस्त्र भी चुरा लिया गया है? मन्दारवृक्ष के घोसले में व्याकुल मदमत्त कोयल की काकलियों के द्वारा क्षण भर देवाङ्गना का सेवन करने से चारों ओर केवल कामदेव की क्रीड़ा प्रसरित हो रही है।।६३।।

एषा श्लेषाभिलाषादभिसरति पुरश्चित्रलेखा विशेषा-
दाधत्ते पत्रलेखामुपचितमदनोल्लासवीची घृताची।
गानं कुत्रापि मानं क्वचिदपि रचितं चारुशय्यावितानं
हा हा गङ्गानुषङ्गादपि विषयविषाङ्गारसङ्गाभितापः ।।६४।।

अन्वय- एषा चित्रलेखा श्लेषाभिलाषात् पुरः अभिसरति। उपचित- मदनोल्लासवीची घृताची पत्रलेखाम् विशेषात् आधत्ते। कुत्र अपि गानं पानं क्वचित् अपि चारुशय्यावितानं रचितम्। हा! हा! गङ्गानुषङ्गादपि विषयविषाङ्गारसङ्गाभितापः ।।६४।।

अनुवाद- यह चित्रलेखा आलिंगन की इच्छा से सामने अभिसरण कर रही है। भरे हुए कामोत्सवविषयक आनन्दतरंगों वाली घृताची (अप्सरा) मदनलेख (प्रेमपत्र) को विशेष रूप से ला रही है। कहीं गान हो रहा है, पान हो रहा है, कहीं सुन्दरशय्या

से युक्त वितान बनाया गया है। हाय! हाय! गङ्गा के पास रहने से भी विषयवासनाओं के विषरूपी अंगार के प्रति आसक्ति से जन्य अभिताप (प्रतीत हो रहा है)!! ६४।।

रे रे गन्धर्वमुख्याः कलयत न पुरः कण्ठपाण्डित्यलीलां
बाधो मे जायते यत्त्रिदशपुरसरिद्वीचिझङ्कारपाने!
अन्धीभूता भवत्यः किमिति भुजलताबन्धनाय प्रवृत्ता
गङ्गातोयावगाहक्षणममलमिदं वर्तते देवनार्य्यः।।६५।।

अन्वय- **रे रे ! गन्धर्वमुख्याः! कण्ठपाण्डित्यलीलां पुरः न कलयत। यत् मे त्रिदशपुरसरिद्वीचिझङ्कारपाने बाधो जायते। देवनार्यः! भुजलताबन्धनाय प्रवृत्ता भवत्यः किम् अन्धीभूताः? इदम् अमलं गङ्गातोयावगाहक्षणम् वर्तते इति।।६५।।**

अनुवाद- हे गन्धर्वश्रेष्ठो। (अपने) कण्ठपाण्डित्यलीला को (मेरे) सामने न प्रकट करो। क्यों कि मुझे गंगा की लहरों के झंकार के पान में बाधा उत्पन्न हो रही है। हे देवाङ्गनाओ! भुजलताओं के बन्धन के लिए प्रवृत्त आप लोग क्या अन्धी हो गयी हैं? यह निर्मल गंगा जल में स्नान का समय है ऐसा (जानो)।।६५।।

दूरात्त्वद्वारिपूराहितमभवदिदं लोचनं देवयोगात्
पीतं न स्फीतमम्भस्तव न खलु मया पङ्कमङ्केऽवलिप्तम्।
गङ्गे को मेऽपराधः कलयसि यदिदं बन्धनं नागपाशैः
कण्ठे मे कालकूटं क्षिपसि विकसितज्वालमग्निं ललाटे।।६६।।

अन्वय- **गङ्गे! देवयोगात् दूरात् इदं लोचनम् त्वद्वारिपूराहितम् अभवत्। मया खलु तव स्फीतम् अम्भः न पीतम्, पङ्कम् अङ्के न अवलिप्तम्। मम कः अपराधः यत् इदं नागपाशैः बन्धनं कलयसि। मे कण्ठे कालकूटं ललाटे विकसितज्वालम् अग्निं क्षिपसि ।।६६।।**

अनुवाद-हे गङ्गा! देवयोग से दूर से यह नेत्र तुम्हारी जलधाराओं से भर गया है। मेरे द्वारा निश्चित रूप से तुम्हारा पवित्र जल नहीं पीया गया है, कीचड़ गोद में नहीं पोता गया है। मेरा क्या अपराध है जो यह नागपाशों से बन्धन का निर्माण कर रही हो (बन्धन का कार्य कर रही हो)? मेरे गले में कालकूट (एवं) ललाट पर तीव्र ज्वाला वाली अग्नि का प्रक्षेप कर रही हो।।६६।।

कासि त्वं केन सृष्टा किमिति विधिवशादागतोऽहं तटं ते
गङ्गे नाहं समर्थो गुणकथनविधौ तावकीने कदापि।
यस्माद्भस्माङ्गरागो भवति हृदि पतत्येष नागोऽतिभीमः
कण्ठे काकोलयोगः शिरसि वरसरित्पूरकोलाहलोऽयम् ।।६७।।

अन्वयं- गङ्गे! त्वं का केन सृष्टा असि? किम् इति? विधिवशात् अहं तव तटम् आगतः। अहं तावकीने गुणकथनविधौ कदापि न समर्थो यस्मात् भस्माङ्गरागः भवति। हृदि एष? अति भीमः नागः पतति, कण्ठे काकोलयोगः, शिरसि अयम् वरसरित्पूरकोलाहलः ।।६७।।

अनुवाद- हे गङ्गा! तुम कौन (हो)? किसके द्वारा उत्पन्न की गयी हो? क्या (है)? ऐसा (सोचकर) भाग्यवश मैं तुम्हारे तट पर आ गया हूँ। मैं तुम्हारे गुण के बखान करने की विधि (विधान) में कभी भी समर्थ नहीं हूँ। जिससे भस्म हो जाने वाले अंग के प्रति लगाव हो रहा है (बना हुआ है)। वक्षस्थल पर यह अत्यन्त विशाल नाग गिर रहा है, गले में काकोल योग (है)। सिर पर यह श्रेष्ठ नदी (गङ्गा) के प्रवाह का कोलाहल (है) ।।६७।।

पङ्कं कस्तूरिकाभं तव वपुषि मया देवि लिप्तं समस्ते
जातं कुन्दावदातं तदिह मम महत्कौतुकं सम्बभूव।
निःसङ्गाय त्वदीयं जलममलमिदं देवि गङ्गे निपीतं
देहार्धे सङ्गतेयं निवसति जगतां मोहनी कापि बाला।।६८।।

अन्वय- हे देवि! समस्ते वपुषि मया तव कस्तूरिकाभं पङ्कं लिप्तम्। इह तत् कुन्दावदातं जातम्। मम महत्कौतुकं सम्बभूव। देवि गङ्गे! निः सङ्गाय त्वदीयम् इदम् अमलं जलं निपीतम्। इयं जगतां मोहनी का अपि बाला देहार्धे सङ्गता निवसति ।।६८।।

अनुवाद-हे देवी! समूची शरीर में मेरे द्वारा तुम्हारा कस्तूरी की आभा जैसी आभा वाला कीचड़ लपेट लिया गया है। यहाँ वह (शरीर) कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल हो गया है। (यह) मेरे लिए अत्यन्त आश्चर्यजनक हो गया है। हे देवी गङ्गा। अनासक्ति के लिए तुम्हारा यह निर्मल जल (मेरे द्वारा) पीया गया है। यह संसार को विह्वल कर देने वाली कोई युवती देह के अर्धभाग में मिलकर निवास कर रही है ।।६८।।

येनात्यन्तकुकर्मशीलमनसा दत्तं पदं तावके
क्रोडे तस्य तु मस्तके पदमहो त्वं देवि धत्से हाठत्[हठात्]।
एतत्साधु न साधु तत्खलु मया त्वद्वारिविन्दुर्धृतो
मौलौ त्वं तु पदे यतस्य नितरां यज्जह्नुकन्ये मम।।६९।।

अन्वय-देवि जह्नुकन्ये! अहो! येन अत्यन्तकुकर्मशीलमनसा तावके क्रोडे पदम् दत्तम्, त्वं तु हठात् तस्य मस्तके पदं धत्से। एतत् साधु तत् खलु मया त्वद्वारिबिन्दुः मौलौ धृतः। त्वं तु मम यतस्य पदे नितराम् साधु न ।।६९।।

अनुवाद-हे देवी गंगा! आश्चर्य है कि जिसके द्वारा अत्यन्त कुकर्म शील मन से तुम्हारी गोद में स्थान बनाया गया, तुम तो हठपूर्वक उसके मस्तक पर अपना पाँव रख देती हो। यह अच्छा है, इसलिए निश्चित रूप से मेरे द्वारा तुम्हारे जल की बूँद (अपने) मस्तक पर रख ली गयी है। तुम तो मुझ संयत (प्रतिबद्ध) के स्थान (प्रदान) में पूरी तरह से साधु नहीं (हो) ।।६९।।

व्यर्थं मत्पापपूरं गणयसि बहुशश्चित्रगुप्तप्रयत्नात्
कुम्भीपाकादिकं वा कलयसि विकलः सावकाशं वृथैव!
याता स्वः सिन्धुधारा मम नयनपथं पश्य सङ्कीर्णमेतद्
व्योमस्वर्वारबालाकरकमलचलच्चामरस्त्रक्कलापैः ।।७०।।

अन्वय- मत्पापपूरं व्यर्थं गणयसि। चित्रगुप्तप्रयत्नाद् कुम्भीपाकादिकं बहुशः कलयसि। सावकाशम् वृथैव विकलः। स्वः सिन्धुधारा मम नयनपथम् याता। स्वर्वारबालाकरकमलचलच्चामरस्त्रक्कलापैः सङ्कीर्णम् एतत् व्योम पश्य ।।७०।।

अनुवाद-मेरे पापसमूह को व्यर्थ गिनती हो। चित्र गुप्त (यमराज के यहाँ पापपुण्य का लेखा जोखा रखने वाले) के प्रयत्न से कुम्भीपाकादिक (नरकों) को बार बार (व्यर्थ ही) प्रेरित करती हो। (मैं) अवसर के साथ व्यर्थ ही विकल हूँ। स्वर्गनदी की धारा मेरे नेत्रपथ से गुजरी है। स्वर्ग की वार वनिताओं के कमलवत् हाथों से झली (चलाई) जा रही चँवर मालाओं के कलापों से सङ्कीर्ण इस आकाश को देखो ।।७०।।

रम्भा सम्भावयन्ती कमपि मनसिजोल्लासमास्ते समन्ताद्
व्यग्रा गीर्वाणवर्गाश्चकित इव [गीर्वाणवर्गश्चकित इव]
पुरो गातुमुत्कण्ठते नो।
हा हा हा हारयष्टिः स्फुटपुलकसमाकीर्णवक्षोजकुम्भे
संवेदं याति शच्याः क इह सुरसरित्प्राघुणो मद्विपक्षः।।७१।।

अन्वय- समन्तात् कम् अपि मनसिजोल्लासं सम्भावयन्ती रम्भा व्यग्रा आस्ते। पुरः चकितः इव गीर्वाणवर्गः गातुम् नो उत्कण्ठते। शच्याः पुलकसमाकीर्णवक्षोजकुम्भे हा हा हा हारयष्टिः संवदेम् याति। इह कः मद्विपक्षः सुरसरित्प्राघुणः? ।।७१।।

अनुवाद- चारों तरफ से किसी कामोत्सव की सम्भावना करती हुई रम्भा व्यग्र बैठी है। सामने चकित सा देवसमूह गाने के लिए नहीं उत्कण्ठित हो रहा है। इन्द्राणी के स्पष्ट रोमाञ्च से भरे हुए कुचकलश में हाय हाय हाय हारयष्टि प्रतीति को प्राप्त कर रही है। यहाँ पर कौन मेरा विपक्ष गंगा का मेहमान (हो रहा है)? ।।७१।।

अथ त्रिवेणीश्लोकाः

गङ्गाकल्लोलसङ्गाकुलतरणिसुताम्भस्तरङ्गान्तराल-
व्यासङ्गायातवाणीसरिदरुणजला भाति केयं प्रयागे।
वैकुण्ठारोहणाय स्फटिकमणिमयी कापि कुत्रापि सृष्टा
नीलै रत्नैः प्रवालैः क्वचिदपि च बभौ किन्नु सोपानमाला।।७२।।

अन्वय- का 'इयम्' अरुणजला गङ्गाकल्लोलसङ्गाकुलतरणिसुताम्भस्तरङ्गान्तरालव्यासङ्गायातवाणीसरित् प्रयागे भाति। किं नु वैकुण्ठारोहणाय कुत्रापि स्फटिकमणिमयी कापि सोपानमाला सृष्टा, क्वचित् अपि नीलैः रत्नैः च प्रवालैः बभौ।।७२।।

त्रिवेणीश्लोक

अनुवाद- कौन यह अरुणजलवाली, गङ्गा के कल्लोल से मिलने के लिए आकुल यमुना के जल की तरङ्गों के अन्दर विशेष रूप से आसंग के लिए आयी हुई सरस्वती नदी प्रयाग में सुशोभित हो रही है। क्या निश्चित रूप से (यह) वैकुण्ठ पर चढ़ने के लिए कहीं स्फटिक मणि से युक्त कोई सोपान माला बनायी गयी है, और (जो) कहीं नीले रत्नों (एवं) प्रवालों से सुशोभित हुई है ।।७२।।

एकत्रायातदेवद्विजविविधतपोराशिधारानुकारा
चैकत्र स्वःपुरन्ध्रीगणचिकुरचयैः सञ्चितश्रीरिवेयम्।
एकत्रानेकदेवच्युतविबुधपुरोद्यानशोणप्रसून-
स्रग्भिर्बद्धेव बुद्धेर्दिशतु विमलतां ध्यानबद्धा त्रिवेणी।।७३।।

अन्वय- एकत्र आयातदेवद्विजविविधतपोराशिधारानुकारा, एकत्र च स्वःपुरन्ध्री-गणचिकुरचयैः सञ्चितश्रीः इव, एकत्र अनेकदेवच्युतविबुधपुरोद्यान-

शोणप्रसूनस्त्रग्भिः बद्धा इव ध्यानबद्धा इयं त्रिवेणी बुद्धेः विमलतां दिशतु ।।७३।।

अनुवाद-एक जगह आये हुए देवों ब्राह्मणों (एवं) विविधों (सन्तों) की तपोराशि की धारा का अनुकरण करने वाली और एक जगह स्वर्गाङ्गनाओं के केश समूह से अधिगत शोभा की भाँति (शोभा वाली), एक जगह अनेक देवों के द्वारा गिराये गये देवलोक के उपवन की रक्तिम पुष्प मालाओं से मानों आबद्ध ध्यानबद्ध यह त्रिवेणी बुद्धि की विमलता को प्रदान करे ।।७३।।

तिस्रो वेण्यो धरायाः किमु कमलरजोजालकस्तूरिकाम्भः-
कुन्दस्त्रक्चारुरूपा हरिचरणनतौ लोलतामापुरे ताः।
ता एव स्व [स्वः] स्त्रवन्तीदिवसकरसुताभारतीपूरसङ्ग-
श्रीरङ्गं सन्दधानाः सकलमपि महामङ्गलं वो दिशन्तु ।।७४।।

अन्वय- किमु धरायाः कमलरजोजालकस्तूरिकाम्भःकुन्दस्त्रक्चारुरूपाः ताः तिस्रः वेण्यः हरिचरणनुतौ लोलतामापुरे। ताः एव स्वस्त्रवन्तीदिवसकरसुता-भारतीपूरसङ्गश्रीरङ्गं सन्दधानाः वः सकलम् अपि महामङ्गलम् दिशन्तु।।७४।।

अनुवाद-क्या पृथ्वी के कमलपराग के समूह से युक्त कस्तूरी के जल में उत्पन्न कुन्द पुष्प की माला की भाँति सुन्दरस्वरूप वाली वे तीनों धारायें (भगवान्) विष्णु के चरणों की प्रणति में चंचलता को धारण करती हैं (चंचलता से भर गयी हैं)? वे ही (तीनों धारायें) स्वर्ग से बहती हुई (गंगा), सूर्यपुत्री (यमुना) (एवं) सरस्वती के पूर्ण मिलन से भगवत्स्वरूप का सन्धान करती हुईं (भगवत्स्वरूप को सम्यक् रूप से धारण करती हुई) तुम सबके लिए सभी प्रकार के महामंगल को प्रदान करें ।।७४।।

मुक्तिस्त्रीकण्ठहाराः किमु सकलमनोराज्यसङ्कल्पसिद्धाः
संशुद्धाः कल्पवृक्षाः किमु विषमयमत्रासपाशे कुठाराः
ब्रह्मानन्दैककन्दाः कलुषकुलमहारण्यदावानलाभाः
पायासुर्मां प्रयागाहितविमलजला निर्मलास्ते प्रवाहाः।।७५।।

अन्वय- ते मुक्तिस्त्रीकण्ठहाराः किमु सकलमनोराज्यसङ्कल्पसिद्धाः? संशुद्धाः कल्पवृक्षाः किमु यमत्रासपाशे कुठाराः? ब्रह्मानन्दैककन्दाः कलुषकुलमहारण्यदावानलाभाः प्रयागाहितविमलजलाः निर्मलाः प्रवाहाः मां पायासुः ।।७५।।

अनुवाद- वे मुक्तिरूपी स्त्री के कण्ठहार क्या समस्त मनः साम्राज्य के सङ्कल्प को सिद्ध करने वाले हैं? (निश्चितरूप से हैं)। सम्यक् रूप से शुद्ध कल्पवृक्ष क्या विषम

यम के त्रासरूपी पाश के लिए कुठार हैं? (निश्चित रूप से हैं)। ब्रह्मानन्दैक मात्र में लीन, पापसमूहरूपी विशाल जंगल के लिए दावानल जैसी ऊष्मा वाले प्रयाग में विद्यमान विमल जल वाले (वे) निर्मल प्रवाह मुझे पवित्र करें (उन्हें मुझे पवित्र करना चाहिए) ।। ७५।।

हा हा रावं वहन्तो वटविटपितटे कोटिकालुष्यकूटो-
च्छेदादेवेह वेदा [वेदाः] खिलविमलतरार्थैकसार्थाः समुत्थाः।
संसारोऽम्भोधि [संसाराम्भोधि] पारोत्सुकसकलजनोत्तारणायेव धात्रा
क्लृप्ता नौः शुक्लरक्तासितनिखिलगुणाकाररूपा त्रिवेणी।।७६।।

अन्वय- इह वटविटपितटे कोटिकालुष्यकूटोच्छेदादेव हा हा रावं वहन्तः खिलविमलतरार्थैकसार्थाः वेदाः समुत्थाः। संसाराम्भोधिपारोत्सुकसकल-जनोत्तारणाय धात्रा शुक्लरक्तासितनिखिलगुणाकाररूपा त्रिवेणी नौः इव क्लृप्ता।।७६।।

अनुवाद-यहाँ गंगा के वटवृक्षयुक्त तट पर करोड़ों पापकूटों के उच्छेद से ही हा हा कार युक्त कोलाहल को धारण करते हुए खिल सहित केवल विमलतर अर्थों के साथ वेद उत्पन्न हुए। संसाररूपी समुद्र से पार जाने को उत्सुक- समस्त लोगों को तारने के लिए ही विधाता द्वारा श्वेत लाल एवं कृष्णरूप (नीले) रूप में समस्त गुणों की आकारस्वरूप त्रिवेणी मानो नाव की भाँति निर्मित है (बनायी गयी है) ।।७६।।

ये केऽपि ध्यानधाराधवलितमनसो ब्रह्मसङ्कर्षरूपा
ब्रह्माण्डे ब्रह्मतेजः सकलमपि समुद्भूतमेतन्नु तेषाम्।
भूलोके तत्रिवेणी [तत्त्रिवेणी] कपटपटुतरं त्रीणि रूपाणि धत्ते
त्रैगुण्यादेव देवद्विजविविधमुनिस्नानपानाय साक्षात्।।७७।।

अन्वय- ब्रह्माण्डे ये के अपि ध्यानधाराधवलितमनसः ब्रह्मसङ्कर्षरूपाः, एतत् सकलम् अपि समुद्भूतम् ब्रह्मतेजः नु तेषाम्। भूलोके तत्-त्रिवेणी त्रैगुण्यादेव देवद्विजविविधमुनिस्नानपानाय कपटबहुतरम् त्रीणि रूपाणि साक्षात् धत्ते ।।७७।।

अनुवाद-ब्रह्माण्ड में जो कोई भी ध्यानरूपी धवल धारा से स्वच्छ मन वाले ब्रह्म से सम्यक्तया आत्मसात् (तत्स्वरूप) हैं, यह सम्पूर्ण भी समुद्भूत ब्रह्मतेज निश्चित रूप से उनका ही है। पृथ्वीलोक में वह त्रिवेणी त्रैगुण्य के ही कारण

देवों-ब्राह्मणों-विविध-मुनियों के स्नान एवं पान के लिए कपट की चतुरता के साथ तीन रूपों को साक्षात् धारण करती है ।।७७।।

अन्तः क्रीडत्करीन्द्रप्रकरकरतटोद्धूतभृङ्गावलीभिः
व्यालीढा क्वापि मज्जत्सकलसुरवधूकुङ्कुमैः क्वापि पूर्णा।
क्वापि त्रैलोक्यलक्ष्मीकरतलकलितैः पुण्डरीकैरिवेयं
संसक्ता मुक्तिलक्ष्मीं दिशतु मम हठादेव सेयं त्रिवेणी।।७८

अन्वय- **इयं त्रिवेणी क्वापि अन्तः क्रीडत्करीन्द्रप्रकरकरतटोद्धूतभृङ्गावलीभिः व्यालीढा। क्वापि मज्जत्सकलसुरवधूकुङ्कुमैः पूर्णा, क्वापि त्रैलोक्यलक्ष्मीकरतलकलितैः पुण्डरीकैः संसक्ता इव। सा इयं (त्रिवेणी) मम हठात् एव मुक्तिलक्ष्मीं दिशतु ।।७८।।**

अनुवाद- यह त्रिवेणी कहीं अन्तः क्रीडा करते हुए गजराजसमूह के सूँड़ों के अग्रभाग से उड़ायी गयी भौरों की पङ्क्तियों से भरी रहती है। कहीं स्नान करती हुई समस्त देवाङ्गनाओं के कुङ्कुमों से भरी रहती है। कहीं तीनों लोकों की लक्ष्मी के करतल से समाहृत कमलों से मानों संसक्त सी (दिखाई देती) है। वह यह (त्रिवेणी) मेरे हठ से ही (मेरे लिए) मुक्तिलक्ष्मी को प्रदान करे (प्रेरित करे) ।।७८।।

आरादन्धस्तनीनां दलनविधिकरा ब्रह्मणः किं कुठाराः
संसाराम्भोधिसारा यमनिकटचराणामपि प्रेमधाराः।
मारारिब्रह्मनारायणविविधसुरावाससौख्यप्रकाराः
सञ्चारादम्बुपूरा अरुणसितमहामेचकास्ते जयन्ति ।।७९।।

अन्वय- **किम् आरात् अन्धस्तनीनां दलनविधिकराः संसाराम्भोधिसाराः यमनिकटचराणाम् अपि प्रेमधाराः मारारिब्रह्मनारायणविविधसुरावाससौख्यप्रकाराः सञ्चारात् अरुणसितमहामेचकाः अम्बुपूराः ते ब्रह्मणः कुठाराः जयन्ति।।७९।।**

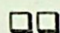
अनुवाद-क्या चारों ओर से पूतना की तरह स्तनों को धारण करनेवालियों (पिशाचिनियों) के विनाश हेतु विधान रचने वाले, संसाररूपीसमुद्र के सार (रूप) यम के निकट सञ्चरण करने वालों (प्राणियों) के भी प्रेम धार (स्वरूप) शंकर ब्रह्मा विष्णु एवं अनेक देवों के आवास एवं सोख्य के प्रकार, सञ्चरणशीलता के कारण लाल श्वेत तथा नीले (प्रतीत होने वाले) जल से भरे हुए वे ब्रह्मा के कुठार विजयशील हो रहे हैं? निश्चित रूप से हो रहे हैं ।।७९।।

एतन्मैथिलरामकृष्णतनयव्याहारधारासुधा-
साराकारसुरापगारविसुतागीरम्बुसङ्गाष्टकम्।
ये केऽप्यत्र पठन्ति ते निजयशोजालं विशालं जगद्-
व्यालं विप्रविकाश्य वैष्णवपदं सम्प्राप्य सन्तु स्थिराः।।८०।।

अन्वय- एतत् मैथिलरामकृष्णतनयव्याहारधारासुधासाराकारसुरापगारविसुतागीरम्बुसङ्गाष्टकम्। ये के अपि अत्र इदं पठन्ति ते विशालं निजयशोजालं विप्रविकाश्य जगद्व्यालम् वैष्णवपदं सम्प्राप्य स्थिराः सन्तु ।।८०।।

अनुवाद-यह मैथिल रामकृष्ण के पुत्र की वचनधारा रूपी सुधा के साररूप आकार वाला गङ्गा यमुना एवं सरस्वती के संगम का अष्टक है।। (संगम वर्णन के आठ श्लोक हैं) जो कोई भी यहाँ यह पढ़ते हैं वे विशाल अपनी यशोराशि को विशेष रूप से प्रकाशित कर संसार के लिए व्यालस्वरूप वैष्णव पद को प्राप्त कर स्थिर हों (स्थिर हो जाते हैं) ।।८०।।

इति *श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे* देवतास्तुतिप्रकरणम्
श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचितसकलरससारसंग्रह में देवतास्तुतिप्रकरण समाप्त



शृङ्गाररसप्रकरणम्

अथ शृङ्गाररसः

तत्रादौ सम्भोगः

सर्वाङ्गाभरणाकुलां प्रियतमामालीभिरासेवितां
चित्तेनैव पपौ प्रियः पथि पदन्यासालसां लोचनैः।
केलीमन्दिरदेहलीमुपगतां सर्वात्मना दोर्लता-
सङ्गोत्सङ्गतरङ्गितामथ पिबत्यास्येन बिम्बाधरे।।१।।

अन्वय- सर्वाङ्गाभरणाकुलाम् आलीभिः लोचनैः आसेवितां पथि पदन्यासालसाम् प्रियाम् प्रियः चित्तेन एव पपौ। अथ केलीमन्दिरम् उपगतां दोर्लता-सङ्गोत्सङ्गतरङ्गितां बिम्बाधरे आस्येन पिबति ।।१।।

शृङ्गाररस, संयोग

अनुवाद-समस्त अंगों में पहने हुए आभूषणों से आकुल (बोझिल) सखियों के द्वारा नजरों से सेयी गयी (पूरी तरह सँवारी गयी), मार्ग में पदन्यास के प्रति अलसाई हुई प्रियतमा को प्रियतम ने हृदय से ही पिया। इसके बाद (प्रियतम) कामक्रीड़ाभवन की डेहरी पर आई हुई भुजारूपी लताओं से संयोग के (सम्पर्क के) कारण वक्षस्थल से तरंगित (प्रियतमा) के कुनुरू के फल की तरह रक्तिम अधर पर (अधर का)मुख से पान कर रहा है ।।१।।

अन्योन्यं नयनान्तपातपरयोरन्योन्यमुन्मीलितै-
र्हासैः कुन्दकदम्बपूरितमिवावासं भृशं कुर्वतोः।
अन्योन्यं पुलकाङ्कुरैः कवलितां गण्डस्थलीं बिभ्रतोः
शृङ्गारार्णवपारतारणविधिर्यूनोः क्रमेणाभवत्।।२।।

अन्वय- अन्योन्यं नयनान्तपातपरयोः, अन्योन्यम् उन्मीलितैः हासैः आवासं भृशं कुन्दकदम्बपूरितम् इव कुर्वतोः, अन्योन्यं पुलकाङ्कुरैः कवलितां गण्ड-स्थलीं बिभ्रतोः यूनोः शृङ्गारार्णवपारतारणविधिः क्रमेण अभवत्।।२।।

अनुवाद-एक दूसरे के प्रति नेत्रों के द्वारा अन्तः सन्धान में लगे हुए, एक दूसरे के प्रति उन्मीलित हासों से आवास को पूरी तरह से कुन्द एवं कदम्ब से भरा हुआ सा करते हुए, एक दूसरे के प्रति रोमाञ्चोद्गम से भरी हुई कपोलस्थली को धारण करते हुए नायक नायिका का शृङ्गाररूपी समुद्र से पार जाने हेतु तैरने का अभ्यास (कार्य) क्रमशः सम्पन्न हुआ ।।२।।

मन्दं मन्दं चरणकमलन्यासमासादयन्ती
सव्यासव्यस्थितवरसखी लोचनान्दोलनेन।
स्वैरं स्वैरं शिथिलजघनं तोलयन्ती कथञ्चित्
किञ्चिन्नञ्चन्नयनयुगलं सालसा सा जगाम।।३।।

अन्वय- सव्यासव्यस्थितवरसखीलोचनान्दोलनेन मन्दम् मन्दम् चरणकमलन्यासम् आसादयन्ती, स्वैरं स्वैरं किञ्चित् अञ्चन्नयनयुगलं शिथिलजघनं कथञ्चित् तोलयन्ती, सालसा सा जगाम ।।३।।

अनुवाद-दाँई ओर तथा बाँई ओर स्थित प्रियसखियों के नेत्रस्पन्दन से (नेत्र इंगितो से) धीरे-धीरे चरणकमलों के न्यास को प्राप्त करती हुई (पग रखती हुई), अपनी इच्छानसुार कुछ लीलायित होते हुए, नेत्रयुगल को (तथा) शिथिल जघनभाग को किसी प्रकार सँभालती हुई, अलसाई हुई वह (नायिका) गयी।।३।।

आनीतालीजनेन स्थगितमतिरभूद् द्वारि केलीगृहस्य
स्वैरं तस्मिन् प्रयाते पतति नववधूत्रासगाढान्धकूपे।
पत्युर्दृग्पातयोगे तरलतरदृशौ विक्षपन्ती (विक्षिपन्ती) धरायां
श्वासैरुत्सारयन्ती सरसकुचतटी चन्दनं मन्दमास्ते।।४।।

अन्वय- केलीगृहस्य द्वारि आलीजनेन आनीता नववधूः स्थगितमतिः अभूत्। तस्मिन् स्वैरं प्रयाते त्रासगाढान्धकूपे पतति पत्युः दृक्पातयोगे तरलतरदृशौ मन्दं विक्षिपन्ती सरसकुचतटीचन्दनं श्वासैः उत्सारयन्ती धरायाम् आस्ते।।४।।

अनुवाद-कामक्रीड़ाभवन के द्वार पर सखी जनों के द्वारा लायी गयी नववधू छुपाये हुए अभिलाषों वाली हो गयी (प्रतीत हुई)। उन (सखीजनों) के स्वेच्छापूर्वक चले जाने पर (तथा) भय के गहन अन्धकार रूपी कुएँ में गिर जाने पर (वह नववधू) पति के नेत्रकटाक्षक्रम (नेत्रसञ्चालनकौशल) पर (अपने) दोनों तरलतर (चंचल) नेत्रों का धीरे से विक्षेप करती हुई गीले स्तनप्रदेश पर पुते चन्दन को साँसों से बुहारती हुई पृथ्वी पर बैठी है।।४।।

उपेतोऽयं निद्रामिति रभसगेहं नववधू-
रुपेता शय्याधः क्षणमपि च तस्थौ नतमुखी।
अथैतस्या लक्ष्यस्फुटपुलकमङ्गं गुरुजन-
त्रपातङ्कव्यस्ता जडिमरमणीया क्षणमभूत्।।५।।

अन्वय- अयम् निद्राम् उपेतः इति गुरुजनत्रपातङ्कव्यस्ता जडिमरमणीया रभसगृहम् उपेता च नतमुखी नववधूः शय्याधः क्षणम् अपि तस्थौ। अथ क्षणम् एतस्या अङ्गम् लक्ष्यस्फुटपुलकम् अभूत् ।।५।।

अनुवाद-यह (पति) निद्रा को प्राप्त हो गया है (नींद में है) ऐसा (सोचकर) बड़े लोगों से शर्म के भय (शर्म की आशंका) से ग्रस्त आलस्य से सुन्दर प्रतीत होने वाली कामक्रीड़ाभवन में पहुँची हुई और नीचे की ओर मुहँ की हुई नववधू शय्या (सेज) के नीचे क्षणभर भी बैठी, इसके बाद क्षण भर में इसका अंग अभिलाष की स्फुटता के कारण रोमाञ्चित (रोमाञ्चयुक्त) हो गया ।।५।।

मुग्धे मन्मथकेलिकौशलकला ज्ञाता न ते नो पुनः
ज्ञातस्ते मदमत्तनायकभुजाबन्धप्रबन्धोत्सवः।
स्यातां तौ तव गोचरौ प्रियजनासङ्गे यदा मद्वचः
क्रूरं वा मधुरं च वा सखि परं चित्ते तदा ज्ञास्यति (ज्ञास्यसि)।।६।।

अन्वय- मुग्धे सखि! मन्मथकेलिकौशलकला ते न ज्ञाता। च पुनः मदमत्तनायक-भुजाबन्धप्रबन्धोत्सवः ते नो ज्ञातः। पर यदा प्रियजनासङ्गे तौ तव चित्ते गोचरौ स्याताम्, तदा मद्वचः क्रूरं वा मधुरं ज्ञास्यसि ।।६।।

अनुवाद-हे मतवाली सखी! कामक्रीड़ाकौशल की कला तुम्हें नहीं आती। और फिर मदमत्त नायक के भुजबन्ध के बन्धन का सुख तुम्हें नहीं पता है। किन्तु जब प्रियतम के सहवास में वे दोनों (कामक्रीड़ाकौशलकला एवं भुजबन्धनानन्द) तुम्हारे हृदय में प्रतीत होंगे (अनुभूत होंगे) तब मेरी बात कठोर (है) अथवा मधुर (है) जान जाओगी ।।६।।

कलय वलयकाञ्चीकङ्कणादीनि देहे
निवसति रतिगेहे कोऽपि ते यामि शय्याम्।
रचयितुमिति मध्या शृण्वती स्वालिवाक्यं
नमयति मुखमीषद्रोचयन्ती तदेव।।७।।

अन्वय- वलयकाञ्चीकङ्कणादीनि देहे कलय। ते रतिगेहे कः अपि निवसति। शय्याम् रचयितुम् यामि इति स्व आलिवाक्यं श्रृण्वती मध्या तत् एव मुखम् ईषत् रोचयन्ती नमयति ।।७।।

अनुवाद-बाजूबन्द करधनी एवं कंगनों को देह में धारण करो। तुम्हारे रतिगृह में कोई रह रहा है। (तुम्हारी) सेज को लगाने के लिए (बिछाने के लिए) जा रही हूँ, ऐसी अपनी सखी की बात को सुनती हुई प्रौढा नायिका (मध्या) उसी (अपने) मुख को थोड़ा रुचिकर बनाती हुई झुका रही है।।७।।

किं मुग्धाक्षि विलोकयस्यविरलं मामद्य किञ्चित्क्षणात्
त्वामेवाह्विविनिर्गते रतिगृहे पर्यङ्कपाश्र्वे स्थिताम्।
बिभ्राणां करपल्लवे स्त्रजमहं द्रक्षामि [द्रक्ष्यामि] वामे करे
ताम्बूलस्य करङ्कमात्मनि कलाजालञ्च चेतोभुवः।।८।।

अन्वय- मुग्धाक्षि! अद्य किञ्चित्क्षणात् माम् एव अविरलं किं विलोकयसि! अहं अह्विविनिर्गते रतिगृहे पर्यङ्कपार्श्वस्थिताम् करपल्लवे स्त्रजम्, वामे करे ताम्बूलस्य करङ्कं च आत्मनि भुवः चेतः कलाजालम् बिभ्राणां त्वाम् एव द्रक्ष्यामि ।।८।।

अनुवाद-हे मतवाले नेत्रोंवाली! आज कुछ समय से मुझे ही निरन्तर क्यों देख रही हो? मैं दिन के बीत जाने पर काम (क्रीड़ा) भवन में पलंग (सेज) के पास में स्थित, किसलयवत् (दाहिने) हाथ में माला बाँये हाथ में ताम्बूल की डिब्बी और अपने आप में संसार के हृदय की कला सम्पत्ति (कला प्रपञ्च) को धारण करती हुई तुम्हें ही देखूँगा ।।८।।

पर्यङ्कस्य समीप एव कलिताङ्घ्रिन्यासलक्ष्मीमिमां
स्मेरार्द्राधरपल्लवः प्रियतमः सोत्कण्ठमालोकयत्।
स्मेरापाङ्गतरङ्गितामथ भुजाबन्धे समारोपयन्
आलोलाङ्गुलिपाणिना शिथिलयत्तस्यास्तु नीवीगुणम् ।।९।।

अन्वय- पर्यङ्कस्य समीपे एव कलिताङ्घ्रिन्यासलक्ष्मीम् इमाम् स्मेरार्द्राधरपल्लवः प्रियतमः सोत्कण्ठम् आलोकयत्। अथ स्मेरापाङ्गतरङ्गितां भुजाबन्धे समारोपयन् आलोलाङ्गुलिपाणिना तस्याः नीवीगुणम् तु अशिथिलय- त्।।९।।

अनवुाद-सेज के समीप ही पादप्रक्षेप से अभिव्यक्त सुन्दरतावाली इस (प्रियतमा) को मुसकुराहट से हुए गीले (सजीले) अधर पल्लव वाले (पल्लवसदृश अधरवाले) प्रियतम ने उत्कण्ठा के साथ देखा। इसके बाद मुसकुराने के कारण नेत्रकोणों से

पुलकित (हर्षित) इस (प्रियतमा) को (अपने) भुजबन्ध में लेते हुए हरतरफ से चञ्चल अँगुलियों वाले हाथ से उसके तो नीवीबन्ध को शिथिल कर दिया (खोल दिया)।।९।।

उल्लोलालकवल्लिवेल्लितभुजं व्यालोलहारावलि-
व्यावल्गत्कलकङ्कणं सुजघनाघातक्वणत्किङ्किणी।
आघूर्णन्नयनं समुद्गतमहासीत्कारमुन्मत्तयो-
रेकान्ते रतिरङ्गकौतुककलाभावोऽयमुज्जृम्भते।।१०।।

अन्वय- उल्लोलालकवल्लिवेल्लितभुजम् व्यालोलहारावलिव्यावल्गत्कलकङ्कणम्, सुजघनाघातक्वणत्किङ्किणी, आधूर्णन्नयनम् समुद्गतमहासीत्कारम् (इति) अयम् उन्मत्तयोः एकान्ते रतिरङ्गकौतुककलाभावः उज्जृम्भते ।।१०।।

अनुवाद-लहराती हुई केशरूपी लताओं से हिलती हुई भुजाओं वाला, चंचल हारावली वाला, इधर उधर घूमते हुए सुन्दर कंगनों वाला, सुन्दर जघन के आघात से क्वणन करती हुई करधनी वाला, घूमते हुए नयनों वाला, उठी हुई महान् सीत्कार (ध्वनि) वाला (ऐसा) यह उन्मत्त नायकनायिका का (प्रेमीयुगल का) रतिसुखविषयिणी उत्सुकता की कला का भाव उज्जृम्भण कर रहा है (जमुहाई ले रहा है) ।।१०।।

पर्यङ्कादुपसृत्य सौधवलभीमाश्रित्य नाभीमुखा-
दुत्सार्याञ्चलमाकलय्य च करं वामं कपोलस्थले।
धन्या एव कृतार्थतामुपगताः कान्तेन साकं चिरम्
सेवन्ते नवनीरदावलिकणानुद्वेलितान्मारुतैः।।११।।

अन्वय- पर्यङ्कात् उपसृत्य सौधवलभीम् आश्रित्य नाभीमुखात् अञ्चलम् उत्सार्य च वामं करं कपोलस्थले आकलय्य कृतार्थताम् उपगता धन्याः एव कान्तेन साकम् चिरं मारुतैः उद्वेलितान् नवनीरदावलिकणान् सेवन्ते।।११।।

अनुवाद- शय्या से उठकर (सरककर) भवन की छत का आश्रय लेकर नाभिस्थल से आँचल को उठाकर बाँये हाथ को कपोलस्थल (गालों) पर रखकर (टिकाकर) कृतकृत्यता को प्राप्त करने वाली धन्य ही (नायिकाएँ) प्रियतम के साथ बहुत दिनों तक हवाओं के द्वारा उद्वेलित अभिनव मेघपङ्क्तियों के कणों का सेवन करती हैं ।।११।।

आलोलितालकलताश्रमवारिविन्दु-
सन्दिग्धगण्डपुलकाकुलकर्णपूरा।
शृङ्गारसागरगुरुप्लवनोपजात-
मालस्यमेव दधती सुदती जगाम ।।१२।।

अन्वय- आलोलित-अलकलता-श्रमवारिविन्दुसन्दिग्धगण्डपुलकाकुलकर्णपूरा सुदती शृङ्गारसागरगुरुप्लवनोपजातम् आलस्यं दधती एव जगाम।।१२।।

अनुवाद-चारों ओर से लहराती हुई केशरूपी लता (एवं) परिश्रम से उद्भूत प्रस्वेदबिन्दु से लथफथ कपोलस्थल के रोमाञ्च से चञ्चल कर्णाभूषणवाली सुन्दर दन्तपङ्क्तियों वाली (नायिका) शृङ्गाररूपीसागर में अत्यन्त तैरने से उत्पन्न आलस्य को धारण करती हुई ही गयी ।।१२।।

गण्डावलम्बिचिकुरावलिराकुलाक्षि-
विक्षुब्धमुग्धमदमन्थरतारकेयम्।
विस्रस्तहारवलया वलिनीविबन्ध-
सन्धानसन्निहितपाणितलं प्रयाति ।।१३।।

अन्वय- गण्डावलम्बिचिकुरावलिः, आकुलाक्षिविक्षुब्धमदमन्थरतारका, विस्रस्त-हारवलया इयम् बलिनीविबन्धसन्धानसन्निहितपाणितलं प्रयाति ।।१३।।

अनुवाद-कपोल पर लटकते हुए कुन्तलों वाली, आकुल नेत्र एवं आन्दोलितमद से शिथिल नयनपुतलियों वाली, ढीले हुए हार एवं कंगनों वाली यह (नायिका) त्रिवली के पास की नीवी की गाँठ के सन्धान में संलग्न (व्यापृत) भुजाओं के बीच जा रही है (प्रियतम के भुजपाश में जा रही है)।।१३।।

आलस्यं वपुषि स्फुटं मुखपुटे जृम्भा मुहुर्जायते
लोलापाङ्गतरङ्गिते तव दृशौ क्षुब्धञ्च चेतो मुहुः।
मन्ये मञ्जुकथाविनोदकजनासङ्गेन रङ्गे परं
किं नीतं शिवरात्रमत्र विदुषि स्वैरं त्वया जागरैः।।१४।।

अन्वय- हे विदुषि! तव वपुषि आलस्यं स्फुटम्। मुखपुटे मुहुः जृम्भा जायते। दृशौ लोलापाङ्गतरङ्गिते च चेतः मुहुः क्षुब्धम्। मन्ये, किं त्वया अत्र रङ्गे मञ्जुकथाकविनोदकजनासङ्गेन परं शिवरात्रम् जागरैः नीतम् ।।१४।।

अनुवाद-हे विदुषी! तुम्हारे शरीर में आलस्य स्पष्ट है। मुख मण्डल में जमुहाई आ रही है (उभर रही है)। दोनों नेत्र चञ्चल अपाङ्गों (नेत्रकोणों) से तरङ्गित हैं, और

चित्त बार बार आन्दोलित (हो रहा) है। (ऐसा) अनुभव कर रहा हूँ (मान रहा हूँ)। क्या तुम्हारे द्वारा यहाँ रङ्गस्थल पर मधुरकथा से विनोद करने वाले लोगों के सान्निध्य बस स्वच्छन्द जागरण से विशाल शिवरात्रि बिता दी गयी है? ।।१४।।

व्यजनपवनमङ्के वल्लभस्यादधाना
सुचिरमुदितपादद्वन्द्वकम्पापि नेयम्।
उपविशति समीरान्दोललोलोत्तरीया
कलयति न करं तद्योजनायाः सशीलम्।।१५।।

अन्वय- **वल्लभस्य अङ्के व्यजनपवनम् आदधाना समीरान्दोललोलोत्तरीया सुचिरम् उदितपादद्वन्द्वकम्पा अपि इयम् उपविशति न, सशीलम् तद्योजनायाः करं कलयति न।।१५।।**

अनुवाद-प्रियतम के अङ्ग में पंखे से हवा करती हुई, पवनान्दोलन से चञ्चल उत्तरीय वाली (आँचलवाली) बहुत समय से उद्भूत दोनों पैरों के कँपकँपाहट वाली (कँपकँपाहट को धारण करती हुई) भी यह (नायिका)- बैठती नहीं है, शील के साथ उस योजना में लगे हुए (नीवी की गाँठ को खोलने में व्यापृत प्रियतम के) हाथ को सँभालती (भी) नहीं है ।।१५।।

गात्रं तावकमेव सुन्दरि मया सम्भूषणीयं बहि-
र्भूया इत्युपजातमालिवचनं चैकत्र मातुर्वचः।
गेहे कृत्यमहोऽस्ति तेन हि किमित्येकत्र जातुर्वचः
क्रूरं किन्तु न मुञ्चति प्रियतमे सा तालवृन्तानिलम्।।१६।।

अन्वय- **सुन्दरि! बहिर्भूयाः, तावकम् एव गात्रम् मया सम्भूषणीयम् इति आलिवचनम्। च एकत्र अहो! गेहे कृत्यम् अस्ति, मातुर्वचः, एकत्र हि तेन किम् इति क्रूरं जातुर्वचः, किन्तु सा प्रियतमे तालवृन्तानिलम् न मुञ्चति ।।१६।।**

अनुवाद-"हे सुन्दरी! बाहर हो जाओ, तुम्हारा ही शरीर मेरे द्वारा सजाये जाने योग्य है ऐसी सखी की बात, और एक तरफ "अरे घर में कार्य है" (ऐसी) माँ की बात, एक तरफ "तो उससे क्या" ऐसी क्रूर पड़ोसी की बात उभर रही है, किन्तु वह प्रियतम पर ताल वृन्त से की जाने वाली हवा (पंखा झूलने का कार्य) नहीं छोड़ रही है ।।१६।।

रदनच्छदयोर्मध्ये स्मेरमस्याः कुलस्त्रियः।
प्रवालकूलपीयूषप्रवाहं सुखमादधौ ।।१७।।

अन्वय- अस्याः कुलस्त्रियः रदनच्छदयोर्मध्ये स्मेरम् प्रवालकूलपीयूषप्रवाहम् सुखम् आदधौ ।।१७।।

अनुवाद-इस कुलाङ्गना के दोनों होठों के बीच मनोहरता के साथ मूँगा की तरह रक्तिम प्रान्त भाग वाले अमृतप्रवाह ने सुख को सम्यक् रूप से धारण किया (सुख को हर प्रकार से प्राप्त किया) ।।१७।।

कर्पूराद्युपचारचारुवदने संयोजयन्ती मुहु-
स्ताम्बूलं रमणस्य वृन्तपवनं विस्तारयन्ती पुरः।
क्लान्तासीत्यभिधाय पाणिकमलेनाधाय हस्ताङ्गुलौ
कान्ता कापि निवेशिता प्रियतमेनाङ्के सरोमोद्गमा ।।१८।।

अन्वय- रमणस्य कर्पूराद्युपचारचारुवदने मुहुः ताम्बूलम् संयोजयन्ती पुरः वृन्तपवनं विस्तारयन्ती सरोमोद्गमा का अपि कान्ता प्रियतमेन क्लान्ता असि इति अभिधाय हस्ताङ्गुलौ पाणिकमलेन आधाय अङ्के निवे- शिता।।१८।।

अनुवाद-प्रियतम के कर्पूर एवं केशर के लेपन से सुन्दर मुख में बार-बार ताम्बूल की संयोजना करती हुई सामने वृन्त से हवा का विस्तार करती हुई रोमाञ्चयुक्त कोई नायिका प्रियतम के द्वारा "क्लान्त हो" ऐसा कहकर हाथ के अङ्गुलिद्वय को कमलवत् हाथों से पकड़कर गोद में बैठा ली गयी।।१८।।

मदनसदनदीप्तिं कल्पयन्ती कलाभिः
प्रथमरससमुद्रं कञ्चिदासादयन्ती।
नवमिव तमनङ्गं साङ्गमुत्पादयन्ती
रमणमभिसरन्ती भाति सीमन्तिनीयम् ।।१९।।

अन्वय- इयं सीमन्तिनी कलाभिः मदनसदनदीप्तिं कल्पयन्ती कञ्चित् प्रथम रससमुद्रम् आसादयन्ती तमनङ्गं साङ्गम् नवम् इव उत्पादयन्ती रमणम् अभिसरन्ती भाति।।१९।।

अनुवाद-यह सौभाग्यवती नायिका कलाओं से मदनसदन की दीप्ति को निष्पन्न करती हुई किसी प्रथमरससमुद्र को प्राप्त करती हुई उस अनङ्ग को अङ्गयुक्त नवीन सा उत्पन्न करती हुई प्रियतम के साथ अभिसार करती हुई सुशोभित हो रही है ।।१९।।

मुकुलयति कपोलौ फुल्लरोमाङ्कुरौघैः
शिथिलयति सखीनामाननालोकलीलाम्।
पिशुननयनपातं न्यक्करोतीक्षणेन
प्रियतममुखलक्ष्मीमापिबन्ती वधूटी।।२०।।

अन्वय- प्रियतममुखलक्ष्मीम् आपिबन्ती वधूटी कपोलौ मुकुलयति। फुल्लरोमा- ङ्कुरौघैः सखीनाम् आननालोकलीलां शिथिलयति। ईक्षणेन पिशुननयनपातम् न्यक्करोति ।।२०।।

अनुवाद-प्रियतम के मुख की सुन्दरता को सम्यक् रूप में पीती हुई नायिका दोनों गालों को मुकुलित करती है (सिकोड़ती है)। फूले हुए रोमाङ्कुर की बाढ़ से (रोमाञ्चाधिक्य से) सखियों की मुखदीप्तिलीला को शिथिल करती है। अवलोकन से पिशुनों जैसी नेत्रदृष्टि को अपमानित करती है ।।२०।।

खरनखरविघातं जानती पुष्पमालां
दशनदलनमास्ये वीटिकां मन्यमाना।
कुसुमभवनपातं बन्धनं चापि बाह्वो
रमयति कुलकान्ता वल्लभं मल्लबुद्धिम्।।२१।।

अन्वय- आस्ये दशनदलनं खरनखरविघातं जानती वीटिकां पुष्पमालां मन्यमाना अपि च बाह्वोः बन्धनं कुसुमभवनपातं (मन्यमाना) कुलकान्ता मल्लबुद्धिम् वल्लभं रमयति ।।२१।।

अनुवाद-मुख में दन्तक्षत को तीक्ष्ण नखक्षत समझती हुई (जानती हुई) पान की वेल को पुष्पमाला मानती हुई और भुजाओं के बन्धन (बन्धनजाल) को भी पुष्पगृहापात (फूलों के घर में गिर पड़ना) (मानती हुई) कुलवधू मल्ल की तरह बुद्धि रखने वाले प्रियतम को आनन्दित कर रही है ।।२१।।

आयाते दयिते निजाङ्गणतले सामाजिकैः सङ्कुले
देहल्यामतिवामनीकृततनुर्दृक्पातमातन्वती।
आनम्रादवगुण्ठनात्पुलकितां गण्डस्थलीं बिभ्रती
बाला स्मेरतरङ्गिताधरतटी न स्पन्दमाविन्दति ।।२२।।

अन्वय- सामाजिकैः सङ्कुले निजाङ्गणतले दयिते आयाते देहल्याम् अतिवामनीकृततनुः स्मेरतरङ्गिताधरतटी बाला आनम्रात् अवगुण्ठनात् दृक्पातम् आतन्वती पुलकितां गण्डस्थलीं बिभ्रती स्पन्दम् न आविन्दति ।।२२।।

अनुवाद-सामाजिकों से भरे हुए अपने घर के आँगन में प्रियतम के आ जाने पर (अपने निजी कक्ष की) देहली पर (डेहरी पर) अत्यन्त सिकोड़े हुए शरीरवाली मुसकान से तरङ्गित अधर तटों वाली बाला (नायिका) नीचे तक लटके हुए (झुके हुए) घूँघट से (घूँघट के अन्दर से) नेत्रविच्छित्ति को प्रेरित करती हुई (साधती हुई) रोमाञ्चित कपोलस्थली को धारण करती हुई पूरी तरह से स्पन्दन को नहीं प्राप्त कर रही है ।।२२।।

कृत्वा मालिकसुन्दरीसममहं वेशं तदन्तः पुरं
यातः सायमनाकुलः करतले मालां वहंस्तादृशीम्!
सापि प्रेमभरादुदञ्चदधिकं स्वेदञ्च रोमाञ्चितं
दृष्ट्वा मामतिकैतवेन भवनारामं ययौ निर्जनम् ।।२३।।

अन्वय-अहं मालिकसुन्दरीसमम् वेशं कृत्वा करतले तादृशीं मालां वहन् सायम् अनाकुलः तदन्तः पुरम् यातः। सा अपि प्रेमभरात् उदञ्चदधिकस्वेदं च रोमाञ्चितं माम् अतिकैतवेन दृष्ट्वा निर्जनं भवनारामं ययौ ।।२३।।

अनुवाद- मैं मालिकसुन्दरी के समान वेश बनाकर हाथ में (हथेली में) उस प्रकार की माला को रखे हुए सायंकाल बिना किसी आकुलता के उसके अन्तः पुर गया। वह भी प्रेम के भार से उद्भूत होते हुए अधिक पसीने वाले और रोमाञ्चित मुझे अत्यन्त कैतव के साथ देखकर निर्जन गृहोपवन में चली गयी।।२३।।

त्वत्पर्यङ्के श्रुतमिति मया सिञ्जितं कङ्कणादेस्-
तत्किं सत्यं शृणु सखि मया कथ्यते तस्य हेतुः।
दृष्टः स्वप्ने हृदयदयितस्तं समालिङ्गयन्त्या
बाहुद्वन्द्वं मदनसदनं चञ्चलं मे बभूव।।२४।।

अन्वय-सखि! शृणु। त्वत्पर्यङ्के मया कङ्कणादेः सिञ्जितं श्रुतम्। तत् किं सत्यम्? मया तस्य हेतुः कथ्यते। स्वप्ने हृदयदयितः दृष्टः, तं समालिङ्गयन्त्याः मे बाहुद्वन्द्वं मदनसदनं चञ्चलं बभूव ।।२४।।

अनुवाद-हे सखी! सुनो। तुम्हारी पलँग (शय्या) पर मेरे द्वारा कंगन आदि की ध्वनि सुनी गयी, क्या वह सच है? (हाँ) मेरे द्वारा उसका कारण कहा जा रहा है। स्वप्न में हृदय प्रिय (प्रियतम) दिखाई दिया। उसका आलिङ्गन करते हुए मेरा दोनों हाथ (एवं) मदनमन्दिर चञ्चल हो गया ।।२४।।

त्वयि शयनगतायां त्वद्गृहस्योपकण्ठे
कथमभवदमन्दो हंसकद्वन्द्वनादः।
किल वदसि सखि त्वं किन्तु नो निष्कुटेऽस्मिन्
सरसि स हि मयापि श्रोत्रयुग्मेन पीतः॥२५॥

अन्वय- सखि! त्वयि शयनगतायाम् त्वद्गृहस्य उपकण्ठे कथम् अमन्दः हंसकद्वन्द्वनादः अभवत्। त्वं किल नो वदसि। किन्तु निष्कुटेऽस्मिन् सरसि मया अपि स श्रोत्रयुग्मेन हि पीतः ॥२५॥

अनुवाद- हे सखी! तुम्हारे सो जाने पर तुम्हारे घर के समीप क्यों तेज हंस के जोड़े की आवाज हुई। तुम निश्चितरूप से नहीं बोल रही हो। किन्तु झुरमुट में (स्थित) इस सरोवर में मेरे द्वारा भी वह (वाणी) दोनों कानों के द्वारा ही पीयी गयी है (सुनी गयी है) ॥२५॥

आलि त्वं कुत आगतासि सरसः कर्तुं किमेकाकिनी
कान्तस्तिष्ठति देवपूजनविधौ नेतुं तदर्थं जलम्।
क्लान्तासीह कथं श्रमाम्बुभिरिदं क्लिन्नं कथं ते मुखं
मध्याह्नातपतापिते पथि भृशं सञ्चारदोषादभूत् ॥२६॥

अन्वय- आलि! त्वम् एकाकिनी कुतः किं कर्तुम् आगता असि? देवपूजनविधौ तदर्थम् सरसः जलं नेतुम् कान्तः तिष्ठति। इह क्लान्ता कथम् असि। कथं मध्याह्नातपतापिते पथि सञ्चारदोषात् इदं ते मुखं श्रमाम्बुभिः भृशं क्लिन्नम् अभूत् ॥२६॥

अनुवाद- हे सखी! तुम अकेली कहाँ से क्या करने के लिए आयी हुई हो। भगवत्पूजन प्रक्रिया में उसके हेतु (पूजन हेतु) तालाब से जल लेने के लिए प्रियतम बैठा है। (तुम) यहाँ थकी क्यों हो? क्या मध्याह्न- कालीन धूप से तपाये गये रास्ते पर चलने के दोष से यह तुम्हारा मुख प्रस्वेद बिन्दुओं से अत्यन्त गीला हो गया है? ॥२६॥

अथाभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेकात्मको [हेक्कात्मको]
विप्रलम्भः त्रायमभिलाषः

तादृग्भ्रूभङ्गिरङ्गीकृतकमलमिलद्भृङ्गशोभा पुनः स्या-
देतस्या नन्दसान्द्रा पुनरपि भविता तादृशी स्मेरधारा।
दृक्पाते सा विभङ्गिर्घनतरपुलकोद्गारधारा च सा मे
स्यादेतन्मन्दहासायितमधरदलं प्राङ्गणे तत्पुरस्तात् ॥२७॥

अन्वय- पुरस्तात् मे एतस्याः पुनः तादृग्भ्रूभङ्गिः, सा अङ्गीकृतकमलमिलद्- भृङ्गशोभा स्यात्। नन्दसान्द्रा तादृशी स्मेरधारा पुनः अपि भविता। दृक्पाते घनतरपुलकोद्गारसारा सा विभङ्गि स्यात्, प्राङ्गणे तत् एतन्मन्द-हासायितमधरदलं (स्यात्) ।।२७।।

अभिलाष-विरह-ईर्ष्या-प्रवास-शाप एवं हिचकी स्वरूप विप्रलम्भ,

अभिलाष

अनुवाद-सामने से मेरे लिए इसकी फिर उस प्रकार की भौंहों की भङ्गिमा, वह अङ्गीकार किये हुए कमलों में मँडराते हुए भौंरों की शोभा हो। हर्ष से भरी हुई वैसी मुसकान की धारा फिर से भी हो। नेत्रपात में सघन रोमाञ्चोद्गम के प्रवाहवाला वह बाँकपन हो, प्राङ्गण में वह इसका मन्दहास से युक्त अधरदल (हो) ।।२७।।

किञ्चित्कुञ्चितलोचनाञ्चलचमत्कारं समातन्वती
मन्दं वक्रितकन्धरं स्मितमिव स्वैरं मुखे बिभ्रती!
साशङ्कं सकुतूहलं सचकितं पादौ दधाना दधि
स्मेरेन्दीवरलोचना मम पुनः भूयात्कदा सम्मुखी।।२८।।

अन्वय- किञ्चित्कुञ्चितलोचनाञ्चलचमत्कारं समातन्वती वक्रितकन्धरं मुखे मन्दं स्मितं स्वैरं बिभ्रती इव पाणौ दधि दधाना स्मेरेन्दीवरलोचना साशङ्कं सकुतूहलं सचकितं कदा पुनः मम सम्मुखी भूयात्? ।।२८।।

अनुवाद-कुछ वक्रिम नेत्रकोणों से विच्छिति को सम्यक् रूप से उभारती हुई, तिरछी गरदन, (तथा) मुख में मन्द मुसकान को स्वच्छन्द रूप से धारण करती हुई, हाथों में दधि को लिए हुए प्रफुल्लित (सुविकसित) कमल की तरह नेत्रवाली (सुन्दरी) शङ्का के साथ कुतूहल के साथ (तथा) विस्मय के साथ कब फिर मेरे सम्मुख (मेरी ओर मुँह किये हुए) हो (हो सकती है)? ।।२८।।

न्यञ्चद्बाहुरुदञ्चदञ्चलमिलद्व्याकुञ्चि नेत्रद्युति-
ग्रीवाभङ्गिनतावगुण्ठनपटा व्यालोलहारावलिः।
यत्ताम्बूलकरङ्कतो मम करे दातुं पुरो वीटिकां
चक्रे चारुकरक्रमं शिशुमुखी तत्केन विस्मर्यते ।।२९।।

अन्वय- न्यञ्चद्बाहुः उदञ्चदञ्चलमिलद्व्याकुञ्चिनेत्रद्युतिः ग्रीवाभङ्गिनतावगुण्ठनपटा व्यालोलहारावलिः शिशुमुखी ताम्बूलकरङ्कतः वीटिकां मम करे दातुं यत् चारुकरक्रमं चक्रे तत् केन विस्मर्यते ।।२९।।

अनुवाद-झुकाती हुई भुजाओं वाली, लहराते हुए अंचल की चंचलता से सिकुड़े हुए (अर्धावृत) नेत्रों की शोभा वाली, गरदन के मोड़ने से झुके हुए (नीचे की ओर लटकते हुए) घूँघट के वस्त्र वाली, चतुर्दिक् चञ्चल हारलता वाली, शिशु की तरह (कैतवशून्य) मुखमण्डल वाली (नायिका) ने पान के डिब्बे से पान की वेल को मेरे हाथ में देने के लिए जो सुन्दर हस्तसञ्चालन किया, वह किसके द्वारा भुलाया जा रहा है (भुलाया जा सकता है)? ।।२९।।

नृत्यन्मत्तालिमालाकुलवकुलदलामोदसन्दोहमुग्धे
न्यञ्चद्वीचीकदम्बस्फुरितघनकणासारसंसेकशीते।
उन्मीलत्कामलीला समुदितपुलका किञ्चिदाकुञ्चिदाक्षी [ताक्षी]
सा भूयादङ्कसुप्ता पुनरपि सरसीतीरवानीरकुञ्जे।।३०।।

अन्वय- नृत्यन्मत्तालिमालाकुलवकुलदलामोदसन्दोहमुग्धे न्यञ्चद्वीचीकदम्बस्फुरितघनकणासारसंसेकशीते सरसीतीरवानीरकुञ्जे उन्मीलत्कामलीलासमुदितपुलका किञ्चित् आकुञ्चिताक्षी सा पुनरपि अङ्कसुप्ता भूयात्।।३०।।

अनुवाद-नाचते हुए मतवाले भौरों के समूह से आकुल वकुल पुष्प की पंखुड़ी के सुगन्धिसमुच्चय से मुग्ध, लहराती हुई तरङ्गों के समूह से स्फुरित मेघकणों की वर्षा के अभिषेक से शीतल पोखरी के जल से युक्त वेंत के कुञ्ज में उन्मीलन करते हुए काम की लीला से उद्भूत रोमाञ्च वाली कुछ आकुञ्चित (अर्ध निमीलित) नेत्रों वाली वह (नायिका) फिर से गोद में सोई हुई (गोद में लेटी हुई) हो (हो जाय) ।।३०।।

आलीस्कन्धाहितभुजलताः किञ्चिदाकुञ्चिताङ्ग्यो
मन्दं मन्दं चरणकमलन्यासमासादयन्त्यः।
सौधे सौधे स्मितलवसुधासेकमेताः समेताः
पश्यन्त्यम्भोधर तव रुचिं ब्रूहि धन्योऽसि कस्त्वम्।।३१।।

अन्वय- अम्भोधर! एताः आलीस्कन्धाहितभुजलताः किञ्चिदाकुञ्चिताङ्ग्यः मन्दं मन्दं चरणकमलन्यासम् आसादयन्त्यः समेताः सौधे सौधे स्मितलव- सुधासेकम् तव रुचिं पश्यन्ति ब्रूहि, त्वं धन्यः कः असि।।३१।।

अनुवाद-हे मेघ ! ये सखियों के कन्धों पर रखे भुजलताओं वाली, कुछ सिमटे हुए (सिकोड़े हुए) अङ्गोंवाली, धीरे धीरे कमलवत् चरणों के अधिक्षेप को प्राप्त करती हुई (पग रखती हुई) एक साथ सभी (नायिकाएँ) मन्द मुसकानरूपी अमृताभिषेक के साथ तुम्हारी शोभा को देख रही हैं। बोलो, तुम धन्य कौन हो? ।।३१।।

अलसभुजलताभिर्लोचनान्दोलिनीभिः
स्मितमधुरसुधाभिर्धौतगण्डस्थलीभिः।
पुलकमुकुलमालालिङ्गिताङ्गीभिराभिः
नवजलद कृतार्थीभूयतेऽस्मिंस्त्वयैव।।३२।।

अन्वय- हे. नवजलद! लोचनान्दोलिनीभिः अलसभुजलताभिः स्मितमधुरसुधाभिः धौतगण्डस्थलीभिः पुलकमुकुलमालालिङ्गिताभिः आभिः अस्मिन् (क्षणे) त्वया एव कृतार्थी भूयते ।।३२।।

अनुवाद-हे नवीन मेघ! नेत्रान्दोलन करने वाली, अलसाई हुई भुजलता वाली, मुसकानरूपी मधुरामृत वाली, स्वच्छ (धोये हुए) कपोलमण्डलवाली, रोमाञ्च के कारण कलिका निर्मित मालाओं से आलिङ्गित इनसे (सुन्दरियों के अवलोकन से) इस समय तुम्हारे द्वारा ही कृतार्थ हुआ जा रहा है (तुम्हीं कृतार्थ हो रहे हो) ।।३२।।

अथ विरहः

शून्यं लीलागृहं तत्प्रणयविनयतो मन्मुखेनैव तादृग्
वाचो भङ्ग्िर्न तस्या गतिरपि मधुरा या पुरा मे पुरस्तात्।
सा दूती नैव तादृग्वचनविरचनं कर्तुमायाति कोऽयं
देहे प्राणानुबन्धो दलति न हृदयं हन्त कस्मादिदं नः।।३३।।

अन्वय- प्रणयविनयतः तत् लीलागृहं शून्यम्! मन्मुखे न एव तादृग् वाचो भङ्ग्िः। पुरा मे पुरस्तात् या तस्याः मधुरा गतिः, अपि न। सा दूती तादृग्वचनविरचनं कर्तुं न एव आयाति। देहे कः अयम् प्राणानुबन्धः? हन्त! नः इदं हृदयं कस्मात् न दलति ।।३३।।

विरह

अनुवाद-प्रणयविषयक विनय से वह लीलाभवन शून्य है। मेरे मुख में नहीं ही उस प्रकार की वाणी की भङ्गिमा (रह गयी) है। पहले मेरे सामने (आस पास) जो उसकी मधुर गति (पदसञ्चार क्रिया) (होती) थी (वह) भी (अब) नहीं है। वह दूती उस प्रकार की बात बनाने के लिए नहीं आती है। शरीर में कैसा यह प्राणानुबन्ध

है? हाय! हमारा यह हृदय क्यों नहीं फट जाता है ॥३३॥

किं चिन्ताकुलितासि सुन्दरि! मनो विश्रामहेतुर्न मे
मत्सङ्गेन सखि! व्रज स्वसरसीतीरं विचित्रद्रुमम्!
यत्र प्रातरलिप्रसक्तगलितव्याकोषपुष्पोत्करं
शेफालीविपिनं किमन्यदिति च श्रुत्वैव सा मूर्च्छिता॥३४॥

अन्वय-हे सुन्दरि! किं चिन्ताकुलितासि मे मनः विश्रामहेतुर्न। सखि! मत्सङ्गेन विचित्रद्रुमं स्वसरसीतीरं व्रज। यत्र प्रातः अलिप्रसक्तगलितव्याकोषपुष्पोत्करं शेफालीविपिनम्। च किम् अन्यत् इति श्रुत्वा एव सा मूर्च्छिता ॥३४॥

अनुवाद-हे सुन्दरी! क्यों चिन्ता से आकुल हो (कि) मेरे मन के विश्राम (आराम) का (कोई) कारण नहीं है। सखी! मेरे साथ विचित्र द्रुमों वाले अपने तालाब के तटपर चलो। जहाँ प्रातः काल भौरों से संसक्त होने के कारण विनष्ट आवरण वाले फूलों के समूह वाला शेफाली का वन (सुशोभित होता) है। और क्या अन्य बात! ऐसा सुनकर ही वह मूर्च्छित हो गयी॥३४॥

अथ ईर्ष्या

या दूतीवचनेन चारुरचनेनानन्ददेनेन्दुना
स्वच्छन्दं द्रवदिन्दुकान्तसलिलस्नातैस्तु मन्दानिलैः।
नो कान्ते प्रससाद सा रतिगृहं यान्त्याः सपत्न्याः पदे
श्रुत्वा नूपुरसिञ्जितं वितनुते किं किं न वा चिन्तनम् ॥३५॥

अन्वय-या तु आनन्ददेन इन्दुना चारुरचनेन दूतीवचनेन स्वच्छन्दं द्रवदिन्दुकान्त-सलिलस्नातैः मन्दानिलैः नो प्रससाद सा रतिगृहं यान्त्याः सपत्न्याः कान्ते पदे नूपुरसिञ्जितं श्रुत्वा किं किं चिन्तनं न वितनुते ॥३५॥

ईर्ष्या

अनुवाद-जो (नायिका) तो आनन्ददायक चन्द्रमा से सुन्दर संरचना वाली! दूती की बात से स्वच्छन्द द्रवित होते हुए चन्द्रमा के सुन्दर तुहिनजल से नहाये हुए मन्दानिल से (मन्दराचल पर्वत की हवा से) नहीं प्रसन्न हुई वह रतिगृह को जाती हुई (अपनी) सौत के सुन्दर चरण में नूपर के रणरणन को सुनकर क्या-क्या नहीं सोच रही है (किस किस चिन्तन को नहीं उभार रही है)॥३५॥

दृष्टा सा परिवारमण्डलगता मार्गे व्रजन्ती क्वचित्
भ्रूभङ्गोऽपि तया तदा रतिरसोद्‌गारायमानः कृतः।
हा हा हन्त न केलिकाननतटी संशीलिता सा मया
किं ब्रूमः करवाणि किं परमिति ब्रूते स ते वल्लभः।।३६।।

अन्वय- सा परिवारमण्डलगता मार्गे व्रजन्ती क्वचिद् दृष्टा। तदा तया भ्रूभङ्गः अपि रतिरसोद्‌गारायमानः कृतः। हन्त! केलिकाननतटी सा मया न संशीलिता। हा हा किं ब्रूमः, परं किं करवाणि, इति स ते वल्लभः ब्रूते ।।३६।।

अनुवाद-वह पारिवारिक लोगों के बीच रास्ते में चलती हुई कहीं (मेरे द्वारा) देखी गयी थी। उस समय उसके द्वारा भौंहों की भङ्गिमा भी रतिरसोद्‌गारमयी कर दी गयी थी (की गयी थी)। कष्ट है कि क्रीड़ोपवन के सरोवर के तट पर विहार करने वाली (घूमने वाली) वह मेरे द्वारा सम्पक् रूप से सेवित नहीं की गयी। हाय हाय क्या कहें? दूसरा क्या (दूसरा कौन कार्य) करूँ? ऐसा वह तुम्हारा प्रियतम बोल रहा है ।।३६।।

अथ प्रवासः

यासि त्वं व्रज जीवबन्धन न च व्यग्रः प्रवासाश्रयाद्
भूयास्तत्र च निर्भरं निजसमारम्भं समासादय।
आगत्यापि पुरीमिमां वनतटीमेताञ्च केलीगृहं
दृष्ट्वापि स्मरसङ्गरोत्सवकलां स्मृत्वापि किं ते फलम्।।३७।।

अन्वय- जीवबन्धन! त्वं यासि, व्रज। प्रवासाश्रयात् च व्यग्रः न भूयाः। च तत्र निर्भरं निजसमारम्भं समासादय। इमां पुरीम् आगत्य अपि एतां वनतटीं च केलीगृहं दृष्ट्वा अपि स्मरसङ्गरोत्सवकलां स्मृत्वा अपि ते किं फलम्? ।।३७।।

प्रवास (परदेशवास)

अनुवाद-हे प्राण के बन्धन (प्रेम या प्रियतम)! तुम जा रहे हो? जाओ। प्रवास के आश्रय से और व्यग्र न होना। और वहाँ निर्भर होकर अपने कार्य का आरम्भ करो। इस पुरी में आकर भी, इस वनतटी और केलिगृह को देखकर भी कामसंगरोत्सव की कला का स्मरण कर के भी तुम्हारा क्या प्रयोजन? (तुम्हारा कौन सा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है) अर्थात् कुछ नहीं ।।३७।।

स्थातुं न क्षमते पुरे पुरजनक्रीडाक्वणत्कङ्कण-
क्वाणैर्नापि वनोदरे परभृतव्यूहस्य कोलाहलैः।।
नो शून्ये पुलिनेऽपि पङ्कजवनीसौरभ्यभारालसै-
र्वातैः प्रातरुदारमारविशिखैः पान्थः परं कृन्तितः।।३८।।

अन्वय- पुरे पुरजनक्रीडाक्वणत्कङ्कणक्वाणैः न, वनोदरे परभृतव्यूहस्य कोलाहलैः अपि न, शून्ये पुलिने पङ्कजवनीसौरभ्यभारालसैः वातैः अपि नो स्थातुं क्षमते। प्रातः उदारमारविशिखैः पान्थः परं कृन्तितः ।।३८।।

अनुवाद- नगर में नगरवासियों की क्रीड़ा से बजते हुए कंगनों की ध्वनियों से नहीं, वन के अन्दर कोकिलों के कोलाहल से भी नहीं, शान्त (एकान्त) तट पर कमलवन की सुगन्ध के सम्भार से अलसाई हुई हवाओं (आलस्य प्रदान करने वाली हवाओं) से भी नहीं स्थिर (स्थित) रहा जा सक रहा है। प्रात:काल उदारकाम के वाणों से पथिक नितान्त विद्ध (छिन्नभिन्न) कर दिया गया है ।।३८।।

अथ शापहेतुकः

आस्तां दूरत एव पङ्कजदृशः सम्भाषणं प्रेक्षणं
दूतीप्रेषणमङ्गमङ्गलमहोऽकस्मादपि प्राप्यते।
केनाप्यत्र लयेन यावदमृतस्रोतश्छटेव प्रिया-
चित्ते तावदुपैति शोकजलधेः सम्प्लावनं चेतसः।।३९।।

अन्वय- अहो! पङ्कजदृशः दूरतः एव आस्ताम्। सम्भाषणं प्रेक्षणं दूतीप्रेषणं अङ्गमङ्गलम् अकस्मात् अपि प्राप्यते। केन अपि लयेन अत्र यावत् अमृतस्रोतश्छटा इव प्रिया चित्ते उपैति तावत् चेतसः शोकजलधेः सम्प्लावनम् (भवति) ।।३९।।

शापप्रयोजक

अनुवाद-अरे! कमलनयनी से दूर ही रहो। (उसका) सम्भाषण, प्रेक्षण, दूतीप्रेषण अंगमंगल अचानक भी प्राप्त हो जाता है। किसी भी मिलाप से यहाँ जब तक (जितना)अमृतस्रोत की छटा सरीखी प्रियतमा चित्त में उतरती है तब तक (उतना)चित्त से शोकरूपी समुद्र का सम्लावन होता (रहता) है ।।३९।।

हा हा हन्त प्रणयकुपिता स्वाङ्गणे सा चरन्ती
संस्था तस्या लपितमपि मे कर्णयोः प्राप्तमासीत्।
यावत्तस्यां दिशि नयनयोः स्यादथोन्मीलनं मे
तावद्बाला प्रबलविधिना स्वालयं प्रापितैव।।४०।।

अन्वय- हा हा हन्त प्रणयकुपिता सा स्वाङ्गणे चरन्ती संस्था। तस्याः लपितम् अपि मे कर्णयोः प्राप्तम् आसीत्। अथ यावत् तस्यां दिशि मे नयनयोः उन्मीलनं स्यात् तावत् प्रबलविधिना बाला स्वालयम् प्रापिता एव ।।४०।।

अनुवाद-हाय अत्यन्त खेद है कि प्रेम में रुष्ट वह (नायिका) अपने आँगन में विचरण करती हुई (चलती हुई) रह गयी। उसकी वाणी भी मेरे कानों में आयी थी (प्राप्त हुई थी)। इसके बाद जबतक कि उस दिशा में मेरे नेत्रों का उन्मीलन होता तब तक प्रबलविधाता के द्वारा वह (बाला) अपने घर पहुँचा ही दी गयी ।।४०।।

अथोभयसङ्कीर्णकाव्यम्

भास्वत्कन्यातटभुवि मया क्वापि कादम्बकुञ्जे
दृष्टा काचिन्मरकतमयी मूर्तिराह्लादनीया।
सा तु स्वैरं रहसि बहुशो ध्यानधारागतायां
निर्मज्जन्ती मयि वितनुते कामपि प्रेमधाराम्।।४१।।

अन्वय- भास्वत्कन्यातटभुवि कादम्बकुञ्जे क्वापि मया काचित् मरकतमयी आह्लादनीया मूर्तिः दृष्टा। सा तु बहुशः रहसि स्वैरं निर्मज्जन्ती ध्यानधारागतायां काम् अपि प्रेमधारां मयि वितनुते ।।४१।।

प्रवास एवं शाप से युक्त काव्य

अनुवाद-सूर्यपुत्री यमुना के तट के भू भाग पर कदम्ब के कुञ्ज में कहीं मेरे द्वारा कोई मरकतमणि से युक्त आह्लादित करने वाली मूर्ति देखी गयी। वह तो बार बार एकान्त में स्वच्छन्द नहाती हुई ध्यान की धारा में आयी हुई किसी प्रेमधारा को मुझमें सञ्चालित कर रही है (प्रेरित कर रही है)।।४१।।

आलि त्वं कुत आगतासि यमुनातीरात्किमालोकितं
चित्रं तत्र निरीक्षितं सखि मयाऽमाकन्दकुञ्जोदरे।
निःस्पन्दस्थितनूतनाम्बुदवलन्मुग्धारविन्दोदरा-
दुन्मीलन्ति मृणालकोमलतराः पीयूषधारा मुहुः।।४२।।

अन्वय-आलि! त्वं कुत आगता असि? यमुनातीरात्। किम् आलोकितम्? मया तत्र चित्रं निरीक्षितम्। अमाकन्दकुञ्जोदरे निःस्पन्दस्थितनूतनाम्बुद-वलन्मुग्धारविन्दोदरात् मृणालकोमलतराः पीयूषधाराः मुहुः उन्मी- लन्ति।।४२।।

अनुवाद-हे सखी! तुम कहाँ से आयी हो? यमुना तीर से। क्या देखा? मेरे द्वारा वहाँ विचित्र देखा गया। निकट के कन्द कुञ्ज के बीच निस्पन्द भाव से

विद्यमान नवीन कमल से घिरे हुए विकसित कमल के मध्यभाग से मृणाल की तरह कोमलतर अमृतधाराएँ बार बार उन्मीलित हो रही हैं।।४२।।

मयि चलति पुरस्तादङ्गणे पङ्कजाक्षी
निभृतनिहितपादा मन्दिरद्वारदेशे।
यदकृतमदभारव्यस्तहस्तावधूतं
कमलकुसुममेतत्प्राणसंहारबीजम् ।।४३।।

अन्वय- पुरस्तात् अङ्गणे मयि चलति मन्दिरद्वारदेशे निभृतनिहितपादा पङ्कजाक्षी मदभारव्यस्तहस्तावधूतं कमलकुसुमं यत् अकृत, एतत् प्राणसंहारबीजम् ।।४३।।

अनुवाद- सामने से आँगन में मेरे चलने पर घर के दरवाजे पर छुपाकर रखे चरणों वाली कमलनयनी (नायिका) ने मद के भार से व्यस्त हाथों से कमलपुष्प को जो हिला दिया, यह (कार्य विशेष) प्राणसंहार बीज है।।४३।।

किञ्चिद् विहस्य दरघूर्णिततारतार-
माक्षिप्य लोचनयुगं मयि निर्जगाम।
पर्यङ्कतः कलकलाकुलकिङ्किणीक-
मानन्दमन्थरतरं जघनं वहन्ती।।४४।।

अन्वय- कलकलाकुलकिङ्किणीकम् आनन्दमन्थरतरं जघनं वहन्ती किञ्चिद् विहस्य दरघूर्णिततारतारं नयनयुगलं मयि आक्षिप्य निर्जगाम ।।४४।।

अनुवाद- (नायिका) कलकल करने से आकुल करधनी वाले, आनन्द से शिथिल प्रान्त वाले जघन (भाग) को धारण करती हुई, कुछ हँसकर, थोड़ी सी घुमाई हुई पुतलियों वाले दोनों नेत्रों को मुझ पर साधकर (आक्षिप्त कर) पर्यङ्क (शय्या) से (उठकर दूर) चली गयी ।।४४।।

माकन्दस्तरुवर एष एव सोऽयं
रोलम्बप्रकर उदारनादशीलः।
दृक्पातोऽप्यहह कदाचिदत्र यूनोः
सा भङ्गिर्मदनतरङ्गिता न काचित् ।।४५।।

अन्वय- एष एव स माकन्दस्तरुवरः। अयं उदारनादशीलः रोलम्बप्रकरः। अहह! कदाचित् अत्र यूनोः दृक्पातः, सा मदनतरङ्गिता काचित् भङ्गिः न।।४५।।

अनुवाद-यही वह माकन्द नामक वृक्षश्रेष्ठ है। यह सुन्दर ध्वनि करने वाला भौंरों का समूह है। अरे! (अब) कभी यहाँ तरुण तरुणी का दृक्पात नहीं (होता), वह मदनतरंगित कोई भङ्गिमा नहीं (होती) ।।४५।।

इदमपि किल बन्धो शीलसिन्धो न जातं
यदिह जनमनः स्यादावयोरेव लग्नम्।
अथ कथमपि याते तादृशे जन्मसारे
वयसि रहसि भूयो लोचनान्दोलनं किम्?।।४६।।

अन्वय- शीलसिन्धो बन्धो! इह इदमपि किल न जातम्, यत् जनमनः आवयोः एव लग्नं स्यात्। अथ कथमपि तादृशे जन्मसारे वयसि जाते रहसि भूयः किम् लोचनान्दोलनम्?।।४६।।

अनुवाद-हे शील के सिन्धु स्वरूप बन्धु! यहाँ यह भी निश्चितरूप से नहीं हुआ कि लोगों का मन, हम दोनों में ही लग जाय (हमारे प्रेम को स्वीकार कर ले)। इसके बाद किसी प्रकार से उस तरह की जन्म की साररूप उम्र (युवावस्था) के चले जाने पर एकान्त में फिर क्या नेत्रों का आन्दोलन (हो सकेगा)?।।४६।।

स्मारं स्मारमनङ्गसङ्गरकलामानन्दयन्ती मनो
मामिन्दीवरलोचने स्मितसुधाधाराभिराप्लावय।
मध्यं व्योम समागते दिनकरे मूकायमाने जने
चेतो मे विदलीकरोति कदलीवाटीसमारोपिता।।४७।।

अन्वय-इन्दीवरलोचने! अनङ्गसङ्गरकलां स्मारं स्मारं मनः आनन्दयन्ती स्मितसुधाधाराभिःमाम् आप्लावय। दिनकरे मध्यं व्योम समागते जने मूकायमाने कदलीवाटीसमारोपिता मे चेतो विदलीकरोति ।।४७।।

अनुवाद-हे कमल की तरह नेत्रों वाली! कामसंग्राम की कला को बार बार याद कर मन को आनन्दित करती हुई मुसकानरूपी अमृत की धाराओं से मुझको आप्लावित करो। सूर्य के मध्य आकाश में आने पर लोगों के मूक की तरह आचरण करने लगने पर कदली की वाटिका में छुपायी गयी (बैठाई गयी या सँभाली गयी) (ललना) मेरे हृदय को विदलित कर रही है ।।४७।।

वापीवेलावलितवलभीमध्यसञ्चारशीलाः
कीलालोर्मिप्रबलकमलालोकनस्तोकलीलाः।
उद्यानेषु द्रुमचयजटाचुम्बिनीं चारुकुल्यां
दृष्ट्वा दृष्ट्वा नृपतिवनिताः स्वालिमालोकयन्ति।।४८।।

अन्वय- वापीवेलावलितवलभीमध्यसञ्चारशीला: कीलालोर्मिप्रबलकमलालोकनस्तोकलीला: नृपतिवनिता: उद्यानेषु द्रुमचयजटाचुम्बिनीं चारुकुल्यां दृष्ट्वा दृष्ट्वा स्वालिम् आलोकयन्ति ।।४८।।

अनुवाद-तालाब की लहर से घिरे हुए (घर) की ढलानदार छत पर संचरणशील, अमृतोपमलहरों से सुविकसित कमलों के अवलोकन हेतु थोड़ी लीला को धारण करने वाली राजाओं की अंगनाएँ, उद्यानों में वृक्षसमूह की जटाओं को चूमने वाली सुन्दर नहर को देखकर अपनी सखी को निहार रही हैं।।४८।।

उद्धूता मणिमयहारकान्तिधारा:
स्वेदाम्भ: कणगण उद्गतो ललाटे।
आघूर्णामुखरितकिङ्किणी च यस्यां
सेयं किं नववनवीथिका सरस्या:।।४९।।

अन्वय- मणिमयहारकान्तिधारा: उद्धूता:, ललाटे स्वेदाम्भ: कणगण: उद्गत:। च यस्याम् सा आघूर्णामुखरितकिङ्किणी। इयं किं सरस्या: नवव- नवीथिका? ।।४९।।

अनुवाद-मणिमय हार जैसी कान्ति को धारण करने वाली धाराएँ उपर की ओर फैला दी गयी हैं। ललाट पर पसीने के जलकणों का समूह उभर गया है और जिसमें वह चारों ओर शब्द करती हुई किङ्किणी है। यह क्या पोखरी की नववनवीथिका है? ।।४९।।

प्रविदितमिति लोके मूलमात्रावशेषो
भवति सुरतिकाले मालतीमञ्जुकुञ्ज:।
अतिनिविल [निबिड] मिदानीमस्ति वानीरवृन्दं
प्रियसखि करवै किं बालबोध: प्रियो मे।।५०।।

अन्वय- प्रियसखि! सुरतिकाले मालतीमञ्जुकुञ्ज: मूलमात्रावशेषो भवति इति लोके विदितम्। इदानीं वानीरवृन्दम् अतिनिबिडम्। बालबोध: मे प्रिय:। किं करवै।।५०।।

अनुवाद-हे प्रियसखी! सुरतकाल में मालती का मञ्जुकुञ्ज मूलमात्र ही बचा रहता है। यह संसार में विदित है। इस समय वेंत का समूह अत्यन्त विरल हो गया है। बालबोध (बच्चों जैसी समझ) मुझे प्रिय है। क्या करूँ? ।।५०।।

दूति त्वद्वचनं प्रपञ्चरचनं श्रुत्वा न किं मे मनो
जातं मन्मथवाणसङ्कुलमिदं चित्ते परं कौतुकम्।
यस्यार्थं त्वमुदारयत्नमनिशं कृत्वा समुत्कण्ठसे
नेतुं मां सखि मौलिमिश्रितयदालक्तद्रवो वीक्षितः।।५१।।

अन्वय- दूति! प्रपञ्चरचनं त्वद्वचनं श्रुत्वा किमिदं मे मनो मन्मथवाणसङ्कुलं न जातम्। चित्ते परं कौतुकम्। यस्यार्थम् त्वम् अनिशम् उदारयत्नम् कृत्वा समुत्कण्ठसे, मां नेतुं स हि मौलिमिश्रितयदालक्तद्रवो वीक्षितः।।५१।।

अनुवाद-हे दूती। प्रपञ्चों की रचना करने वाला तुम्हारा वचन सुनकर क्या यह मेरा मन काम के वाण से भर नहीं गया है (विद्ध नहीं हो गया है)। चित्त में अत्यन्त कौतूहल है। जिसके लिए तुम निरन्तर महान् यत्न करके (पर्याप्त प्रयास करके) समुत्कण्ठित हो, मुझे लेने हेतु (मुझे ले जाने हेतु) वही शिरोभूषण में लगे हुए पैरों के महावरद्रव वाला (पुरुष) दिखाई दिया है।। (दिखा है)।। ५१।।

नवनववचनैस्ते बाह्यतो मुग्धयोगैः
प्रियतम मम भूयादेव गाढानुरागः।
कथयति तव वृत्तं पत्रलेखाविशेषा-
ङ्कितहृदयसमेतं केवलं हारचिह्नम् ।।५२।।

अन्वय- प्रियतम! ते मुग्धयोगैः नवनववचनैः मम बाह्यतः गाढानुरागः भूयात् एव। पत्रलेखाविशेषाङ्कितहृदयसमेतम् केवलं हारचिह्नम् तव वृत्तं कथयति ।।५२।।

अनुवाद-हे प्रियतम! तुम्हारे मुग्ध करने के कौशल को धारण करने वाले नये नये वचनों से मेरा बाहर से तो गाढानुराग हो ही गया है। पत्रलेखा में विशेषरूप से अंकित, हृदय पर विद्यमान हारचिह्न तुम्हारे वृत्तान्त (चरित्र) को कह रहा है ।।५२।।

पदं प्रियजनेरितं सरसयावपङ्काविलं
विलम्बितसुधाकरस्थगितशोणपङ्केरुहम्!
अतीव रुचिरं प्रिय स्फुरति भालदेशे तव
प्रभातसमये पदं परमरम्यरूपो भवान्।।५३।।

अन्वय-प्रिय! प्रियजनेरितं विलम्बितसुधाकरस्थगितशोणपङ्केरुहम् सरसयावपङ्काविलम् अतीव रुचिरं परं तव पदम् प्रभातसमये भालदेशे स्फुरति। भवान् परमरम्यरूपः।।५३।।

अनुवाद - हे प्रिय! प्रियजन के द्वारा दबाया जाता हुआ, चन्द्रमा को दूर कर देने वाला (निष्प्रभ कर देने वाला), रक्त कमल को तिरस्कृत कर देने वाला, रसमय (आर्द्र) महावर से पङ्किल अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ तुम्हारा पाँव प्रभात समय में (मेरे) भालदेश पर चमक रहा है। आप अत्यन्त सुन्दर रूप वाले हैं।।५३।।

अथ भावकाव्यम्

आयातस्तव सुन्दरि प्रिय इति श्रुत्वा सखीभाषितं
पादन्यासपराभवात्पथि पदस्पृष्टे पथि प्रेयसी।
स्तम्भः कोऽपि तथागतो जघनयोः कान्तोऽगमन्मन्दिरं
सा पथ्येव दृगन्तवाष्पकणिकाक्लिन्नानना वर्तते।।५४।।

अन्वय- **सुन्दरि! तव प्रियः आयातः इति पथि सखीभाषितं श्रुत्वा प्रेयसी पदस्पृष्टे पथि पादन्यासपरा अभवत्। तथा जघनयोः कोऽपि स्तम्भः आगतः, कान्तः मन्दिरम् अगमत्। सा पथि दृगन्तपाष्पकणिकाक्लिन्नानना एव वर्तते ।।५४।।**

भावकाव्य

अनुवाद-हे सुन्दरी! तुम्हारा प्रियतम आ गया है, इस प्रकार से मार्ग में सखी की वाणी को सुनकर प्रेयसी (प्रियतम के) चरण से स्पृष्ट मार्ग पर (अपने) चरणों को रखने में संलग्न हो गयी। जघनों में कुछ स्पन्दन आया, प्रियतम घर चला गया। वह मार्ग में नेत्रान्तराल से बहने वाली अश्रुकणिका से भीगे मुखवाली ही रह गयी है।।५४।।

आनन्दाश्रुपयोभिरेव चरणौ प्रक्षालितौ प्रेयसः
सोत्कम्पाञ्चलमञ्चति व्यजनतां तस्याः स्मितश्रीरपि।
वार्तां पृच्छति कोमलां कुचतटीसीमान्तरव्यापको
रोमाञ्चोक्षितहार एव कथयत्यागामिकौतूहलम्।।५५।।

अन्वय- **तस्याः आनन्दाश्रुपयोभिः प्रेयसश्चरणौ एव प्रक्षालितौ। सोत्कम्पाञ्चलम् व्यजनतां अञ्चति, स्मितश्रीः अपि कोमलां वार्तां पृच्छति, स्तनकुचतटी-सीमान्तरव्यापकः रोमाञ्चोक्षितः हारः आगामिकौतूहलम् एव कथयति।।५५।।**

अनुवाद-उस (नायिका) के आनन्दाश्रुजल से प्रियतम के दोनों चरण ही धोये गये। कम्पनयुक्त (काँपता हुआ) आँचल पंखे के रूप को धारण कर रहा है, मुसकान की शोभा भी कोमल बात को पूँछ रही है। स्तनतट के सीमान्त भाग तक व्यापक रोमाञ्च से हिलता डुलता हार आगामी कौतूहल को ही कह रहा है।।५५।।

इयं मन्दं मन्दं सृजति घनमाला जलकणान्
अयं मन्दं मन्दं विकिरति कदम्बः परिमलम्।
अयं मन्दं मन्दं लसति मम चेतो मनसिजः
पदं मन्द मन्दं किमिति पथि मुग्धे कलयसि।।५६।।

अन्वय- इयं घनमाला जलकणान् मन्दं मन्दं सृजति। अयं कदम्बः परिमलम् मन्दं मन्दं विकिरति। अयं मम चेतो मनसिजः मन्दं मन्दं लसति। मुग्धे! पथि पदं मन्दं मन्दं कलयसि किम्! इति ।।५६।।

अनुवाद-यह मेघपङ्क्ति जल के कणों को धीरे-धीरे बरसा रही है (उत्पन्न कर रही है)। यह कदम्ब सुगन्ध को धीरे-धीरे बिखेर रहा है। यह मेरे हृदय का काम धीरे-धीरे प्रकाशित हो रहा है। हे मुग्धे! (जाने हेतु) मार्ग में (तुम अपने) पाँव को धीरे-धीरे रख रही हो क्या? ऐसा(इसीलिये हो रहा है) ।।५६।।

सौधे सौधे नवजलधरालोकनायोद्गताभिः
श्रीखण्डार्द्रीकृतभुजलतामण्डलेनानुबद्धः।
कुञ्जे कुञ्जे नवजलकणाकोमलाभिर्लताभि-
र्दत्ताश्लेषः सुमुखि सुखिनं [कं] न कुर्यात्समीरः।।५७।।

अन्वय- सुमुखि! सौधे सौधे नवजलधरालोकनाय उद्गताभिः श्रीखण्डार्द्रीकृत-भुजलतामण्डलेनानुबद्धः कुञ्जे कुञ्जे नवजलकणाकोमलाभिः लताभिः दत्ताश्लेषः समीरः कं सुखिनं न कुर्यात्? ।।५७।।

अनुवाद - हे सुन्दरमुखवाली! भवन भवन में बादल को देखने के लिए उद्गत (उठी हुई) (नायिकाओं के) श्रीखण्ड से गीले भुजलता मण्डल से अनुबद्ध, कुञ्ज कुञ्ज में नवजलकण से कोमल (नवजलकण के वर्षण से हर प्रकार से नाजुक) लताओं के द्वारा आलिंगित पवन किसे सुखी नहीं कर सकता (अर्थात् वह अवश्य ही सब को सुखी करे, ऐसी कामना है) ।।५७।।

धन्या कापि कदम्बकाननतटी कोऽप्येष धन्योऽनिलो
धन्या कापि परागपिञ्जरसखी [पञ्जरसखी] पाणिस्थिता मालिका।
धन्यः कोऽपि समुद्यमो नवघनस्यैवं यदा सङ्गतो
मन्दं मन्दमनङ्गसङ्गरकथारम्भं[1] [भः] कुरङ्गीदृशः ।।५८।।

अन्वय- यदा कुरङ्गीदृशः अनङ्गसङ्गरकथारम्भः मन्दं मन्दं सङ्गतः, कापि कदम्बकाननतटी धन्या। एषः कोऽपि अनिलः अन्यः। परागपञ्जरसखी कापि पाणिस्थिता मालिका धन्या। एवं नवघनस्य कोऽपि समुद्यमः धन्यः।।५८।।

अनुवाद-जब मृगनयनी के कामसंगरोत्सव की कथा का धीरे धीरे आरम्भ हो जाता है (तव) कोई कदम्ब के कानन की तटी धन्य हो जाती है। यह कोई भी अनिल धन्य हो जाता है। पराग के कारण पीले रंग से मित्रता करने वाली कोई भी हाथ में ली हुई माला धन्य हो जाती है। इसी प्रकार से अभिनव बादल का कोई भी समुद्यम (गर्जन या वर्षण) धन्य हो जाता है। ॥५८॥

सरभसमरविन्दं सेवते भृङ्गवृन्दं
नदति सरसि रम्यं राजहंसी न वंशी।
यदुपतिरतिदूरेऽरण्यपूरे समीरः
प्रसरति सखि! मन्दं हन्त किं वा करोमि ॥५९॥

अन्वय- सखि! भृङ्गवृन्दं सरभसम् रम्यम् अरविन्दम् सेवते। सरसि राजहंसी नदति वंशी न। यदुपतिः अतिदूरे। अरण्यपूरे समीरः मन्दं मन्दं प्रसरति। हन्त! किं वा करोमि॥५९॥

अनुवाद-हे सखी! भौरों का समूह तीव्रता के साथ रम्य कमल का सेवन कर रहा है। तालाब मे राजहंसी शब्द कर रही है वंशी नहीं। यदुपति अत्यन्त दूर है। अरण्य के बीच हवा मन्द मन्द बह रही है (फैल रही है)। हाय! मैं फिर क्या कर रही हूँ (क्या करू?) ॥५९॥

धुन्वन्व्यालम्बिनीलाम्बुजपटलनटत्केकिमाला शिखण्डं
मन्दं श्रीखण्डपङ्कक्षुरितनववधूगण्डसञ्चारशीलः।
कावेरीतीरचञ्चत्कुवलयकलिकामोदसंसक्तवीची-
संसर्गामोदमेवं कलयति मलयान्निर्गतो गन्धवाहः॥६०॥

अन्वय- मलयान्निर्गतः गन्धवाहः व्यालम्बिनीलाम्बुजपटलनटत्केकिमालाशिखण्डम् धुन्वन् श्रीखण्डपङ्कक्षुरितनववधूगण्डसञ्चारशीलः कावेरीतीरचञ्चत्कुवलयकलिकामोदसंसक्तवीचीसंसर्गामोदम् एव मन्दं कलयति ॥६०॥

अनुवाद-मलयगिरि से निकला हुआ पवन, संकुचित होते हुए नीलकमलसमूह के बीच खेलते हुए मोरों के शिखण्ड (पूँछ) को हिलाता हुआ, श्रीखण्ड (चन्दन) के लेप से युक्त नववधू के कपोलस्थल पर सञ्चरणशील, कावेरीनदी के तट पर लहराते हुए कमलों की कलिकाओं के मोद से संसक्त लहरों के संसर्ग से उद्भूत सुगन्धि को धीरे धीरे धारण कर रहा है ॥६०॥

अथ पूर्णरसकाव्यम्

बाला स्वाङ्गणकर्मचञ्चलतरा ग्राम्यो युवा तद्वपुः
प्रस्वेदाम्बुविलोपनं वितनुते स्वीयाङ्गवस्त्रानिलैः।
सा किञ्चिन्न च भाषते स कुरुते चाटूक्तिनानाविधा-
न्यस्याः प्रीतिपरायणो भगवते कामाय तस्मै नमः।।६१।।

अन्वय- बाला स्वाङ्गणकर्मचञ्चलतरा, तद्वपुः स्वीयाङ्गवस्त्रानिलैः प्रस्वेदाम्बु-विलोपनं वितनुते, च सा किञ्चित् न भाषते। सः ग्राम्यः युवा प्रीति-परायणः, अस्याः चाटूक्तिनानाविधानि कुरुते। तस्मै भगवते कामाय नमः।।६१।।

पूर्णरसकाव्य

अनुवाद-बाला अपने आँगन के कार्यों में नितान्त चञ्चल है। उसका शरीर अपने अङ्गवस्त्रों की हवा से पसीने की बूँदों की (प्रस्वेद जल की) समाप्ति को प्रेरित कर रहा है। (पसीने के जल को समाप्त कर रहा है।) और वह कुछ नहीं बोलती है। वह ग्रामीण युवा प्रीतिपरायण है। इस (बाला) की चाटुकारिता के अनेक विधान करता है। उस भगवान् कामदेव को नमस्कार है।।६१।।

किञ्चिदञ्चदरविन्दलोचने
सिञ्चय स्मितसुधारसेन माम्।
अञ्चलं पवनचञ्चलं चिरं
किं करेण कुरुषे मुहुः स्थिरम् ।।६२।।

अन्वय- अञ्चदरविन्दलोचने! स्मितसुधारसेन मां किञ्चित् सिञ्चय। पवनचञ्चलम् अञ्चलम् किं मुहुः करेण चिरम् स्थिरम् कुरुषे ।।६२।।

अनुवाद-हे विकसित होते हुए कमल की तरह नेत्रवाली (नायिके)! मुसकानरूपी अमृतरस से मुझे कुछ सींच दो। हवा से चंचल आँचल को क्यों बार बार हाथ के द्वारा बहुत देर तक स्थिर कर रही हो? ।।६२।।

वद रुषा परुषाणि कलावति
प्रतिपदं वचनं मम खाण्डय।
मम शिरोमिलितं चरणं बहिः
कुरु तथापि गतिस्त्वमिहासि नः।।६३।।

अन्वय- कलावति! रुषा परुषाणि वद। मम वचनं प्रतिपदं खण्डय। मम शिरोमिलितं चरणं बहिः कुरु। तथापि इह त्वं नः गतिः असि ।।६३।।

अनुवाद-हे कलावती! क्रोध से परुष (कठोर) बोलो। मेरी बात को प्रतिपद खण्डित करो। मेरे सिर से मिले हुए चरण को अलग करो (दूर करो)। फिर भी यहाँ तुम हमारी गति हो ।।६३।।

दासी याति तडागमम्बुकलशं नीत्वा स पश्चादभूत्
सा प्राप्ता गृहमन्तिके भ्रमति तद्गेहस्य सोऽयं मुहुः।
सा याताङ्गणमाकुलः स कुरुते तस्या वृते रोपणं
भग्नाया मदमेदुरो भगवते कामाय तस्मै नमः।।६४।।

अन्वय- दासी अम्बुकलशं नीत्वा तडागम् याति। स मदमेदुरः पश्चात् अभूत्। सा गृहं प्राप्ता। सः अयम् मुहुः तद्गेहस्य अन्तिके भ्रमति। सा अङ्गणम् याता। सः तस्याः भग्नायाः वृते रोपणं कुरुते। तस्मै भगवते कामाय नमः ।।६४।।

अनुवाद-सेविका जलकुम्भ को लेकर तालाब को जा रही है। वह मद से भरा हुआ नायक (उसके) पीछे हो लिया (है)। वह घर पहुँच गयी (है)। वह यह (नायक) बार बार उसके घर के समीप घूम रहा है। वह आँगन में चली गयी (है)। वह उस चोटिल के निवदेन पर स्वास्थ्यप्रद उपचार कर रहा है। उस भगवान् कामदेव को नमस्कार है ।।६४।।

अथ रसाभासः

दूतीभिर्विनिवेदितं बहुदलन्मल्लीरजोमांसलै-
र्वातैः कोकिलकाकिलीभिरभितो जातः समुद्दीपनम्।
दासोऽहं तव पादयोः प्रणमितस्त्वेयं [षा] स्वयं बेधिता
कान्तेनापि जहाति हा नहि पुनर्मानं तदा शङ्खिनी।।६५।।

अन्वय- दूतीभिः बहु विनिवेदितम्। दलन्मल्लीरजोमांसलैः कोकिलकाकिलीभिः अभितः समुद्दीपनम् जातम्। अहं दासः तु तव पादयोः प्रणमितः। हा! कान्तेन स्वयं बोधिता एषा शङ्खिनी मानम् तदा अपि पुनः न जहाति ।।६५।।

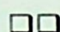
रसाभास

अनुवाद-दूतियों के द्वारा बहुत बार कहा गया। विकसित होती हुई (अथवा टूटती फूटती हुई) चमेली (पुष्पविशेष) के पुष्ट परागों से, कोकिलों की काकली से सब ओर से समुद्दीपन हो गया है। मैं सेवक तो तुम्हारे चरणों में प्रणमित हूँ। (पड़ा हुआ

हूँ)। हाय! प्रियतम के द्वारा स्वयं जगाई गयी यह शंखिनी (नायिका) मान को (प्रणयकोप को) उस समय भी फिर नहीं छोड़ रही है।।६५।।

इति श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे शृङ्गाररसप्रकणम्

श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचितसकलरससारसङ्ग्रह में शृङ्गाररंसप्रकरण समाप्त



हास्यादिप्रकरणम्

अथ हास्यरसः

निष्क्रान्तो हयमन्दिरादनुगतो बालैः सकोलाहलैः
सम्प्राप्तोऽथ नृपाङ्गणं विनटयन् पुच्छं दृशौ विक्षिपन्।
उत्पत्याथ निपातयन्तमभितो दासीजनं वानरं
पश्यन्त्यो विहसन्ति सन्ततमहो राजस्त्रियः सर्वतः।।१।।

अन्वय-अहो! हयमन्दिरात् निष्क्रान्तः सकोलाहलैः बालैः अनुगतः नृपाङ्गणं सम्प्राप्तः पुच्छं विनटयन् दृशौ विक्षिपन् अभितः उत्पत्य दासीजनं निपातयन्तम् वानरं पश्यन्त्यः राजस्त्रियः सर्वत्र सन्ततं विहसन्ति।।१।।

हास्यरस

अनुवाद-अरे घोड़ों के घर (धुड़साल) से बाहर निकले हुए, कोलाहल के साथ बालकों के द्वारा पीछा किये जाते हुए, पूँछ को नचाते हुए दोनों आँखों को चलाते हुए दोनों ओर से उछलकर दासी जनों (सेविकाओं) को गिराते हुए वानर को देखकर राजाओं की स्त्रियाँ सर्वत्र निरन्तर हँस रही हैं।।१।।

सद्यो वृष्ट्याङ्गणभुवि महापिच्छिलायां निशान्ते
कीशस्यास्य प्रच [प्रचय] वपुषो वारणाय प्रवृत्तः।
सौधे सौधे युवतिनिवहैर्वीक्ष्यमाणः सहासम्
व्यावृत्ताङ्घ्रिस्फुटकटितटं सौविदल्लः पपात।।२।।

अन्वय- निशान्ते सद्यः वृष्ट्या महापिच्छिलायाम् अङ्गणभुवि अस्य प्रचयवपुषः कीशस्य वारणाय प्रवृत्तः सौधे सौधे युवतिनिवहैः सहासम् वीक्ष्यमाणः सौविदल्लः व्यावृत्ताङ्घ्रिस्फुटकटितटम् पपात।।२।।

अनुवाद-प्रातः काल सद्यः वृष्टि से अत्यन्त कीचड़ युक्त आँगन की भूमि में इस हिलते शरीर वाले वानर को रोकने के लिए प्रवृत्त, भवन भवन में युवति समूह द्वारा, प्रसन्नता के साथ देखा जाता हुआ अन्तः पुर में रहने वाला व्यक्ति पाँव लड़खड़ाने से कमर के बल गिर गया।।२।।

सुस्नातः कुशमुष्टिमण्डितकरो धौतोत्तरीयं वहन्
शूद्रस्पर्शभयातिसंवृततनुः कश्चिद् द्विजो वीथिकाम्।
सम्प्रातः स च मुक्तवानरसमालोकाकुलैर्बालकै-
र्व्यग्रो वारविलासिनीपरिषदि व्यस्तोपवीतोऽपतत्।।३।।

अन्वय-सुस्नातः कुशमुष्टिमण्डितकरः धौतोत्तरीयं वहन् शूद्रस्पर्शभयातिसंवृततनुः द्विजः वीथिकां सम्प्रातः। स मुक्तवानरसमालोकाकुलैर्बालकैः व्यग्रःच व्यस्तोपवीतः वारविलासिनीपरिषदि अपतत्।। ३।।

अनुवाद-सम्यक् रूप से नहाया हुआ, कुश से युक्त मुट्ठी से सुशोभित हाथ वाला, धोती एवं उत्तरीय को धारण करता हुआ, शूद्र के स्पर्श के भय से अत्यन्त ढके हुए शरीर वाला ब्राह्मण गली में आया (पहुँचा)। वह मुक्त वानर को देखने में आकुल बालकों से आतङ्कित (होता हुआ) शिथिलयज्ञोपवीत वाला वारविलासिनियां (नायिकाओं) के समवाय में गिर पड़ा।।३।।

अथ करुणरसः

किं यातोऽसि[स्ति]सुवर्णरङ्कुतरलः कुत्रासि हे देवर
क्वासि त्वं वनदेवि रक्षसि न मां प्रप्तिमां [प्राप्तामिमां] दुर्दशाम्।
इत्यालापपरायणां सकरुणां सीतां हरन् रावणः
सद्यो वाष्पजलाकुलाक्षियुगलं चक्रे वनस्त्रीजनम्।।४।।

अन्वय-किं सुवर्णरङ्कुतरलः यातः अस्ति? हे देवर! कुत्र असि? वनदेवि! त्वं क्व असि? इमाम् दुर्दशाम् प्राप्तां माम् न रक्षसि। इति आलापपरायणाम् सकरुणाम् सीताम् हरन् रावणः सद्यः वनस्त्रीजनम् वाष्पजलाकुलाक्षियुगलं चक्रे।।४।।

करुणरस

अनुवाद-क्या सोने का चञ्चल मृग (मृगचञ्चल) चला गया है। दे देवर! कहाँ हो? हे वनदेवी! तुम कहाँ हो? इस दुर्दशा को प्राप्त मेरी रक्षा नही कर रही हो। इस प्रकार आलापपरायण सीता को हरता हुआ रावण शीघ्र वन की स्त्रियों को अश्रुजल से पूरित नेत्रों वाला कर दिया।।४।।

क्वेदं पल्लवकोमलं पदयुगं क्वेदं कठोरं वनम्
धिक्त्वां देव विरुद्धचिन्तनपर प्रायो वदन्त्यो मिथः।
इत्थं देवरभर्तृमात्रसहितां सीतां मुनीनां स्त्रियः
पश्यन्तो[पश्यन्त्यो]विसृजन्ति वाष्पसलिलस्त्रोतो मुहुः कानने।।५।।

अन्वय- क्व इदम् पल्लवकोमलम् पदयुगम्? क्व इदम् कठोरम् वनम्? विरुद्धचिन्तनपर देव? त्वां धिक्। इत्थं मुनीनां स्त्रियः मिथः वदन्त्यः देवरभर्तृमात्रसहितां सीतां पश्यन्त्यः कानने मुहुः वाष्पसलिलस्रोतः विसृजन्ति।। ५।।

अनुवाद-कहाँ यह किसलय की तरह कोमल चरण युगल है। कहाँ यह कठोर वन है। विरुद्धचिन्तन में संलग्न देव (भाग्य)! तुम्हें धिक्कार है। इस प्रकार मुनियों की स्त्रियाँ एकान्त में बोलती हुई देवर एवं पति मात्र के साथ सीता को देखती हुई कानन में बार बार वाष्प (अश्रु) जल के स्रोत को बहा रही हैं (गिरा रही हैं, निकाल रही हैं)।।५।।

अथ रौद्ररसः

रे रे क्षुत्क्षामभूतप्रकर कवलयोत्तप्तमांसानि सद्यो
भूयो भूचक्रमेतन्नवरुधिरनदीप्लावितं पश्य जातम्।
भग्नो यस्यैव चापो रघुकुलशिशुना पश्य तस्यैव कण्ठे
जाता माला कराला द्युमणिकुलशिरोमण्डलैरापतद्भिः।।६।।

अन्वय-रे रे क्षुत्क्षामभूतप्रकर! कवलयोत्तप्तमांसानि पश्य। एतत् भूचक्रम् नवरुधिरनदीप्लावितम् जातम्। पश्य, यस्य एव चापः रघुकुलशिशुना भग्नः तस्य एव कण्ठे आपतद्भिः द्युमणिकुलशिरोमण्डलैः माला कराला जाता।।६।।

रौद्ररस

अनुवाद-रे रे भूख से दुर्बल हुए (राक्षस) भूतगण! जल से घिरे हुए (जलरूपीवलय वाले) उत्तप्त मांसों को (मांसखण्डों को) देखो। यह भूचक्र नवरक्त की नदी में प्लावित हो गया है। देखो, जिसका ही धनुष रघुकुलशिशु श्रीरामचन्द्र के द्वारा तोड़ा गया, उसी के कण्ठ में चारों ओर से पड़ते हुए सूर्यवंश के राजाओं के शिरोमण्डल से (शिरोमण्डल के तेज से) माला कराल हो गयी है (काली हो गयी है)।।६।।

अथ वीररसः, अत्रास्मत्कृतशुम्भपराजयपद्यानि

कोदण्डासक्तदृष्टिः करकलितमहाचन्द्रहासः सहासः
प्रोदञ्चद्बाहुमूलस्फुरदतिपुलकव्यक्तवीरप्रभावः।
युद्धोद्योगादुदस्त्रप्रकरकरशताच्छन्नदिग्भित्तिमुच्चै-
र्देवीमेवाथ पश्यन्ननिशमुपगतो दानवानामधीशः।।७।।

अन्वय-अथ कोदण्डासक्तदृष्टिः करकलितमहाचन्द्रहासः प्रोदञ्चद्बाहु-मूलस्फुरदतिपुलकव्यक्तवीरप्रभावः दानवानाम् अधीशः

युद्धोद्योगादुदस्त्रप्रकरकरशताच्छन्नदिग्भित्तिम् देवीम् उच्चैः पश्यन् अनिशम् एव उपगतः।।७।।

वीररस, मेरे द्वारा रचित शुम्भ पराजय के पद्य

अनुवाद-इसके बाद वाण पर आसक्त दृष्टि वाला, हाथ से पकड़े हुए महान् चन्द्रहास (तलवार) वाला, ऊपर की ओर उठते हुए भुजाओं के मूलभाग से स्फुटित होते हुए अत्यन्त रोमाञ्च से अभिव्यक्त वीरता के प्रभाव वाला दानवों का स्वामी (शुम्भ), हँसी के साथ युद्ध के उद्योग के लिए उठते हुए अस्त्र समूह की सैकड़ों किरणों से आच्छत्र दिशारूपी भित्तिवाली देवी को ऊपर से देखता हुआ शीघ्र ही (देवी के पास) पहुँच गया।।७।।

उद्भ्राम्यच्छूलमूलप्रचलभुजलताभिः पिबन्तीव काष्ठा-
श्चाकाशं शङ्खनादभ्रमितमिव शरैः स्तम्भयन्ती समन्तात्।
संसारं शुम्भकोपानलविकलमिव स्मेरधारासुधाभिः
सिञ्चन्तीयं जयन्ती दनुजपतिमभिप्रौढरूढं विधत्ते।।८।।

अन्वय- उद्भ्राम्यच्छूलमूलप्रचलभुजलताभिः काष्ठाः पिबन्ती इव च शङ्खनादभ्रमितम् आकाशम् शरैःसमन्तात् स्तम्भयन्ती इव शुम्भकोपानलविकलम् संसारम् स्मेरधारासुधाभिः सिञ्चन्ती इव इयं दनुजपतिं जयन्ती अभिप्रौढरूढम् विधत्ते।।८।।

अनुवाद-ऊपर की ओर घूमते हुए शूल के मूल भाग से चञ्चल भुजलताओं के द्वारा दिशाओं को मानो पीती हुई और शंखनाद से भ्रमित आकाश को वाणों से चारों तरफ से मानो स्तम्भित करती हुई, शुम्भ के क्रोधानल से विकल संसार को स्मितिधारारूपी सुधा से मानो सींचती हुई यह (देवी) दनुजपति (शुम्भ) को जीतती हुई सर्वथा प्रौढ (एवं) विकसित स्वरूप को धारण कर रही है।।८।।

अथ शुम्भस्य वीरवाक्यम्

अद्यैतद्बाहुदण्डद्वयमभवदहो वीरकृत्यप्रतिष्ठं
कोदण्डस्यापि दीक्षा भजति सफलतां दर्शय स्वास्त्रविद्याम्।
यद्येवं वैरभावाद् मनसि मम पुरस्त्वं स्थिता देवतानां
पृष्ठं हित्वा न वक्षः क्षणमपि समरे क्षुण्णमासीन्मदस्त्रैः।।९।।

अन्वय-अहो! अद्य एतत् बाहुदण्डद्वयम् वीरकृत्यप्रतिष्ठम् अभवत्। कोदण्डस्य अपि दीक्षा सफलताम् भजति। त्वं स्वास्त्रविद्यां दर्शय। यदि देवतानां वैरभावात् एवम् मम पुरः स्थिता, समरे पृष्ठं हित्वा वक्षः क्षणमपि मदस्त्रैः

क्षुण्णम् नासीत्?।।९।।

शुम्भ का वीरवाक्य

अनुवाद-अरे! आज यह भुजदण्डद्वय वीरकृत्य से प्रतिष्ठित हो गया। धनुष की भी दीक्षा सफलता को प्राप्त कर रही है। तुम (चण्डी) अपनी अस्त्रविद्या को दिखाओ। यदि देवताओं के (प्रति मेरे) वैर भाव से इस प्रकार मेरे सामने स्थित हो, (तो याद करो) युद्ध में पीठ को छोड़कर (तुम्हारा) वक्षस्थल एक क्षण में भी मेरे अस्त्रों से विदीर्ण नहीं हो गया था??॥९॥

जानामि त्वामजेयामखिलसुरनरोद्दामदैत्यैः समस्तै-
स्थैर्योत्पत्यन्तकर्त्रीमहमहह तदप्यस्मि ते युद्धलुब्धः।
उत्पाद्यं नैव वैरं महति यदि कृतं तन्मया ते न बाणै-
रद्याहं ते किरीटं खचितमचिरतः पातयामि क्षमायाम्।।१०।।

अन्वय- समस्तस्थैर्योत्पत्यन्तकर्त्रीम् त्वाम् अखिलसुरनरोद्दामदैत्यैः अजेयाम् जानामि। तदपि अहम् अहह! ते युद्धलुब्धः। महति वैरम् नैव उत्पाद्यम्। यदि मया तत् कृतम्, तेन अहम् अद्य ते खचितम् किरीटम् बाणैः अचिरतः क्षमायाम् पातयामि।।१०।।

अनुवाद-सभी लोगों के पालन उत्पत्ति एवं संहार को करने वाली तुम को सभी देवताओं मनुष्यों एवं उद्दामदैत्यों से अजेय जानता हूं, फिर भी मैं हाय! तुमसे युद्ध करने के लिए आतुर हूँ। महान् (लोगों) के प्रति शत्रुता नहीं ही उत्पन्न करनी चाहिए, यदि मेरे द्वारा यह कर ही दी गयी है, तो मैं आज तुम्हारे खचित मुकुट को बाणों से शीघ्र पृथ्वी पर गिरा रहा हूँ।।१०।।

अथात्र निशुम्भशोकशौर्यज्वलमानस्य शुम्भस्य वीरकरुणमयी काचिदुक्तिः

अद्याहं कस्य हेतोरविरलनिपतत्पत्रिभिः खण्डखण्डं
कुर्यां ब्रह्माण्डभाण्डं किमथ जगदिदं दारये सिंहनादैः।
कस्यार्थं वासिधारा कलयतु शकलीभूतगात्रामिमां वा
सम्बाधं मातृसैन्ये त्वमसि यदि रणक्षोणिपृष्ठे प्रसुप्तः।।११।।

अन्वय- अद्य अहम् कस्य हेतोः ब्रह्माण्डभाण्डम् अविरलनिपतत्पत्रिभिः खण्डं खण्डम् कुर्याम्। अथ सिंहनादैः इदं जगत् कथं दारये। वा कस्यार्थम् असिधारा शकलीभूतगात्राम् इमां कलयतु। यदि रणक्षौणिपृष्ठे मातृसैन्ये त्वम् प्रसुप्तः असि।।११।।

निशुम्भ के शोक में शौर्य से जलते हुए
शुम्भ की वीरकरुणरसमयी उक्ति

अनुवाद-आज मैं किसके लिए ब्रह्माण्डभाण्ड को निरन्तर गिरते हुए बाणों से खण्ड खण्ड करूँ। इसके बाद सिंह की तरह वाणी से इस संसार को क्यों नष्ट करूँ? या किसके लिए तलवार की धारा से सम्पिण्डित शरीर वाली (खण्डीकृत शरीर वाली) इसे सतावे? यदि रणभूमि के पृष्ठभाग में (मध्य भाग में अथवा पीछे के भाग में) माता की सेना में तुम सो गये हो।।११।।

को मे पश्येदमन्दं समितिविलसितं कःसुखी स्यात्प्रतीप-
प्रध्वंसादद्य सद्यः स्फुरति शरशतं सङ्गरे सङ्गरेक्षोः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बन्धो भवतु मम रणक्रीडनं सार्थकं ते
गाढस्वापप्रपन्नं न भवति वदनं स्मेरधारावदातम्।।१२।।

अन्वय-कः मे अमन्दं समितिविलसितम् पश्येत्? कः अद्य प्रतीपप्रध्वंसात् सुखी? सङ्गरे सद्यः सङ्गरेक्षोः शरशतं स्फुरति। बन्धो! उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, मम रणक्रीडनं सार्थकं भवतु। गाढस्वापप्रपन्नं ते वदनं स्मेरधारावदातम् न भवति।।१२।।

अनुवाद-कौन मेरे तीव्र रणाङ्गणविलास को देख सकता है (देखने की सामर्थ्य रखता है) कौन आज विरोधी के विनाश से सुखी है? युद्ध में शीघ्र युद्धाकांक्षी के सैकड़ों बाण स्फुरित हो रहे है (फरफरा रहे है।) बन्धु! उठो उठो। मेरी रणक्रीड़ा सार्थक हो। चिरनिद्रा को प्राप्त तुम्हारा मुख स्थिति प्रवाह से प्रसन्न नहीं हो रहा है।।१२।।

व्यर्थं मद्बाहुवीर्यं किमथ यममुखव्यक्तदन्तातिभीमै-
र्बाणैर्वा नैव किञ्चित्फलति धनुरिदं किं जनुर्वा मदीयम्।
चेदेषा शैलपुत्री समरसरभसं वर्तते मत्पुरस्ताद्
आलोक्य प्रौढभावं वहति च वसुधा पृष्ठसुप्तं निशुम्भम्।।१३।।

अन्वय-मद्बाहुवीर्यम् व्यर्थम्। अथवा यममुखव्यक्तदन्तातिभीमैः बाणैः किम्?। धनुः किञ्चित् न एव फलति। मदीयम् जनुः वा किम्? चेत् एषा शैलपुत्री समरसरभसम् मत्पुरस्तात् वर्तते, प्रौढभावम् आलोक्य वसुधा पृष्ठसुप्तम् निशुम्भं वहति।।१३।।

अनुवाद-मेरी भुजाओं की शक्ति व्यर्थ है। अथवा यम के मुख में दिखाई देने वाले दाँतों की तरह अत्यन्त विकराल बाणों से क्या प्रयोजन?। यह धनुष कुछ नहीं ही कर पा रहा है। मेरा जन्म फिर क्या? चूँकि यह हिमालय पुत्री युद्ध के प्रति गतिशील

भाव से मेरे सामने है, (इसीलिए) प्रौढभाव को देखकर पृथ्वी (अपने) पीठ पर सोये निशुम्भ को ढो रही है।।१३।।

अथात्र रौद्रभयानकहास्यबीभत्सकरुणरससङ्कीर्णकाव्यम्

दुर्गा दुर्गासिधारादलितवलगलन्मेदसि त्रासधावत्-
पादातव्रातपादोच्छलितबहुवशा [वसा] सिक्तवेतालचक्रे।
चक्राक्रान्तारिवक्राननरुदितरवाकर्णनक्लिष्टदैत्ये
नृत्यन्ति क्रोधपूर्तिश्र [स्व] मुदितहृदया मातरो युद्धमध्ये।।१४।।

अन्वय- दुर्गादुर्गासिधारादलितबलगलन्मेदसि त्रासधावत्पादातव्रातपादोच्छलितबहुवसासिक्तवेतालचक्रे चक्राक्रान्तारिवक्राननरुदितरवाकर्णनक्लिष्टदैत्ये युद्धमध्ये क्रोधपूर्तिस्वमुदितहृदया मातरो नृत्यन्ति।।१४।।

रौद्रभयानकहास्यबीभत्सकरुणरससङ्कीर्णकाव्य

अनुवाद-दुर्गा की कठोर तलवार की धारा से दलित बल से गलते हुए मेदा वाले, सन्त्रास से दौड़ती हुई सेना के समूह के पैरों से उच्छ्वसित बहुविध वसा से आर्द्र वेतालचक्र वाले, चक्रसुदर्शन से आक्रान्त शत्रु के ठेढ़े से रोने से उद्भूत शब्दों के श्रवण से क्लेश युक्त दैत्यों वाले युद्ध के मध्य में क्रोध के भर जाने से अपने आप प्रसन्न हृदय वाली माताएँ नाच रही हैं।।१४।।

ब्रह्माण्या पातिता ये कुशजलमिलनम्लानतेजःशरीरा
वीरास्तैरत्र सेतुर्भवति सुविततः शोणिताम्भोधिमध्ये।
भूयो वज्राभिधाताद्विदलदरिचमूचक्रसञ्जातरक्त-
स्रोतः सम्पातकम्पाकुलकररिघटाघट्टनादेष भग्नः।।१५।।

अन्वय- कुशजलमिलनम्लानतेजश्शरीरा ये वीराः ब्रह्माण्या पातिताःतैः अत्र शोणिताम्भोधि मध्ये सुविततः सेतुः भवति। भूयः वज्राभिधाताद्विदलदरि-चमूचक्रसञ्जातरक्तस्रोतः सम्पातकम्पाकुलकररिघटाघट्टनात् एष भग्नः।।१५।।

अनुवाद-कुशजल के संसर्ग से म्लान कान्ति वाली शरीर को धारण करने वाले जो वीर ब्रह्माणी के द्वारा (युद्धभूमि में) गिराये गये। उनके द्वारा यहाँ रक्तसमुद्र के बीच सम्यक् रूप से फैला हुआ पुल बन गया है। फिर वज्र की चोट से नष्ट होती हुई शत्रुसेना के समूह से उत्पन्न रक्तनदी में गिरने के कम्पन से आकुल हाथियों की टोली के आन्दोलन से यह टूट गया है।।१५।।

सिंहो द्रंष्ट्राकरालाननकुहरचलज्ज्वालजालाभजिह्वा-
जग्धद्द्वीपिप्रलम्बत्करभुजगपतद्वैष्णवीशक्तियानः।
किञ्चिद्व्याकुञ्चिपादस्फुटकुटिलनखप्रोतमातङ्गकुम्भ-
भ्रश्यन्मुक्ताकलापाकलितवसुमतीकुट्टिमः क्रीडतीह।।१६।।

अन्वय- द्रंष्ट्राकरालाननकुहरचलज्ज्वालजालाभजिह्वाजग्धद्द्वीपिप्रलम्बत्करभुजगपतद्वैष्णवीशक्तियानः किञ्चिद्व्याकुञ्चिपादस्फुटकुटिलनखप्रोतमातङ्गकुम्भभ्रश्यन्मुक्ताकलापाकलितवसुमतीकुट्टिमः सिंहः इह क्रीडति।।१६।।

अनुवाद-दाढ़ से विकरालमुखछिद्र के अन्दर से चलती हुई अग्निसमूह की आभा वाली जिह्वा से निगलते हुए हाथियों की लटकती हुई सर्प जैसी सूँड़ से गिरता हुआ वैष्णवी का शक्तिशाली यान स्वरूप, कुछ टेढ़े पैर में प्रतीत होते हुए कुटिल नाखून से अभिभूत (आक्रान्त) हाथियों के कुम्भस्थल से गिरते हुए मोतीकलाप से भरी हुई पृथ्वी की फर्स वाला (फर्स पर) सिंह यहाँ खेल रहा है।।१६।।

अथ रक्तबीजस्य वीरवाक्यम्

एष स्वर्गपतीभकुम्भदलनप्रभ्रष्टमुक्तावली-
व्याजोत्कीर्णविशुद्धकीर्तिविदितस्तिष्ठामि युद्धोद्यतः।
उड्डीनाञ्जनपर्वताकृतिरियं चेदत्र धावत्यहो
तेनालङ्जगदत्रखण्डनभुजं मामत्र के नो विदुः।।१७।।

अन्वय- स्वर्गपतीभकुम्भदलनप्रभ्रष्टमुक्तावलीव्याजोत्कीर्णविशुद्धकीर्तिविदितः एष युद्धोद्यतः तिष्ठामि। अहो! अत्र उड्डीनाञ्जनपर्वताकृतिः इयं चेत् धावति तेन अत्र जगदण्डखण्डनभुजं माम् के न अलम् विदुः।।१७।।

रक्तबीज का वीरवाक्य

अनुवाद-स्वर्गपति इन्द्र के हाथी के कुम्भस्थल के विदीर्ण करने से गिरी हुई मोती की माला के व्याज से बिखेरी गयी विशुद्धकीर्ति से विख्यात यह(मैं) युद्ध के लिए तैयार बैठा हूँ। अरे! यहाँ पर धुएँ से उड़ते हुए कज्जल पर्वत की आकृति वाली यह (देवी) यदि दौड़ रही है, तो यहाँ संसार रूपी अण्डे को नष्ट कर देने वाली भुजा वाले मुझे कौन लोग नहीं पर्याप्त रूप से जानते है?।।१७।।

अस्मद्बाणविदीर्णवैरिरुधिरस्त्रोतःशतैः पूरिते
सङ्ग्रामाम्बुनिधौ ममाङ्गरुधिरोत्पन्ना भटाः सर्वतः।
नृत्यन्तो विहसन्ति सन्ततकृतस्नानावगाहोद्यमाः
किं मामत्र विदन्ति शैलतनयाशस्त्राणि हा दुर्बलम्।।१८।।

अन्वय- अस्मद्‌बाणविदीर्णवैरिरुधिरस्त्रोतश्शतैः पूरिते सङ्ग्रामाम्बुनिधौ सर्वतः ममाङ्गरुधिरोत्पन्नाः सन्ततकृतस्नानावगाहोद्यमाः भटाः नृत्यन्तो विहसन्ति। हा! किमत्र शैलतनयाशस्त्राणि मां दुर्बलम् विदन्ति?।।१८।।

अनुवाद-मेरे बाण से विदीर्ण शत्रु की सैकड़ों रक्त नदियों से भरे हुए संग्रामरूपी समुद्र में सब तरफ मेरे अङ्गों के रक्त से उत्पन्न, बार बार स्नान एवं अवगाहन में लगे हुए योद्धा नृत्य करते हुए हँस रहे हैं। हाय! क्या यहाँ (अब भी) शैलतनया पार्वती के शस्त्र मुझे दुर्बल मानते हैं (जानते हैं)?।।१८।।

अत्र रक्तबीजवधाय कालिकां प्रवर्तयत्यम्बिका

चामुण्डे चण्डहासैः किमुत जगदिदं खण्डयन्ती स्थितासि
ब्रह्माण्डं खण्डितं स्यान्न भजति स भयं दानवोऽमानवोऽधः।
स्वं रूपं घोररूपं प्रकटय विबुधाधीशचूडामणीनां
व्याघाते टङ्कभूतां मृशति निजमदां गर्जितो रक्तबीजः।।१९।।

अन्वय- चामुण्डे! चण्डहासैः इदं जगत् खण्डयन्ती किम् स्थिता असि? इति। ब्रह्माण्डं खण्डितम् न स्यात्। स अमानवः दानवः अधः भयं भजति। घोररूपं रूपं स्वं प्रकटय। गर्जितः रक्तबीजः विबुधाधीशचूडामणीनाम् व्याघाते टङ्कभूतां निजमदां मृशति।।१९।।

रक्तबीज के वध के लिए अम्बिका कालिका को प्रवर्तित करती हैं

अनुवाद-हे चामुण्डा! चण्डहासों से इस संसार को नष्ट करती हुई क्यों बैठ गयी हो? ऐसा (कहा जा रहा है)। ब्रह्माण्ड खण्डित न हो, वह अमानव दानव नीचे की तरफ भय को धारण कर रहा है (भय का अनुभव कर रहा है। घोररूप रूप वाले अपने आप को प्रकट करो। गर्जित रक्तबीज विष्णु की चूडामणियों के आघात पर तलवारभूता अपनी अभिमानिता को सोच रहा है (विचार रहा है)।।१९।।

अत्र कालिकायाः सङ्ग्रामक्रमः

उत्तुङ्गनीलोत्पलशैलशृङ्गव्यासङ्गलोलाम्बुदजालरूपैः।
व्यावृध्यमाना चिकुरैः समन्तादुन्मीलिता तं प्रतिधावतीयम्।।२०।।

अन्वय- उत्तुङ्गनीलोत्पलशैलशृङ्गव्यासङ्गलोलाम्बुदजालरूपैः समन्ताद् उन्मीलितैः चिकुरैः व्यावृध्यमाना इयं तं प्रति धावति।।२०।।

कालिका का सङ्ग्रामक्रम

अनुवाद-ऊँचे नीले पत्थरों वाले पहाड़ की चोटी पर व्याप्त चञ्चल बादलसमूह के रूप वाले चारों ओर उन्मीलित केशों से वृद्धि को प्राप्त करती हुई यह (काली) उस

(रक्तबीज) के प्रति दौड़ रही है।।२०।।

वेगोद्भ्राम्यद्धरित्रीचलदचलतलश्वभ्रसम्भूतपाता-
लाम्भः सम्भारमज्जज्जगदुदितभयव्याकुलैर्ब्रह्मवक्त्रैः।
त्राहि त्राहीति वाचा विकलविनमितैः स्तूयमाना समन्तात्
फालाकारान्करालानिह रदनभरान्पातयामास काली।।२१।।

अन्वय- वेगोद्भ्राम्यद्धरित्रीचलदचलतलश्वभ्रसम्भूतपातालाम्भः सम्भारमज्जज्जगदुदितभयव्याकुलैः ब्रह्मवक्त्रैः विकलविनमितैः त्राहि त्राहि इति वाचा समन्तात् स्तूयमाना काली इह फालाकारान् करालान् रदनभरान् पातयामास।।२१।।

अनुवाद-वेग से ऊपर की तरफ घूमती हुई पृथ्वी की चंचलता के कारण पहाड़ के तल में छिद्र हो जाने से पाताल के जल के संङ्ग्रह में डूबते हुए संसार में उभरे हुए भय से व्याकुल ब्रह्मा के मुखों के द्वारा विकल्प एवं विनम्रता के साथ "रक्षा करो, रक्षा करो" ऐसी वाणी से हर तरफ से स्तुति की जाती हुई काली ने यहाँ फाल के आकार वाले कराल एवं बड़े बड़े दाँतों वालों (राक्षसों) को मार डाला (जमीन पर गिरा दिया)।।२१।।

उद्यद्दोर्दण्डचण्डभ्रमदसिविदलद्दानवव्रातवक्षः
प्रोद्गच्छच्छोणिताब्धिप्लवितगजगिरिव्यस्तपादातवृक्षे।
दंष्ट्रासङ्घट्टितारित्रुटितगलगलद्रक्तसंसिक्तवक्त्र-
व्यासक्तारक्तजिह्वा स्वयमिह समरे कालिकेयं चचार।।२२।।

अन्वय- उद्यद्दोर्दण्डचण्डभ्रमदसिविदलद्दानवव्रातवक्षः प्रोद्गच्छच्छौणिताब्धिप्लवितगजगिरिव्यस्तपादातवृक्षे समरे दंष्ट्रासङ्घट्टितारित्रुटितगल गलद्रक्तसंसिक्तवक्त्रव्यासक्तारक्तजिह्वा इयं कालिका इह (समरे) स्वयं चचार।।२२।।

अनुवाद-उछलते हुए प्रचण्ड भुजदण्ड से घूमती हुई तलवार के द्वारा नष्ट होते हुए दानवों के विशाल वक्षस्थल से निकलते हुए रक्त के समुद्र में वह रहे हाथी पहाड़ एवं बिखरे विशाल वृक्षों वाले युद्ध में दाढ़ से संघर्षित शत्रु के टूटे हुए गले से गलते हुए रक्त से भीगी हुई मुख एवं विशाल लाल जिह्वा वाली यह कालिका यहाँ (युद्ध में) स्वयं घूमी।।२२।।

पुनरत्र वीरभयानकसङ्कीर्णकाव्यम्

देवी निर्मुक्तशस्त्रद्युतिततिपिहितो विन्दुभिः शोणितानां
सन्दिग्धश्चक्रचक्राकुलकरनिकरः कालकालाभ्रकालः।
ताटङ्कीभूतचापप्रचलशरशतोद्गारदुर्वारवीर्यां
शर्वाणीं लक्ष्यवक्षोमथितगजघटाघोरघोषो निशुम्भः।।२३।।

अन्वय- देवीनिर्मुक्तशस्त्रद्युतिततिपिहितः शोणितानां विन्दुभिः सन्दिग्धः चक्रचक्राकुलकरनिकरः कालकालाभ्रकालः निशुम्भः ताटङ्कीभूतचापप्रचल शरशतोद्गारदुर्वारवीर्यां शर्वाणीं लक्ष्यवक्षोमथितगजघटाघोरघोषः (सञ्जातः)।।२३।।

वीरभयानकसङ्कीर्णकाव्य

अनुवाद-देवी के निकले हुए शस्त्र की कान्ति के समूह से ढका हुआ, रक्त की विन्दुओं से सना हुआ चक्रमण्डल से आकुल प्रकाश समूह वाला, काले बादल की तरह काले वर्ण का निशुम्भ कर्णाभूषणीभूत धनुष के चलने के कारण उठ रहे सैकड़ों बाणों से अपराजेय शक्ति वाली शर्वाणी के (उस) लक्ष्यभूत वक्षस्थल को विदीर्ण कर देने वाले हाथियों के समूह के घोर घोष की भाँति घोष करने लगा (घोषयुक्त हो गया)।।२३।।

हस्ताग्रप्राप्तमम्भोधरभयमुदितश्यामविस्तीर्णचर्म-
भ्रान्त्या गृह्णाति धत्ते त्रिदिवपतिधनुश्चात्मनश्चापबुद्ध्या।
देवी तं चाशु गोधैस्तिरयति हि तथा भानुमाली यथासौ
ब्रह्माण्डव्यस्तबाणावलिकलितगृहाभ्यन्तरे सञ्चचार।।२४।।

अन्वय- अयम् उदितश्यामविस्तीर्णचर्मभ्रान्त्या हस्ताग्रप्राप्तमम्भोधरं गृह्णाति च आत्मनश्चापबुद्ध्या त्रिदिवपतिधनुः धत्ते। देवी तम् आशु हि गोधैः तिरयति। यथा भानुमाली तथा असौ ब्रह्माण्डव्यस्तबाणावलिकलित- गृहाभ्यन्तरे सञ्चचार।।२४।।

अनुवाद-यह (निशुम्भ) उभरी हुई कालिमा के कारण विस्तीर्ण चर्म की भ्रान्ति से हाथ के अग्रभाग से प्राप्त बादल को पकड़ता है, और अपने धनुष को समझ कर इन्द्रधनुष को धरता है। देवी उसे शीघ्र ही धनुष के चिल्ले की चोट से बचने के लिए बाँये हाथ में बाँधे जाने वाले चर्मपट से रोंकती हैं (रिझाती हैं)। जैसे सूर्य ब्रह्माण्ड मे बिखरे हुए बाण सदृश रश्मिसमूह से कलित भवनाभ्यन्तर भाग में

सञ्चरण करता है वैसे यह (निशुम्भ) ब्रह्माण्ड में विजयी हुई बाणश्रेणी से घिरे हुए घर के अन्दर घूमा।।२४।।

नो सिंहो नापि देवी न च दनुजचमूचक्रमाशक्रलोका-
लोकादालोकशैलाद् दनुजवरवलात्सन्ति लोकाः सशोकाः।
किं भो भूतेश भूते सति जगति महादानवेन्द्रावशिष्टे
कार्यं कुर्यादिदं वा वद जगदखिलानन्दकन्दायमानम्।।२५।।

अन्वय-नो सिंहः, देवी अपि न च दनुजचमूचक्रम् न। आशक्रलोकालोकात् आलोकशैलात् लोकाः दनुजवरबलात् सशोकाः सन्ति। भो भूतेश! जगति भूते महादानवेन्द्रावशिष्टे सति इयम् वा अखिलानन्दकन्दायमानम् जगत् किं कार्यं कुर्यात्? वद।।२५।।

अनुवाद-न(तो)सिंह है, देवी भी नहीं है, और राक्षस की सेना का समूह (भी) नहीं है। इन्द्रलोकप्रभृति लोक से तथा शैललोक से लेकर सभी लोक श्रेष्ठ दानव की शक्ति से सशोक हैं। हे भूतेश (शिव)! संसार के भूत हो जाने पर या महादानवेन्द्र (निशुम्भ) के (ही) अवशिष्ट रहने पर यह (देवी) या सम्पूर्ण आनन्दकन्दायमान संसार (सर्वविध आनन्द सम्पादन के लिए) क्या कार्य करे (कर सकता है)? बताओ।।२५।।

दम्भोलिं यो निशुम्भोऽमरपतिविजये पाणिनाम्भोजतुल्यं
मत्वा जम्भारिदम्भोपचितमपि हठादामृशन्मन्दमन्दम्।
तस्योरःपीठमेतद्विलुठति कठिनं हन्त कण्ठीरवास्य-
व्यावल्गद्दन्तकोटिस्खलितमविरलं दर्पतः सर्वनाशः।।२६।।

अन्वय-यः निशुम्भः पाणिना जम्भारिदम्भोपचितम् अपि दम्भोलिम् अम्भोजतुल्यम् मत्वा अमरपतिविजये हठात् मन्दम् मन्दम् आमृशत्। तस्य कठिनम् उरः पीठम् विलुठति। अविरलं कण्ठीरवास्यव्यावल्गद्दन्तकोटिस्खलितम्। हन्त! दर्पतः सर्वनाशः।।२६।।

अनुवाद-जो निशुम्भ हाथ से इन्द्र के अभिमान से भरे हुए भी इन्द्र के वज्र को कमल जैसा मानकर इन्द्र पर विजय के समय हठ से धीरे धीरे (बड़ी कोमलता के साथ) स्पर्श करता था। उसका कठोर वक्षस्थल (हृदयपीठ) (जमीन पर) लुढ़क रहा है। अविरल भाव से सिंह के मुख के हिलते डुलते दाँतो के अग्रभाग से (यह) स्खलित है (गिर गया है)। हाय! अभिमान से (इसका) सर्वनाश (हो गया) है।।२६।।

पुनरत्र वीररसः

शुम्भो दोस्तम्भदीव्यत्सदसि गतमिव व्योम कुर्वन्स्वगर्वै-
रुर्वी पादावधूतानिव बहलशरैर्दारयन् पर्वताग्रान्।
निःश्वासोदग्रवातैर्निविडघनघटां विक्षिपन् दिक्षु दिक्षु
त्रैलोक्यं ग्रस्तमेवं कलयति समरश्लाघिनीभिः क्रियाभिः।।२७।।

अन्वय- शुम्भः दोस्तम्भदीव्यत्सदसि स्वगर्वैः व्योम उर्वीम् गतम् इव कुर्वन् पादावधूतान् पर्वताग्रान् बहलशरैः दारयन् इव निःश्वासोदग्रवातैः दिक्षु दिक्षु निबिडघनघटां विक्षिपन् समरश्लाघिनीभिः क्रियाभिः त्रैलोक्यं ग्रस्तम् एव कलयति।।२७।।

वीररस

अनुवाद-शुम्भ स्तम्भसदृशभुजाओं से दमकती हुई सभा में अपने अभिमान से आकाश को पृथ्वी पर गया हुआ (पृथ्वीगत) सा मानो करता हुआ, पैरों से हिलाए हुए पर्वतों के अग्रभागों को कठोर बाणों से मानो नष्ट करता हुआ, निःश्वास की तीव्र हवाओं से दिशाओं दिशाओं में विरल बादल की घटाओं को फेंकता हुआ, समर में प्रशंसा की जाने वाली क्रियाओं से तीनों लोकों को ग्रस्त ही कर रहा है।।२७।।

अत्र शुम्भं प्रति देवीवाक्यम्, रसस्तु भयानकहास्यसङ्कीर्णः

मद्बाणव्रातवातैर्वियति विचरिता घोटकाष्टापटङ्का-
क्षुण्णक्षोणीधराग्राः सुरपुरललनालोकतां ते भजन्ते।
किञ्चान्यत् किञ्चिदञ्चत्प्रखरनखमुखोत्खातभूखण्डचण्डः
पञ्चास्यो मे रथं ते क्षिपति बलवलद्घोरलाङ्गूलबद्धम्।।२८।।

अन्वय- वियति मद्बाणव्रातवातैः विचरिताः ते घोटकाष्टापटङ्काक्षुण्णक्षोणीधराग्राः सुरपुरललनालोकतां भजन्ते। किञ्च! अन्यत् किञ्चिदञ्चत्प्रखर-मुखनखोत्खातभूखण्डचण्डः मे पञ्चास्यः बलवलद्घोरलाङ्गूलबद्धम् ते रथं क्षिपति।।२८।।

शुम्भ के प्रति देवी का वाक्य, भयानकहास्यसङ्कीर्णरस

अनुवाद-आकाश में मेरे बाणसमूह की हवाओं से छूटे हुए वे घोड़ों के आठों पैरों से कुचले गये पर्वतों के अग्रभाग (शिखर) देवपुर की अप्सराओं की दृष्टि के विषय बन रहे हैं। (वह भी) कुछ अन्य प्रकार से। कुछ झुकते हुए प्रखर मुख एवं नाखून से उखाड़े हुए पृथ्वी के बड़े बड़े टुकड़ों वाला मेरा सिंह बल से चोट पहुँचाते हुए प्रचण्ड पूँछो से बँधे हुए तुम्हारे रथ को फेंक रहा है।।२८।।

क्व याता ते तादृग्वचनरचना दानववर
क्व सा विद्या सद्यो गदितबहुमाया तव गता।
क्व वा दम्भो दम्भोलिकरकरदम्भोलिजयिनी
शरश्रेणी याता वदसि न च किञ्चित्कथमहो।।२९।।

अन्वय-दानववर! ते तादृग्वचनरचना क्व याता? सा सद्यः गदितबहुमाया तव विद्या क्व गता? वा दम्भः (क्व गतः)? च दम्भोलिकर करदम्भोलिजयिनी शरश्रेणी क्व याता? अहो कथम् किञ्चित् न वदसि? ।।२९।।

अनुवाद-हे दानवश्रेष्ठ! तुम्हारी वह वचनरचना कहाँ चली गयी? वह बहुविधा माया को उभार देने वाली तुम्हारी विद्या कहाँ चली गयी? या दम्भ कहाँ (चला गया)? और वज्रहस्ता इन्द्र के हाथों के वज्र को जीत लेने वाली बाणों की श्रेणी कहाँ चली गयी? अरे! क्यों कुछ नहीं बोलते हो? ।।२९।।

पुनरत्र वीरभयानकसङ्कीर्णता

एवं भूतेऽपि दैत्यस्त्रिभुवनविलयाशंसिनीभिः क्रियाभिः
दिव्यास्त्रग्रामदुर्गान् पिबनिव भुजा [दुर्गानपि वनिभुजगान्] अम्बिकायाः स्ववेगैः।
बाहुभ्यामुद्यदिन्द्रद्विरदकरसमाभ्यामिमां गृह्य[1] यातः
क्वासौ निर्घातघोषः शिव भवति महोत्पातदुःस्थं मनो मे।।३०।।

अन्वय-एवं भूतेऽपि दैत्यः त्रिभुवनविलयाशंसिनीभिः क्रियाभिः स्ववेगैः उद्यदिन्द्र द्विरदकरसमाभ्यां बाहुभ्यां अम्बिकायाः दिव्यास्त्रग्रामदुर्गान् वनिभुजगान् इमाम् अपि गृह्य यातः। शिव! क्व असौ निर्घातघोषः? मे मनः महोत्पातदुःस्थम् भवति।।३०।।

वीरभयानकरससङ्कीर्णता

अनुवाद-इतना होने पर भी दैत्य तीनों भुवनों के विलय की आशंसा करने वाली क्रियाओं से अपने वेगों से उठती हुई इन्द्र के हाथी की सूँड़ जैसी दोनों भुजाओं से अम्बिका के दिव्यास्त्रों को, गाँवों को, किलों को, वन वृक्षों एवं सर्पों को इस (देवी) को भी खींचकर चला गया है। हे शिव! कहाँ यह युद्धध्वनि हो रही है? मेरा मन अत्यन्त उत्पात के कारण दुःखी हो गया है।।३०।।

---

१. 'गृहीत्वा' इति संशोधनं छन्दोभङ्गात् न कृतम्

अत्राकाशे नियुद्धं वहु विधाय बाहुपाशेन शुम्भं बद्ध्वा प्रक्षिपन्त्या देव्याः दर्पातिशयाकलनादुत्साहवाक्यं शिवस्य, रसस्तत्र शान्तभयानकाद्भुतसङ्कीर्णः

देव्या दानवबन्धनाकुलकरान्दोलक्वणत्कङ्कण-
क्वाणः कर्णसुखावहः शुभकथासंसूचकः श्रूयते।
नो गर्जो दनुजस्य दिग्गजकटस्फोटप्रदः कुत्रचिन्
मन्ये पूर्णमनोरथः सुरपतिः स्यादद्य सद्यः प्रभुः।।३१।।

अन्वय- देव्या दानववन्धनाकुलकरान्दोलक्वणत्कङ्कणक्वाणः कर्णसुखावहः शुभकथासंसूचकः श्रूयते। दनुजस्य दिग्गजकटस्फोटप्रदः गर्जः कुत्रचित् न। मन्ये सुरपतिः प्रभुः अद्य सद्यः पूर्णमनोरथः स्यात्।।३१।।

यहाँ आकाश में बहुत प्रकार से युद्ध करके बाहुपाश से शुम्भ को बाँधकर (उसको) फेंकती हुई देवी के दर्पातिशयाकलन से शिव का उत्साहवाक्य, शान्तभयानकअद्भुतसङ्कीर्णरस

अनुवाद-देवी के द्वारा दानवों के बन्धन से व्याकुल हाथों के घुमाने से बजते हुए कंगन की ध्वनि, कानों को सुख देने वाली शुभकथा की संसूचना देने वाली सुनाई पड़ रही है। राक्षस की, हाथी के गण्डस्थल को स्फुटित कर देने वाली (स्फोट प्रदान कर देने वाली) गर्जना कहीं नहीं है। ऐसा सोच रहा हूँ (ऐसा मान रहा हूँ) कि देवाधिराज स्वामी (इन्द्र) आज शीघ्र पूर्णमनोरथ हो जाँय।।३१।।

अत्र शुम्भवधादुन्मुक्तबन्धानां देवरत्नानां स्वस्वत्रु [स्वस्ति] लाभमाश्चर्यमिव मन्यमानस्य शिवस्योक्तिः, रसस्तु करुणायुतशृङ्गारहास्यसङ्कीर्णः

अद्यारभ्य विमानरत्नमिलिता हंसावली ब्रह्मणः
पादोद्वाहनमातनोतु धनदं पश्यन्तु पद्मादयः।
स्वर्वारालकवेलिकोमलपदन्यासक्वणन्नूपुर-
क्वाणैरद्य भवत्यहो दिविषदामानन्दनं नन्दनम्।।३२।।

अन्वय- अहो! अद्य आरभ्य विमानरत्नमिलिता हंसावली ब्रह्मणः पादोद्वाहनं आतनोतु। पद्मादयः धनदं पश्यन्तु। स्वर्वारालककेलिकोमलपदन्यासक्वणन्नूपुरक्वाणैः अद्य नन्दनम् दिविषदाम् आनन्दनम् भवतु।।३२।।

यहाँ शुम्भ के वध से बन्धनमुक्त देवश्रेष्ठों को अपने अपने कल्याण लाभ को आश्चर्य जैसा मानते हुए शिव की उक्ति,

भक्तिकरुणायुतशृङ्गारहास्यसङ्कीर्णरस

अनुवाद-अहो! आज से विमानरत्न से मिली हुई हंसश्रेणी ब्रह्मा के चरणों (पैरों) के वाहन (हंस) को सम्यक् रूप से प्रेरित करे। लक्ष्मी आदि कुबेर को देखें (कुबेर की निगरानी करें)। स्वर्गांगनाओं की केशक्रीड़ा एवं कोमल पदन्यास से बजती हुई नूपुरध्वनियों से आज नन्दनवन स्वर्ग में निवास करने वालों को आनंददायक हो।।३२।।

अद्यायं सुरपादपो बहुदिनैरिन्द्रादिभिर्लक्षितो
दुःखं दुःसहमेति विष्वगमरैरावृत्य नम्रीकृतः।
कैश्चिद् ग्रस्तसमस्तपुष्पपटलः कैश्चित्फलव्याकुलः
कैश्चिन्मोटितपल्लवः प्रतिपलं कैश्चित्कृतारोहणः।।३३।।

अन्वय-बहुदिनैः इन्द्रादिभिः लक्षितः अमरैः विष्वक् आवृत्य नम्रीकृतः, कैश्चित् ग्रस्तसमस्तपुष्पपटलः कैश्चित्फलव्याकुलः, कैश्चित् मोटितपल्लवः, कैश्चित् प्रतिपलम् कृतारोहणः अयं सुरपादपः अद्य दुःसहं दुःखम् एति।।३३।।

अनुवाद-बहुत दिनों से इन्द्र आदि के द्वारा लक्षित, देवताओं द्वारा चारों तरफ से आवृत्त करके नम्रीकृत(झुकाया हुआ), किन्हीं के द्वारा जिसके समस्त पुष्पसमूह को आक्रान्त कर दिया गया है, किन्हीं के द्वारा जिसके समस्त पल्लव तोड़ लिये गये है, किन्हीं के द्वारा प्रतिपल जिस पर चढ़ा जा रहा है, ऐसा यह कल्पवृक्ष आज अत्यन्त असहनीय दुःख को प्राप्त कर रहा है।।३३।।

अथ भयानकरसः

व्यावृत्याञ्जनशैलकोटरनिभं वक्त्रं कटत्कारिणीं
दंष्ट्रालीं परिघघ्नीरदघटासङ्घट्टघोरध्वनिः।
आतत्य प्रलयाम्बुदोदरचलज्ज्वालाभजिह्वां तलि [तडि]-
द्धाराकारकृपाणदीपनपरा काली पुरो धावति।।३४।।

अन्वय-अञ्जनशैलकोटरनिभं वक्त्रम् व्यावृत्य कटत्कारिणीं दंष्ट्रालीं प्रलयाम्बुदोदरचलज्ज्वालाभजिह्वाम् आतत्य परिघघ्नीरदघटासङ्घट्टघोर-ध्वनिः तडिद्धाराकारकृपाणदीपनपरा काली पुरः धावति।।३४।।

भयानकरस

अनुवाद-काजल के पहाड़ के कोटर जैसे मुख को फैलाकर, चमचमाहट पैदा करती हुई दाढ़ पंङ्क्ति को (तथा) प्रलयकालीन बादल को अपने अन्दर समेटे हुए उठती

हुई ज्वाला की दीप्ति सरीखी जिह्वा को घुमाकर (लपकाकर) लोहे की अर्गला जैसी प्रतीत होने वाली बादल की घटा की वर्षण जैसी घोर ध्वनि वाली, विद्युत की धारा के आकार वाली कृपाण को चमकाने में संलग्न काली सामने दौड़ रही है।।३४।।

आशाः शून्यतमास्तमांसि परितो धूमायमानाश्चिता
धावन्ति स्फुरदाननानलशिखा उल्कामुखा आकुलाः।
भूभृद्‌गह्वरगर्भनिश्रितमहाशार्दूलभीमध्वनि-
र्जातः प्राप्तमनुत्तमं भयमहो दृष्ट्वा श्मशानस्थलीम्।।३५।।

अन्वय- आशाः शून्यतमाः। तमांसि परितः। चिताः धूमायमानाः। स्फुरदान- नानलशिखाः आकुलाः उल्कामुखा धावन्ति। भूभृद्‌गह्वरगर्भनिश्रि- तमहाशार्दूलभीमध्वनिर्जातः। अहो! श्मशानस्थलीम् दृष्ट्वा अनुत्तमं भयम् प्राप्तम्।। ३५।।

अनुवाद- दिशाएँ शून्य हो गयी हैं। अन्धकार चारों ओर (व्याप्त) है। चिताएँ धूँयें से भरी हुई हैं (धूमयुक्त सी हो गयी हैं)। चमकते हुए मुख एवं अग्निरूपी शिखा वाले आकुल अगिया वैताल (राक्षस) दौड़ रहे हैं। पर्वतों की गुफाओं के अन्दर से निकले हुए (अन्दर रह रहे) बड़े बड़े सिंहों की घोर ध्वनि उत्पन्न हो गयी है। अरे! श्मशानस्थली को देखकर भीषण भय का अनुभव हो रहा है। (भीषण भय प्राप्त हो गया है)।।३५।।

कासारात्कर्दमौघैः कवलितवपुषः पुण्डरीकावलीढां
शुण्डामामोटयन्तो जरतटविगतं पुच्छमाकम्पयन्तः।
व्यावृत्तास्या मृणाली कवलमविरलं कण्ठतो दन्तमूले
लग्नं सन्दर्शयन्तो नदति मृगपतौ वारणा वेगमीयुः।।३६।।

अन्वय- कर्दमौघैः कवलितवपुषः कासारात् पुण्डरीकावलीढां शुण्डाम्आमोटयन्तः जरतटविगतम् पुच्छम् आकम्पयन्तः व्यावृत्तास्याः मृणालीकवलम् कण्ठतः दन्तमूले अविरलम् लग्नम् सन्दर्शयन्तः वारणाः मृगपतौ नदति वेगम् ईयुः।।३६।।

अनुवाद- कीचड़ की अधिकता के कारण समाप्त शरीर वाले (कीचड़ के आधिक्य से निगीर्ण शरीर वाले) तालाब से, कमल में जकड़ी हुई सूँड़ को खीचते हुए (चवाये हुए कमलों वाली सूँड़ को पीसते हुए) जरतट तक पहुँची हुई पूँछ को सम्यक् रूप से कँपाते हुए, खोले हुए मुखों वाले, कमलनाल के कौर को गले से दन्तमूल में सघनता के साथ लगा हुआ दिखाते हुए हाथी सिंह के चिग्घाड़ करने पर वेग के साथ चल पड़े (भाग पड़े)।।३६।।

अथ बीभत्सरसः

पश्यायं प्रेतसार्थः शटितशवशिरो निःसरन्मज्जिपिण्डं
बद्ध्वा कृत्वा स्वहस्ते हसति बहुतरं लोभयन् बालवर्गान्।
जिह्वाभिर्लोडयन्त्यश्चिबुकनिचुलितां सृक्वनिर्यातधारां
धृत्वा धृत्वा पिशाच्यः करयुगचुलुकैर्मज्जपूरं पिबन्ति।।३७।।

अन्वय- पश्य, अयं शटितशवशिरः प्रेतसार्थः निःसरन् मज्जिपिण्डं बद्ध्वा स्वहस्ते कृत्वा बालवर्गान् लोभयन् बहुतरं हसति। चिबुकनिचुलितां सृक्व- निर्यातधारां जिह्वाभिर्लोडयन्त्यः पिशाच्यः करयुगचुलुकैः मज्जपूरं धृत्वा धृत्वा पिबन्ति।।३७।।

बीभत्सरस

अनुवाद-देखो, यह बाँटे गये शव के सिर को धारण करने वाला प्रेतदल, निकलता हुआ, मांसपिण्ड को बाँधकर अपने हाथ में लेकर बच्चों के वर्ग को ललचाता हुआ अनेक प्रकार से हँस रहा है। ठुड्ढी पर निचुलित, होठों के किनारों से निकलती हुई (रक्त) धारा को जीभों से चाटती हुई पिशाचिनियाँ दोनों हाथों के चुल्लुओं से हड्डी एवं मांस के रससमूह को पकड़ कर पी रही हैं।।३७।।

निर्यन्मज्जसमूहकर्दममधिव्यग्रा अमी पूतना
उत्पत्य प्रपतन्ति तत्र च हठादन्तर्निमग्नं शवम्।
आकृष्याथ विदार्य निःसृतवशासंसेकमङ्के मिथः
कुर्वाणाः प्रपिबन्ति मज्जलहरीं पायन्ति त्रस्ताङ्गनाम्।।३८।।

अन्वय- निर्यन्मज्जसमूहकर्दमम् अधिव्यग्राः अमी पूतनाः उत्पत्य प्रपतन्ति। तत्र अथ हठात् अन्तर्निमग्नं शवम् आकृष्य च विदार्य मिथः अङ्के निःसृतवसासंसेकम् कुर्वाणाः मज्जलहरीं प्रपिबन्ति। त्रस्ताङ्गनाम् पायन्ति।।३८।।

अनुवाद निकलते हुए मांस के समूह रूपी कीचड़ में व्यग्र ये पूतनायें (राक्षसियाँ) उछलकर गिर रही हैं। वहाँ पर इसके बाद हठ से अन्तर्निलीन शव को खींचकर और विदीर्णकर एकान्त में, अङ्ग में, निकली हुई चर्बी का लेप (अभिषेक) करती हुई मज्जा के रस (लहरी) को पी रही हैं। संत्रस्त स्त्री को पिला रही हैं।।३८।।

अत्र हास्यरसोऽपि पूर्ण एव अथाद्भुतरसः

अहो पाणिरहो वक्त्रमहो कुक्षिरहोऽनलः।
अगस्तेरम्बुधिर्यस्याचमतोऽभवदूखरिः।।३९।।

अन्वय- अगस्तेः अहो! पाणिः, अहो! वक्त्रम्, अहो! कुक्षिः, अहो! अनलः! यस्य आचमतः उदधिः ऊखरिः अभवत्।।३९।।

हास्यरस-अद्‌भुतरस

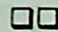
अनुवाद-अगस्ति का आश्यर्च जनक हाथ है। आश्चर्यजनक मुख है। आश्चर्य जनक कुक्षि (पेट) है। आश्चर्यजनक (विस्मयावह) अग्नि (जठराग्नि) है। जिसके आचमन करने से समुद्र ऊसर हो गया।।३९।।

शान्तोऽपि नवमो रसः। स तु ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्यः। सम्प्रति पुनः शृङ्गारादेः प्राधान्यान्न लिख्यते।।

शान्त भी नवम रस है वह ग्रन्थान्तर में द्रष्टव्य है। इस समय शृङ्गार आदि के प्राधान्यवश इस का उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

इति श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे हास्यादिरसप्रकरणम्।।

श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचितसकलरससारसङ्.ग्रह में हास्यादिप्रकरण समाप्त।



नानाविधकालवर्णनप्रकरणम्

सुगम्भीरं व्यङ्ग्यं भवति कविवाणीषु विविधा-
स्त्वलङ्कारा: काव्यं किमपि किल भिन्नं रसमयम्।
चिदानन्दस्पन्दे पतित इव सन्देहरहितो
यदा स्वादे लग्नो भवति लयमग्न: सहृदय:।।१।।

अन्वय- कविवाणीषु सुगम्भीरं व्यङ्ग्यं भवति। विविधास्तु अलङ्कारा:। काव्यं किल किमपि भिन्नं रसमयं भवति। चिदानन्दस्पन्दे पतित: इव सहृदय: आस्वादे लग्न: सन्देहरहित: लयमग्न: भवति।।१।।

अनुवाद-कवि की वाणियों में सुगम्भीर व्यङ्ग्य होता है। विविध प्रकार के तो अलङ्कार (होते हैं)। काव्य निश्चित रूप से कुछ भिन्न, रसमय होता है। चेतन आनन्द के स्पन्दन (लोक) में गिरा हुआ सा सहृदय आस्वाद में लग्न सन्देहरहित तथा लयमग्न होता है।।१।।

वाणीविभ्रमकल्पपादपतलच्छायायितास्ते गता
बाणाद्या: कवयस्तु भानुरपि मे दृष्टे: पथं नागत:।
काव्यं किं कियदस्य वा सुखमहो केनाथवा कल्प्यते
यत्नेनेति वदामि कस्य सविधे वामो विधे: प्रक्रम:।।२।।

अन्वय- वाणीविभ्रमकल्पपादपतलच्छायायिता: ते बाणाद्या: कवय: गता:। भानु: अपि मे दृष्टे: पथम् न आगत:। अहो! काव्यम् किम्? वा अस्य सुखं वा कियत्? अथवा केन यत्नेन कल्प्यते? कस्य सविधे विधे: प्रक्रम: वाम: इति वदामि।।२।।

अनुवाद-सरस्वती के विभ्रमरूपी सुरतरु की छाया का आभोग करने वाले वे वाण आदि कवि चले गये। भानु(कवि) भी मेरे दृष्टि पथ में नहीं आये। अरे! काव्य क्या है या इसका सुख कितना है? अथवा किस प्रत्यन से (यह) कल्पित होता है? किसके पास पहुँच कर विधाता का प्रक्रम (नियम) विरोधी हो जाता है? बता रहा हूँ।।२।।

अथ नानाविधकालवर्णने शृङ्गारहास्यकरुणभयानकरौद्ररसवाक्यम् अथ प्रभातवर्णनम्

दम्पत्योः श्वसितेन भाविविरहज्वालासमुद्यन्महा-
धूमेनेव मृगाङ्कमण्डलमिदं म्लानायते प्रायशः।
प्राचीपर्वतशृङ्गमम्बुजसुहृन्निर्यानपर्यासित-
क्रीडद्वाजिविलोलकिंशुकरजोजालेन शोणायते॥३॥

अन्वय- इदम् मृगाङ्कमण्डलम् प्रायशः दम्पत्योः श्वसितेन भाविविरहज्वालासमुद्यन्महाधूमेन म्लानायते इव। प्राचीपर्वतशृङ्गम् अम्बुजसुहृन्निर्यानपर्यासित क्रीडद्वाजिविलोलकिंशुकरजोजालेन शोणायते इव॥३॥

नानाविधकालवर्णन में शृङ्गारहास्यकरुणभयानकरौद्ररस के वाक्य

प्रभातवर्णन

अनुवाद-यह मृगाङ्कमण्डल प्रायः पतिपत्नी के निःश्वास से, भावी विरह की अग्नि से निकलते हुए महाधूम से मानो म्लान हो गया है। पूरब दिशा के पर्वत का शिखर कमल के मित्र के रथ में लगे हुए खेलते हुए घोड़ों से चंचल किंशुकपुष्प के परागसमूह से लाल दिख रहा है। (शोणवत् प्रतीत हो रहा है)॥३॥

निर्मज्जन्ति सुधाकरस्य किरणाः पाथोनिधौ भानवो
भानोर्मन्दमुदञ्चिता इव तमोव्याधूतधूमायते।
चक्षुर्गोचरतामिवाखिलदिशः प्राप्ता मिथो दम्पती
कष्टात्कण्ठविमोकविह्वलभुजावाकुञ्चितौ तन्वतः॥४॥

अन्वय- पाथोनिधौ सुधाकरस्य किरणाः निर्मज्जन्ति। भानोः भानवः मन्दम् उदञ्चिताः। तमः व्याधूतधूमायते इव। अखिलदिशः चक्षुर्गोचरताम् प्राप्ता इव। कष्टात्कण्ठविमोकविह्वलभुजौ आकुञ्चितौ दम्पती मिथः तन्वतः इव॥४॥

अनुवाद-समुद्र में चन्द्रमा की किरणें डूब रही हैं। सूर्य की किरणें धीरे धीरे ऊपर से उठ रही हैं। अन्धकार मानो उड़ाये गये धूएँ जैसा प्रतीत हो रहा है। सारी दिशाएँ मानो नेत्रगोचरता को प्राप्त सी कर गयी हैं। कष्ट से कण्ठ के छूट जाने से विह्वल भुजाओं वाले सिकुड़े हुए पतिपत्नी एकान्त में (स्वयं को) प्रेरित से कर रहे हैं।॥४॥

निद्राग्रस्तविलोचना विगलितैश्छन्नानना कुन्तलै-
र्व्यस्ताशेषविभूषणा निपतती तन्द्रावशाद्भूरिशः।
सौधे सौध उपेत्य पङ्कजमुखी पर्यङ्कतो देहलीम्
कष्टेनैव कपाटपाटनविधिं कर्तुं करं न्यस्यति॥५॥

अन्वय- निद्राग्रस्तविलोचना विगलितैः कुन्तलैः छन्नानना व्यस्ताशेषविभूषणा तन्द्रावशात् भूरिशः निपतती पङ्कजमुखी पर्यङ्कतः देहलीम् उपेत्य सौधे सौधे कपाटपाटनविधिं कर्तुं कष्टेन एव करं न्यस्यति॥५॥

अनुवाद-निद्राग्रस्त नेत्रों वाली, बिखरे हुए केशों से घिरे हुए मुख वाली, शिथिल समग्र आभूषणों वाली, आलस्य के कारण बार बार गिरती हुई कमलनयनी शय्या से डेहरी पर आकर हवेली हवेली में किवाड़ को खोलने का उद्यम करने के लिए कष्ट के साथ ही हाथ रख रही है (हाथ को चला रही है)॥५॥

सासूयं युवमिथुनैः समुन्नतास्यैः
कक्रोधं [सक्रोधं] चपलचकोरकैः सहर्षम्।
मुग्धाभिर्व्यथितदृगन्तपातमुच्चैः
प्रौढाभिः सपदि विभाव्यते विवस्वान्॥६॥

अन्वय- सक्रोधम् सासूयम् समुन्नतास्यैः युवमिथुनैः चपलचकोरकैः सहर्षम् मुग्धाभिः प्रौढाभिः व्यथितदृगन्तपातम् विवस्वान् उच्चैः सपदि विभाव्यते॥६॥

अनुवाद-क्रोध के साथ असूया के साथ ऊपर उठाये गये मुखों वाले युवक युवतियों के द्वारा (तथा) हर्ष के साथ चंचल चकोरों के द्वारा मुग्ध प्रौढाओं (नायिकाओं) के द्वारा व्यथित नेत्रावलोकन के साथ ऊपर से सहसा सूर्य विभावित किया जा रहा है॥६॥

आबद्धा इव देवबालककुलै रक्तोत्पलैः कौतुका-
दाकीर्णा इव नाकनायकपुरीनारीगणैः कुङ्कुमैः।
आच्छन्ना इव नव्यपल्लवशतैरिन्द्रेभशुण्डोत्थितै-
र्मन्दारस्य दिवाकरस्य किरणास्तेऽमी समुन्मीलिताः॥७॥

अन्वय- कौतुकात् देवबालककुलैः रक्तोत्पलैः आबद्धाः इव नाकनायक- पुरीनारीगणैः कुङ्कुमैः आकीर्णाः इव इन्द्रेभशुण्डोत्थितैः नवपल्लवशतैः आच्छन्नाः इव मन्दारस्य ते दिवाकरस्य अमी किरणाः समुन्मीलिताः॥७॥

अनुवाद-कौतूहलवशात् देवबालवृन्द के द्वारा मानो लाल कमलों से आविद्ध, स्वर्गाधिपति की पुरी की नारियों के द्वारा मानों कुंकुमों से चारों ओर बिखेरी हुई, इन्द्र के हाथी

के सूँड़ से उठे हुए नवीन सैकड़ों पल्लवों से मानो घिरी हुई मन्दारसदृश तुझ सूर्य की ये किरणें उन्मीलित हो गयी हैं॥७॥

पद्मबन्धुरुदगादयं दलद्दाडिमीकुसुमजित्वरद्युतेः।
लिप्तदेह इव देवमण्डलीपूजनप्रहितरक्तचन्दनैः॥८॥

अन्वय- अयं पद्मबन्धुः दलद्दाडिमीकुसुमजित्वरद्युतेः देवमण्डलीपूजनप्रहितरक्तचन्दनैः लिप्तःइव उदगात्॥८॥

अनुवाद-यह कमल का मित्र दलित होते हुए अनार के फूल की कान्ति को जीत लेने वाली कान्ति से देवताओं की मण्डली के पूजन हेतु लाये गये रक्तिम (लालवर्ण के) चन्दनो से लिप्त होता हुआ सा उदित हो गया॥८॥

अथ मध्याह्नवर्णनम्

भूपृष्ठं तप्तलोहैरिव रचितमहाकुट्टिमं दिग्विभागा-
ज्वालाजालावलीढा इव गगनतलं मुर्मुरासारकीर्णम्।
हा कष्टं शुक्लकण्ठास्तरुषु खगगणा नीरवा निर्निविष्टाः
सीदन्ति व्योममध्यस्पृशितरणिरथे निष्क्रियं विश्वमेतत्॥९॥

अन्वय- भूपृष्ठम् तप्तलौहैः रचितमहाकुट्टिमम् इव। दिग् विभागाः ज्वालाजालावलीढाः इव। गगनतलम् मुर्मरासारकीर्णम्। हा कष्टम्! तरुषु नीरवाः निर्निविष्टाः शुक्लकण्ठाः खगगणाः सीदन्ति। तरणिरथे व्योममध्यस्पृशि विश्वम् एतत् निष्क्रियम्॥९॥

मध्याह्नवर्णन

अनुवाद-भूपृष्ठ मानो तप्त लोहों के द्वारा निर्मित फर्श है। दिशाएँ (दिशाविभाग) मानो अग्निसमूह में विलीन हैं। आकाशतल तुषाग्नि के विस्तार से भर गया है। अरे बड़ा कष्ट है कि पेड़ों पर शब्दहीन बैठाये गये श्वेत कण्ठ खगगण दुःखी हो रहे हैं। सूर्य के रथ के आकाश के मध्य भाग का स्पर्श करने पर यह सम्पूर्ण विश्व निष्क्रिय हो गया है॥९॥

अपराह्नवर्णनम्

उन्मुक्ता मन्दुरातः सलिलमभिहठाद् वाजिनो वाजिपालैः
निष्क्रान्ताः शीकराशीकलिततनुनृपाः सन्ति धारागृहेभ्यः।
आलीहस्तोपनीतव्यजनमृदुमरुद्वीज्यमाना वितर्दि-
द्वारं प्राप्ता मृगाक्ष्यो भवनतरुलतालोकनं संवहन्ति॥१०॥

अन्वय- वाजिपालैः हठात् मन्दुरातः अभिसलिलम् वाजिनः उन्मुक्ताः। धारागृहेभ्यः शीकराशीकलिततनुनृपाः निष्क्रान्ताः सन्ति। वितर्दिद्वारं प्राप्ताः आलीहस्तोपनीतव्यजनमृदुमरुद्वीज्यमानाः मृगाक्ष्यः भवनतरुलतालोकनं संवहन्ति॥१०॥

अपराह्णवर्णन

अनुवाद-अश्वपालकों के द्वारा हठपूर्वक अश्वशालाओं से जल स्थानों तक घोड छोड़ दिये गये हैं। स्नानागारों से जलकणों से भरे हुए (भीगे हुए) शरीर वाले राजा लोग निकल आये हैं। बरामदे के दरवाजे पर पहुँची हुई सखियों के हाथो में लिए गये पंखों की मृदुल हवा से डुलायी जाती हुई (युक्त की जाती हुई) मृगनयनियाँ भवन के समीप में विद्यमान वृक्षों एव लताओं के अवलोकन में व्यस्त हैं।

आबालोदरमाविशन्ति परितः कल्यास्तरुभ्यो मिथः
कूजन्तोऽवतरन्ति पक्षिनिवहा उद्यानवाटीतटे।
मालाकारकुटुम्बिनी नृपगृहारामे निकुञ्जावली-
संसेकाय समागता सचकितं राजस्त्रिया वीक्ष्यते॥११॥

अन्वय- कल्याःपक्षिनिवहाः कूजन्तः तरुभ्यः उद्यानवाटीतटे अवतरन्ति। मिथः परितः आबालोदरम् आविशन्ति। नृपगृहारामे निकुञ्जावलीसंसेकाय समागता मालाकारकुटुम्बिनी राजस्त्रिया सचकितं वीक्ष्यते॥११॥

अनुवाद-स्वस्थ पक्षियों का समूह कूजन करता हुआ वृक्षों से उद्यान के आहाते के किनारे उतर रहा है। चुपचाप एक तरफ से थाल्हे के अन्दर जाकर बैठ रहा है। राजगृहोपवन में कुञ्ज की वृक्षपङ्क्ति को सींचने के लिए आयी हुई माली की पत्नी राजरानी के द्वारा अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखी जा रही है॥११॥

अथ सन्ध्यावर्णनम्

क्वापि स्निग्धपलाशपुष्पपटलाच्छन्नाकृतिः क्वापि च
स्फूर्जत्पद्मपलाशपाटलपटुज्योतिश्छटाभिश्चितम्।
क्वापीदं वियदिन्द्रनीलशकलाकारं क्वचिन्मूषको-
न्मीलल्लोमकलापकोमलतरं सायं बभूव क्षणम्॥१२॥

अन्वय- क्वापि स्निग्धपलाशपुष्पपटलाच्छन्नाकृतिः च क्वापि स्फूर्जत्पद्मपलाश-पाटलपटुज्योतिः छटाभिः चितम्। क्वापि इदम् वियन्द्रिनीलश- कलाकारम् क्वचित् मूषकोन्मीलल्लोमकलापकोमलतरं सायं क्षणं बभूव॥१२॥

सन्ध्यावर्णन

अनुवाद-कहीं चिकने ढाँक के फूल के समूह से घिरी आकृति और कहीं उभरते हुए (चमकते हुए) कमल एवं ढाँक की रक्त पीत वर्ण की दिव्य दीप्ति (कान्ति) छटाओं के द्वारा चुन ली गयी है (आत्मसात् कर ली गयी है)। कहीं तो यह आकाशव्यापी इन्द्रनील पर्वत के खण्ड के आकार का (तथा) कहीं चूहे के उन्मीलित होते हुए लोमकलाप की तरह कोमल तर सायंकाल क्षण भर में हो गया॥१२॥

आशानां तिमिरावगुण्ठनमभून्मध्ये धराकाशयो-
र्न ज्योतिर्न तमोऽपि धूममभवत्सर्वं नभोमण्डलम्।
सारङ्गा वनवीथिकान्तरगता रोमन्थमारेभिरे
शार्दूला गिरिगह्वराद्गलगलद्जिह्वादलाः उत्थिताः॥१३॥

अन्वय-धराकाशयोर्मध्ये आशानां तिमिरावगुण्ठनम् अभूत्। ज्योतिः न, तमः अपि न। सर्वं नभोमण्डलम् धूमम् अभवत्। वनवीथिकान्तरगताः सारङ्गाः रोमन्थम् आरेभिरे। गलगलद्जिह्वादलाः शार्दूलाः गिरिगह्वरात् उत्थिताः॥१३॥

अनुवाद-धरा एवं आकाश के बीच में दिशाओं का अन्धकार रूपी घूँघट (व्याप्त) हो गया है अर्थात् दिशाओं ने अन्धकार रूपी घूँघट को धारण कर लिया है। प्रकाश नहीं है अन्धकार भी नहीं है। सारा आकाशमण्डल धुँआँ हो गया है। वनवीथियों के अन्दर गये हुए हिरणों ने जुगाली करना आरम्भ कर दिया है। गले तक निकलते हुए जिह्वाभाग वाले सिंह पहाड़ों की गुफाओं से उठ गये हैं॥१३॥

अथान्धकारवर्णनम्

कस्मिंश्चित्कज्जलाब्धौ पतति किमु जगत्किं कुतश्चित्समीरै-
रागच्छद्‌भिस्तमालद्रुमनिखिलवनैरावृतं विश्वमेतत्।
किं वा काण्डप्रकोपाद् विधिविहितजगद्ग्रासनोद्‌भासमाना
सम्प्राप्ता कापि कृत्या घनतिमिरसमुन्मीलनं किं नु लोके॥१४॥

अन्वय-किमु जगत् कस्मिंश्चित् कज्जलाब्धौ पतति? कुतश्चिद् आगच्छद्‌भिः समीरैः तमालद्रुमनिखिलवनैः एतद् विश्वम् आवृतम्। वा किं काण्डप्रकोपात् विधिविहितजगद्ग्रासनोद्‌भासमाना कापि कृत्या समागता? लोके किं नु घनतिमिरसमुन्मीलनम्?॥१४॥

अन्धकारवर्णन

अनुवाद-क्या संसार किसी कज्जल के समुद्र में गिर रहा है? कहीं आती हुई हवाओं से समग्र ताल वृक्षों के वनों से यह विश्व व्याप्त हो गया है? या क्या काण्डप्रकोप से ब्रह्मा द्वारा निर्धारित संसार के भोजन के लिए (भक्षणार्थ) उद्भासित होती हुई कोई कृत्या (राक्षसी) आ गयी है? क्या निश्चित रूप से संसार में सघन अन्धकार का समुन्मीलन हो रहा है? ॥१४॥

प्रेतानामेकबन्धुर्घनगहनमयाध्वागतानां जनानां
कालः पाटच्चराणामतिसुकृतफलं बन्धनं नागरीणाम्।
ग्रामीणानां वधूनां निधुवनभवनं गूढगम्भीरगेहान्-
निष्क्रान्तौ कोऽपि हेतुर्नृपतिमृगदृशामन्धकारो बभूव॥१५॥

अन्वय- प्रेतानाम् एकबन्धुः, घनगहनमयाध्वागतानां जनानां कालः, पाटच्चराणाम् अतिसुकृतफलम्, नागरीणाम् बन्धनम् ग्रामीणानां वधूनाम् निधुवनभवनम् अन्धकारः नृपतिमृगदृशाम् गूढगम्भीरगेहात् निष्क्रान्तौ कोऽपि हेतुः बभूव॥१५॥

अनुवाद-प्रेतों का एकमात्र बन्धु, घन की गहनता से युक्त मार्ग में आये हुए लोगों का काल, पाटच्चरों (पामरों) का अत्यन्त पुण्य जन्य फल, नगर की स्त्रियों का बन्धन, ग्रामीणनारियों का केलिभवन (यह) अन्धकार राजाओं की मृगनयनी नायिकाओं के गुप्तरूप से गम्भीरता के साथ घर से निकलने में कोई कारण बना॥१५॥

आयातेऽपि प्रणयिनि विधौ सानुरागा पुरस्तात्
प्राची बाला किरति कुसुमान्युज्ज्वलान्येव सद्यः।
उन्मीलन्ती किरणलहरी कापि तेषां विधत्ते
शोभामुद्यत्पवनमिलनादुद्गतानां समन्तात्॥१६॥

अन्वय- प्रणयिनि विधौ आयातेऽपि सानुरागा प्राची बाला पुरस्तात् सद्यः उज्ज्वलानि कुसुमानि एव किरति। उन्मीलन्ती कापि किरणलहरी उद्यत्पवनमिलनात् उद्गतानां तेषां शोभां समन्तात् विधते॥१६॥

अनुवाद-प्रेमी चन्द्रमा के आने पर भी अनुराग से भरी हुई पूरब दिशारूपी नायिका सामने से सद्यः उज्ज्वल फूलों को ही बिखेर रही है। इसकी (चन्द्रमा की) उन्मीलित होती हुई कोई किरणलहरी उठती हुई हवा के मिलने से ऊपर की ओर उभरते हुए उन (फूलों) की शोभा का विधान कर रही है॥१६॥

आशाकासारहंसः किमु गगनपयोराशिशङ्खः समुत्थः
किं वा कामावनीयासनममलमिदं किं रती [रतेः] पादपीठम्।
किं वा शृङ्गारभारामृतकलश उपेतोऽयमाकाशलक्ष्म्याः
सन्ध्यासिन्दूरपूरस्फटिकमयमहासम्पुटः किं नु चन्द्रः॥१७॥

अन्वय- किम् अयम् चन्द्रः नु आशाकासारहंसः? किमु समुत्थः गगनपयो- राशिशङ्खः? वा किम् इदम् अमलं कामावनीयासनम्? किम् रतेः पादपीठम्? वा किम् आकाशलक्ष्म्याः शृङ्गारामृतकलशः उपेतः? किं सन्ध्यासिन्दूरपूरस्फटिकमयमहासम्पुटः?॥१७॥

अनुवाद-क्या यह चन्द्र सचमुच आशारूपी सरोवर का हंस है? क्या उभरा हुआ आकाश (रूपी) समुद्र का शंख है? या क्या यह निर्मल कामावनीयासन (कामनाओं की जमीन से सम्बद्ध आसन) है? क्या रति (काम की पत्नी) का पादपीठ है? अथवा क्या आकाशलक्ष्मी के शृङ्गार का अमृत कुम्भ है? क्या सन्ध्या के सिन्दूर से भरा हुआ स्फटिक (मणि) से युक्त महान् सञ्चय (ढेर) है॥१७॥

तारावर्णनम्

उद्धूता या गगनजलधौ ध्वान्तधारातरङ्ग-
व्यासङ्गेन स्फुटतररुचिश्चारुमुक्तावलीयम्।
कोऽपि स्फीतो मणिरपि धियं सैव तारावलीनां
धत्ते चित्ते स च कुमुदिनीवल्लभस्यापि बुद्धिम्॥१८॥

अन्वय- ध्वान्तधारातरङ्गव्यासङ्गेन स्फुटतररुचिः चारु इयं या मुक्तावली गगनजलधौ उद्धूता, कोऽपि स्फीतः मणिः। च सा एव तारावलीनाम् धियम् अपि कुमुदिनीवल्लभस्य बुद्धिम् अपि चित्ते धत्ते॥१८॥

तारावर्णन

अनुवाद-अन्धकारप्रवाह की तरङ्ग के असान्निध्य से स्पष्टतर कान्ति वाली सुन्दर यह जो मोती की माला आकाशसमुद्र में (आकाश रूपी सागर में) उतार कर फेंक दी गयी है। वह कोई स्वच्छ मणि है, और वही तारावलियों की बुद्धि को, कुमुदिनीवल्लभ (चन्द्रमा) की बुद्धि को भी हृदय में धारण करती है॥१८॥

अथ निशीथवर्णनम्

द्वारि द्वारि कपाटमुद्रणविधिः शून्या च रथ्याखिला
पर्यन्ता नगरस्य मायिकजनैः कोलाहलैः पूरिताः।

मन्थोन्मुक्तसमुद्वत्पुरमभून्निःस्पदमुन्मत्तयो-
र्दम्पत्योरथ किङ्किणीकलरवः संसारसारायते॥१९॥

अन्वय- द्वारि द्वारि कपाटमुद्रणविधिः। च अखिला रथ्या शून्या। नगरस्य पर्यन्ताः मायिकजनैः कोलाहलैः पूरिताः। पुरम् मन्थोन्मुक्तसमुद्रवत् निःस्पन्दम्। अथ उन्मत्तयोः दम्पत्योः किङ्किणीकलरवः संसारसारायते॥१९॥

निशीथवर्णन

अनुवाद-द्वार द्वार पर किवाड़ो को बन्द करने की व्यवस्था बनी है। और सारा राजमार्ग शून्य है। नगर के सारे आन्तरिक एवं बाहर के भाग कोलाहल से भरे हुए हैं। पुर मन्थन से उन्मुक्त समुद्र की भाँति निःस्पन्द है। ऐसी स्थिति में उन्मत्त पतिपत्नी की नूपुरध्वनि संसार के सार (सर्वस्व) की भाँति आचरण कर रही है (संसार का सर्वस्व प्रतीत हो रही है)॥१९॥

निद्राग्रासवशादितस्ततत इमे दीना जना निःयतं
सूत्सङ्गेषु निधाय जानुयुगलग्रस्तं स्वकन्थादिकम्।
रथ्यायामुपरि प्ररूढवलभीविश्रामकामा इमा
रामाः कामपि कामकौतुककलामामन्त्रयन्ति प्रिये॥२०॥

अन्वय- प्रिये! इतस्ततः निद्राग्रासवशात् इमे जनाः निःयतम् दीनाः। सूत्सङ्गेषु जानुयुगलग्रस्तं स्वकन्थादिकम् निधाय उपरि रथ्यायां प्ररूढवलभी-विश्रामकामाः इमाः रामाःकाम् अपि कामकौतुककलाम् आमन्त्र- यन्ति॥२०॥

अनुवाद-हे प्रियतमे! इधर उधर निद्रा के प्रभाव के कारण ये लोग निश्चित रूप से दीन प्रतीत हो रहे हैं। सुन्दर गोदो में दोनो घुटनों तक लटकी हुई, अपनी कथड़ी आदि को लेकर राजमार्ग पर लकड़ी के छप्परों में विश्राम करने की इच्छा रखने वाली ये सुन्दरियाँ (गणिकाएँ), किसी कामकौतूहलकला (रतिसुखविषयिणी कुशलता) को आमंत्रित कर रही हैं॥२०॥

अथ शिशिरवसन्तसन्धिवर्णनम्

सोढं शीतमभूद्दिवाकररुचिः श्लाघ्यैव पद्माकराः
शून्या एव सरोरुहैः पुटकिनीसंवर्तिकानां क्वचित्।
आरम्भो वनवीथिकानवदलोद्गारायमानाः पिका
अभ्यस्यन्ति कुहूरवस्मृतिममी प्राप्ता इवोन्मत्तताम्॥२१॥

अन्वय- शीतम् सोढम् अभूत्। दिवाकररुचिः श्लाघ्या एव। पद्माकराः सरोरुहैः शून्याः एव। क्वचित् पुटकिनीसंवर्तिकानाम् आरम्भः। वनवीथिकान-वदलोद्गारायमानाः कुहूरवस्मृतिं प्राप्ताः अमी पिकाः उन्मत्तताम् अभ्यस्यन्ति इव॥२१॥

शिशिरवसन्तसन्धिवर्णन

अनुवाद- शीत सहने योग्य हो गयी। सूर्यकान्ति श्लाघनीय ही है। पद्माकर कमलों से शून्य ही हैं। कमलों के नये पत्तों का कहीं आरम्भ हो गया है। वन की वीथिकाएँ नये पत्तों के उभार से युक्त हैं। कुहूरव की स्मृति को प्राप्त ये पिक उन्मत्तता का मानों अभ्यास कर रहे हैं॥२१॥

न कुन्दे वैमुख्यं वहति मधुपाली स्पृहयति
प्रसन्ना पुन्नागस्तवकमरन्दाय निभृतम्।
न गम्भीरं गेहं परिहरति वाला निधुवनं
प्रसादायोद्याने मृगयति समृद्धिं स्मृतिभुवः॥२२॥

अन्वय- मधुपाली कुन्दे वैमुख्यं न वहति। प्रसन्ना पुन्नागस्तवकमकरन्दाय निभृतं स्पृहयति। बाला गम्भीरं गेहं निधुवनं न परिहरति। उद्याने प्रसादाय स्मृतिभुवः समृद्धिं मृगयति॥२२॥

अनुवाद- भौंरों की श्रेणी कुन्द (पुष्प) के प्रति विमुखता नहीं धारण कर रही है, (अपि तु) प्रसन्न होकर पुन्नागपुष्पगुच्छ के पराग के लिए एकान्तभाव से स्पृहा कर रही है। नायिका गम्भीरगृह केलिगृह को नहीं छोड़ रही है। उद्यान में प्रसन्नता के लिए स्मृतिलोक की समृद्धि को ढूँढ़ रही है॥२२॥

अथ वसन्तवर्णनम्

आबद्धाः पद्मरागैरिव विविधतरुश्रेणयस्ताम्रपत्राः
कुत्रापि प्रौढपुष्पोत्करमधुरमधुस्त्रोतसां नो विरामः।
भ्राम्यद्भृङ्गावलीनां रणितमपि पिकीकाकलीकामिनीनां
काञ्चीझङ्कारभारो जनयति मदनाद्वैतसाम्राज्यलक्ष्मीम्॥२३॥

अन्वय- ताम्रपत्राःविविधतरुश्रेणयः पद्मरागैः आवद्धाः इव। प्रौढपुष्पोत्करमधुर-मधुस्त्रोतसां कुत्रापि विरामः न। भ्राम्यद्भृङ्गावलीनां रणितम् पिकीकाकली-कामिनीनां काञ्चीझङ्कारभारः मदनाद्वैतसाम्राज्यलक्ष्मीम् जनयति॥२३॥

वसन्तवर्णन

अनुवाद-लाल पत्तों वाली विविध पेड़ों की शाखाएँ कमल के पराग से मानों आबद्ध हैं। विकसितपुष्पसमूह के मधुर मधु प्रवाहों की कहीं भी रुकावट नहीं है। घूमते हुए भौरों के समूह की ध्वनि, कोयलों की काकली (तथा) कामिनियों की करधनी के झङ्कार का भार, काम की अद्वैत साम्राज्यलक्ष्मी को उत्पन्न कर रहा है॥२३॥

निष्क्रान्तो गन्धसाराचलकुहरतलाच्चालबालाकपोल-
व्यालोलत्केशपाशाकुलवकुलदलान्दोलहिन्दोललीलः।
पम्पा कल्लोलकम्पाकुलकुसुमलतालिङ्गनायासखिन्नो
मन्दं मन्दं समीरः स्पृशति रतिरसक्लान्तबालाकपोलम्॥२४॥

अन्वय- चालबालाकपोलव्यालोलत्केशपाशाकुलवकुलदलान्दोलहिन्दोललीलः, पम्पाकल्लोलकम्पाकुलकुसुमलतालिङ्गनायासखिन्नः, गन्धसाराचलकुहर तलात् निष्क्रान्तः खिन्नः समीरः मन्दं मन्दं रतिरसक्लान्तबालाकपोलम् स्पृशति॥२४॥

अनुवाद-चंचल नायिका के कपोलस्थल पर लटकते हुए केशपाश से आकुल मौलसिरी के फूल की पंखुड़ी के झूलने से झूले की लीला को धारण करता हुआ (झूले की लीला वाला), पम्पासरोवर में कल्लोल करने के कम्पन से आकुल कुसुमलता के आलिंगनविषयकप्रयत्न से खिन्न, गन्धसारपर्वत की गुफा के अन्दर से निकला हुआ पवन धीरे धीरे रतिराग (रतिक्रीड़ा, रतिरसवाली क्रीड़ा) से थकी हुई नायिका के कपोल को छू रहा है॥२४॥

मुग्धामातङ्कयन्ती रतिरमणकलासङ्कुलां दर्शयन्ती
मध्यामुन्मादवादायितवचनचयां कल्पयन्ती प्रगल्भा।
धीरामान्दोलयन्ती कृतविविधकलाचेष्टितां चाप्यधीरां
कुर्वाणा काकलीयं प्रसरति परितः कोकिलानां वनेषु॥२५॥

अन्वय- मुग्धाम् आतङ्कयन्ती रतिरमणकलासङ्कुलां दर्शयन्ती उन्मादवादायितवचनचयाम् मध्याम् कल्पयन्ती, धीराम् आन्दोलयन्ती, कृतविविधकलाचेष्टिताम् अपि अधीराम् कुर्वाणा इयं कोकिलानां प्रगल्भा काकली वनेषु परितः प्रसरति॥२५॥

अनुवाद-मुग्धा को आतङ्कित करती हुई, कामक्रीड़ा के कौशल से भरी हुई (नायिका) को दिखाती हुई, उन्मादवाद से भरे हुए वचनसमूह वाली, मध्या (नायिका) की कल्पना करती हुई, धैर्यधारिणी को आन्दोलित करती हुई, विविध कलाओं एवं चेष्टाओं को समझकर करने वाली (नायिका) को भी अधीर बनाती हुई यह

कोकिलाओ की प्रगल्भ काकली वनों में चारों तरफ प्रसरित हो रही है॥२५॥

वसन्तग्रीष्मसन्धिवर्णनम्

क्रीडाकुञ्जे शिथिलमतयो वापिकां चिन्तयन्त्यो
बालाः सन्ति प्रविशति शनैरम्बुकासारकोषम्।
कण्ठे सेयं परभृतकुले काकली किन्तु तादृङ्
माधुर्यं न द्युमणिकिरणाः क्रूररूपा इवासन्॥२६॥

अन्वय- क्रीडाकुञ्जे वापिकां चिन्तयन्त्यः शिथिलमतयः बालाः सन्ति। अम्बु शनैः शनैः कासारकोषं प्रविशति। परभृतकुले सा इयं काकली, किन्तु कण्ठे तादृग् माधुर्यम् न। द्युमणिकिरणाः क्रूररूपाः आसन् इव॥२६॥

वसन्तग्रीष्मसन्धिवर्णन

अनुवाद-कामक्रीड़ोपवन में बावली की चिन्ता करती हुई श्रान्तबुद्धिवाली नायिकाएँ (विद्यमान)हैं। जल धीरे धीरे तालाब के अन्दर प्रवेश कर रहा है। कोयलों के समूह में वह यह (इस प्रकार की) काकली (तो) थी किन्तु कण्ठ में उस प्रकार का माधुर्य नहीं था। सूर्य की किरणें मानो कठोर हो गयीं थीं॥२६॥

ग्रीष्मवर्णनम्

उद्गच्छन्नेव भानुः कलयति किरणैर्विश्वमापाकतुल्यं
सङ्कोचं पल्लवानां वहति तरुगणः सैकतालोकनेन।
नाग्रे पादोऽध्वगानां भवति मृगगणाश्चण्डदीप्तिप्रचण्ड-
ज्योतिर्जाले जलाशातरलितमनसो हन्त धावन्ति भूयः॥२७॥

अन्वय- भानुः उद्गच्छन्नेव विश्वम् आपाकतुल्यं कलयति। सैकतालोकनेन तरुगणः पल्लवानाम् सङ्कोचम् वहति। अध्वगानां पादः अग्रे न भवति। हन्त! जलाशातरलितमनसः मृगगणाः चण्डदीप्तिप्रचण्डज्योतिर्जाले भूयः धावन्ति॥२७॥

ग्रीष्मवर्णन

अनुवाद-सूर्य उदित होता हुआ ही विश्व को चारों तरफ से उबला हुआ सा बना रहा है। रेतीली भूमि का अवलोकन करने से (रेतीली भूमि के हो जाने से) वृक्ष समूह पल्लवों के संकोच (कमी) को धारण कर रहा हैं। पथ पर चलने वालों का पाँव आगे नहीं बढ़ रहा है। हाय! जल की आशा से तरलित मन वाले मृगगण तीव्रदीप्ति वाले सूर्य के प्रचण्ड किरणजाल में बार बार भाग रहे हैं॥२७॥

औशीराच्छादनादेर्द्रवितमलयजालेपनादेरुदञ्चत्-
कर्पूरक्षोदशीतीकृतसलिलकणासेचनादेर्गृहेषु।
उद्योगो नो नृपाणां विरमति तरणिज्योतिषां वा न ताप-
व्यापारो याति दूरं किमथपरमहो ब्रूमहे ग्रीष्मशोभाम्॥२८॥

अन्वय- औशीराच्छादनादेः द्रवितमलयजालेपनादेः उदञ्चत् कर्पूरक्षोदशीतीकृत-सलिलकणासेचनादेः नृपाणां गृहेषु उद्योगः न विरमति। वा तरणि- ज्योतिषां तापव्यापारः दूरम् न याति। अहो! अथ परम्, ग्रीष्मशोभाम् किं ब्रूमहे॥२८॥

अनुवाद-खश के अवलेह के आच्छादन से द्रवीभूत चन्दन के आलेपनादि से, ऊपरी ओर पीते जाते हुए कर्पूरखण्ड से शीतीकृत जलकणों के सेचन आदि से राजाओं के घर में उद्योग नहीं रुक रहा है। या सूर्य की किरणों का तापव्यापार दूर नहीं हो रहा है। अरे! इससे अधिक ग्रीष्म की शोभा को क्या कहूँ॥२८॥

कासाराः शोषमापुस्तटविटपितटासीनमातङ्गशुण्डा-
दण्डाकृष्टारविन्दा विविधवनघनीभूतनानाकुरङ्गाः।
क्वापि व्यालं विशाखावलिवलिततरुश्रेणिसच्छन्नतीर-
प्राप्तश्रान्ताध्वगाली कलितनवदलन्याससलक्ष्मीं वहन्ति॥२९॥

अन्वय- कासाराः शोषम् आपुः। क्वापि, तटविटपितटासीनमातङ्गशुण्डा-दण्डाकृष्टारविन्दाः, विविधवनघनीभूतनानाकुरङ्गाः, व्यालम्, विशाखा-वलिवलितरुश्रेणिसच्छन्नतीरप्राप्तश्रान्ताध्वगाली, कलितनवदलन्या- सलक्ष्मीम् वहन्ति॥२९॥

अनुवाद-तालाबों ने शुष्कता को प्राप्त कर लिया (अर्थात् तालाब सूख गये)। कहीं, तट के वृक्षों के किनारे बैठे हुए हाथियों के शुण्डदण्ड से खींचे जाते हुए कमल (हैं), विविधवनों से इकट्ठे अनेक प्रकार के मृग(हैं) व्याल (हैं)। विशेष प्रकार की शाखावली से युक्त वृक्ष समूह से आच्छन्न तट को प्राप्त थका हुआ पथिकों का समूह (है)। (ये सब) एकत्रित नवीन पत्तों (नवपुष्प पंखुडियों) की न्याससमृद्धि को ढो रहे हैं (अनुभूत कर रहे हैं)॥२९॥

ग्रीष्मग्रीष्मापराह्णक्षणममलमिदं कामपि श्रीसमृद्धिं
धत्ते वापीविनिर्यद्युवयुवतिगलत्केशपाशाम्बुविन्दुम्।
कासारोत्तीर्णदन्तिप्रकरकरपतत्पुण्डरीकप्रलोल-
भृङ्गालीलीढकुञ्जोदरकुसुमरजोजालसङ्कीर्णमार्गम्॥३०॥

अन्वय- वापीविनिर्यद्युवयुवतिगलत्केशपाशाम्बुविन्दुम् कासारोत्तीर्णदन्तिप्रकर-करपतत्पुण्डरीकप्रलोलभृङ्गालीलीढकुञ्जोदरकुसुमरजोजालसङ्कीर्णमार्गम् अमलम् इदं ग्रीष्मग्रीष्मापराह्णक्षणम् काम् अपि श्रीसमृद्धिं धत्ते॥३०॥

अनुवाद-तालाब से निकलते हुए युवाओं एवं युवतियों के चूते हुए केशपाश के जलविन्दु वाला, तालाब में तैरते हुए हाथियों के समूह की सूँड़ से गिरते हुए कमलों के कारण चंचल भौरों द्वारा चखे गये कुञ्ज के अन्दर विद्यमान पुष्पराग से समूह से बिखरे हुए मार्ग वाला निर्मल यह तीव्र ग्रीष्म ऋतु का अपराह्णक्षण किसी शोभा की समृद्धि को धारण कर रहा है॥३०॥

काश्चिन्मज्जन्ति वेल्लद्दलनदलमिलत्केशपाशास्तु काश्चित्
सर्वाङ्गस्यूतवस्त्रा विनमितवदनास्तीरमीयुः कथञ्चित्।
काश्चिन्मञ्जीरकाञ्चीरणितमणिमयीं वापिकामातताना:
सम्प्राप्ता नीरतीरं वहति ऋतुरयं काममपि श्रीसमृद्धिम्॥३१॥

अन्वय- काश्चित् तु वेल्लद्दलनदलमिलत्केशपाशाः मज्जन्ति। काश्चित् सर्वाङ्गस्यूतवस्त्राः विनमितवदनाः कथञ्चित् तीरम् ईयुः। काश्चित् मञ्जीरकाञ्चीरणितमणिमयीं वापिकाम् आतताना: नीरतीरं सम्प्राप्ताः। अयं ऋतुः काम् अपि श्रीसमृद्धिम् वहति॥३१॥

अनुवाद-कुछ तो हिलती जुलती हुई खण्ड खण्ड हो गयी पुष्पपंखुड़ियों से मिलते हुए (जुड़ते हुए) केशपाशों वाली (नायिकाएँ) नहा रही हैं। कुछ समस्त अङ्गों में विंधे हुए वस्त्रों वाली विशेष रूप से झुकाये हुए मुखों वाली (स्त्रियाँ) किसी प्रकार से तट पर आयी हैं। कुछ नूपुर एवं मेखला की बजती हुई मणि को धारण करने वाली (स्त्रियाँ) पोखरी को सम्यक् रूप से घेरे हुए (पोखरी के चारों तरफ पसरी हुई) जल के तट तक पहुँच गयी हैं॥३१॥

अथ ग्रीष्मवर्षासन्धिवर्णनम्

सीरोत्खातनिदाघदग्धवसुधाव्यक्तीभवद्वीरणा-
रण्यान्तैर्बहुसौरभैः सुरभितान् विन्दूनमून् वारिदाः।
मुञ्चन्त्युच्छलरञ्जनद्रवमयप्रासादशोभावहा-
स्तानेतानरविन्दसुन्दरदृशः पश्यन्ति सौधस्थिताः॥३२॥

अन्वय- उच्छलदञ्जनद्रवमयप्रासादशोभावहाः वारिदाः सीरोत्खातनिदाघदग्धवसुधा-व्यक्तीभवद्वीरणारण्यान्तैः बहुसौरभैः सुरभितान् अमून् विन्दून् मुञ्चन्ति। तान् एतान् अरविन्दसुन्दरदृशः पश्यन्ति॥३२॥

ग्रीष्मवर्षासन्धिवर्ण

अनुवाद-उद्भासित होते हुए अञ्जनद्रव से युक्त प्रासाद की शोभा को धारण करने वाले बादल, हल के द्वारा उखाड़ी गयी तथा ग्रीष्म से जलती हुई पृथ्वी पर व्यक्त होते हुए उशीरवन के अन्दर की बहुविध सुगन्धियों से सुगन्धित इन विन्दुओं को छोड़ रहे हैं। उन इन (विन्दुओं) को भवन की छत पर बैठी हुई कमल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली (नायिकाएँ) देख रही हैं॥३२॥

मल्ली म्लानिमवाप मन्दविदलद्डिम्बा कदम्बाटवी
जाता मेघकदम्बडम्बरचमत्कारायमाना दिशः।
पौरस्त्यानिलवेल्लितोल्लयलतालावण्यलक्ष्मीजुषो
भूभागा विदलन्ति कन्दलदलान्यम्भःकणाघाततः॥३३॥

अन्वय-**मल्ली म्लानिम् अवाप। कदम्बाटवी मन्दविदलद्डिम्बा, दिशः मेघकदम्बडम्बरचमत्कारायमानाः जाताः। पौरस्त्यानिलवेल्लितोल्लयलतालावण्यलक्ष्मीजुषः भूभागाः, कन्दलदलानि अम्भःकणाघाततः विदलन्ति॥३३॥**

अनुवाद-चमेली कुम्हलाहट को प्राप्त हो गयी। कदम्बवाटिका धीरे धीरे कोलाहल से युक्त हो रही है। दिशाएँ मेघसमूह के आडम्बर से चमत्कार मयी हो गयी हैं। पूर्व दिशा से आ रही हवा से उड़ाई गयी ऊपर की ओर उठ रही लता के लावण्य की शोभा से संयुक्त भूभाग (भूप्रदेश) तथा केले के पत्ते जलकणों के आघात से फटे जा रहे हैं॥३३॥

अथ क्रमशः वर्षावर्णनम्

भृङ्गव्यासङ्गभिन्ना सितजलजलदश्रेणिकान्तिःसमन्तात्
केलिव्यालोलबाला कचनिचयचमत्कारचौर्यप्रसक्ता।
वेला वेल्लत्तमाला वलिवलितरुचिः कालिकाकायशोभा-
संवारं संवहन्ती चलति जलमुचां मण्डली गण्डशैलात्॥३४॥

अन्वय-**समन्तात् भृङ्गव्यासङ्गभिन्ना सितजलजलदश्रेणिकान्तिः केलिव्यालोलबालाकचनिचयचमत्कारचौर्यप्रसक्ता, वलिवलितरुचिः वेल्लत्तमाला वेला जलमुचां मण्डली कालिकाकायशोभासंवारं संवहन्ती गण्डशैलात् चलति॥३४॥**

क्रमशः वर्षावर्णन

अनुवाद-चारों तरफ से भौरों के विशेष आसङ्ग से विकसितश्वेतबादलों की कान्ति वाली, कामक्रीड़ा हेतु चञ्चल नायिका के केशसमूह की चमत्कृति को चुराने में

संलग्न, वलि की तरह ललित रुचि वाली, घूमते हुए तमाल वृक्षों की छटा वाली बादलों की मण्डली, कालिका के शरीर की शोभा की भाँति (कालिका की कान्ति के वर्ण की भाँति) आवरण को सम्यक् रूप से धारण करती हुई गण्डशैल से चल रही है॥३४॥

आच्छन्नं दलदिन्द्रनीलशकलश्यामाम्बुदैरम्बरं
किञ्चित्फुल्लकदम्बकाननसमाहूतालिमाला दिशा।
वातान्दोलितदूर्विकादलशिखासंसक्तमुक्तावली
मुग्धाम्भःकणवृन्दसुन्दरतरं जातं धरामण्डलम्॥३५॥

अन्वय- अम्बरम् दलदिन्द्रनीलशकलश्यामाम्बुदैः आच्छन्नम्। दिशा किञ्चित्फुल्ल कदम्बकाननसमाहूता अलिमाला। धरामण्डलम् वातान्दोलित-दूर्विकादलशिखासंसक्तमुक्तावलीमुग्धाम्भःकणवृन्दसुन्दरतरम् जातम्॥३५॥

अनुवाद- आकाश, पिसते हुए इन्द्रनीलखण्ड के समान श्यामल बादलों से घिर गया है। दिशा, कुछ विकसित कदम्बवन के द्वारा सम्यक् आमन्त्रित भ्रमरश्रेणी वाली (हो गयी है)। धरामण्डल पवन के द्वारा आन्दोलित दूर्वादल के अग्र भाग पर सम्यक् रूप से स्थित मोती की माला की तरह सुन्दर जल कणों से सुन्दरतर हो गया है॥३५॥

लोल्लत्तुण्डमुदञ्चदङ्गमखिलालोकोच्छलल्लोचनं
जिह्वाग्रेण नवोलपाङ्कुरमुपादाय भ्रमन्तो मृगाः।
स्निग्धे शाद्वलभूतले क्षणममी प्राप्ता विनोदं परं
धावन्तोऽथ जनागमे मृगमयं व्योमान्तरं कुर्वते॥३६॥

अन्वय- लोल्लत्तुण्डम् उदञ्चदङ्गम् अखिलालोकोच्छलल्लोचनम् जिह्वाग्रेण नवोलपाङ्कुरम् उपादाय भ्रमन्तः अमी मृगाः स्निग्धे शाद्वलभूतले परं विनोदम् प्राप्ताः अथ जनागमे धावन्तः व्योमान्तरं मृगमयम् कुर्वते॥३६॥

अनुवाद- मुहँ को घुमाते हुए, अङ्गों को फैलाते हुए, नेत्रों को सम्पूर्ण प्रकाश में उछालते हुए (चमकाते हुए) जिह्वा के अग्रभाग से नवीन बेल के अङ्कुर को लेकर (ग्रहण कर) घूमते हुए ये मृग चिकनी हरियाली वाली भूमि पर अत्यन्त विनोद को प्राप्त कर फिर लोगों के बीच में दौड़ते हुए आकाश एवं पृथ्वी के मध्य भाग को मृगमय बना रहे हैं॥३६॥

अंशाघातावतंसा भुजयुगविगलत्केशपाशाः सहाया
नासाश्वासावधूताधरतरलवचोभङ्गिमारम्भयन्त्यः।
सर्वाङ्गादोललोलायितवसनसमावेशमम्भोरुहाक्ष्यः
कुर्वन्त्यावासवाटीतटविटपिशिखालम्बिहिन्दोललीलाम्॥३७॥

अन्वय- अंशाघातावंतसाः भुजयुगविगलत्केशपाशाः नासाश्वासावधूताधरतरल-वचोभङ्गिमारम्भयन्त्यः सहासाः सर्वाङ्गादोललोलायितवसनसमावेश-मम्भोरुहाक्ष्यः आवासवाटीतटविटपिशिखालम्बिहिन्दोललीलाम् कुर्वन्ति॥३७॥

अनुवाद-कन्धों के आघात से युक्त कर्णाभूषणों वालीं, दोनों भुजाओं पर लटकते हुए केशसमूह वालीं, नाक की साँस से फड़फड़ाते हुए अधरों के कारण रसार्द्र वाणी की भङ्गिमा का आरम्भ करती हुई हँसती हुई, समस्त अङ्गों के हिलने से चंचल हो रहे वस्त्रों को सँभालती हुईं कमलनयनियाँ (नायिकाएँ) निवासोद्यान के वृक्षों की शाखाओं में लटक रहे झूलों में झूल रही हैं (झूलने की लीला (क्रीड़ा) उत्पन्न कर रही हैं)॥३७॥

दृक्पातो मदनतरङ्गितः समन्ताद्
व्यालोलः कलरवकिङ्किणीकलापः।
उल्लोलस्तनतटचन्दनार्द्रवासो
हिन्दोले हरिणदृशां न को विलासः॥३८॥

अन्वय- दृक्पातः समन्तात् मदनतरङ्गितः। कलरवकिङ्किणीकलापः व्यालोलः। स्तनतटचन्दनार्द्रवासः उल्लोलः। हरिणदृशाम् हिन्दोले कः विलासः न॥३८॥

अनुवाद-नयनोन्मीलन (नेत्रनिक्षेप) हर तरफ से काम से अभिभूत है। कलरव युक्त किङ्किणीकलाप विशेषरूप से चञ्चल है। स्तनतट पर पुते चन्दनद्रव से गीला कपड़ा ऊपर की ओर लहरा रहा है। हरिण की तरह नेत्र वाली नायिकाओं के झूले में कौन सा विलास नहीं है?॥३८॥

उच्छलन्ति मणिहारमण्डलान्युत्पतन्ति कुसुमानि कुन्तलात्।
उद्भ्रमन्ति वलयानि पश्य हिन्दोललोलतनुसुभ्रुवो मुहुः॥३९॥

अन्वय- पश्य, हिन्दोललोलतनुसुभ्रुवः मुहुः मणिहारमण्डलानि उच्छलन्ति। कुन्तलात् कुसुमानि उत्पतन्ति। वलयानि उद्भ्रमन्ति॥३९॥

अनुवाद-देखो, झूले में चंचल शरीर वाली, सुन्दरभौंहों वाली नायिका के (हरिणनयनी के) मणियुक्तहारमण्डल उछल रहे हैं। केशों से फूल उछल रहे हैं। कंगन ऊपर की ओर घूम रहे हैं (लहरा) रहे हैं॥३९॥

वक्रचन्द्रपरिवेषमादधे
कर्णपूरमणिकान्तमण्डलम्।
स्वेदविन्दुपटलोऽपि सुभ्रुवस्
तारकावलिसमाजमादधे॥४०॥

अन्वय- सुभ्रुवः कर्णपूरमणिकान्तिमण्डलम् वक्रचन्द्रपरिवेषम् आदधे। स्वेदविन्दु-पटलोऽपि तारकावलिसमाजम् आदधे॥४०॥

अनुवाद-सुन्दर भौंहों वाली (नायिका) के कर्णाभूषण में विद्यमान मणि का कान्तिमण्डल वक्रचन्द्रमा के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। पसीनों की बूँदों का समूह भी तारकपङ्क्ति के समुदाय को धारण कर लिया है॥४०॥

आगच्छन्मन्दवन्यासलिलपरिगताः स्फीतकेदारदेशाः
शोभन्ते शालिमालादलवलनविधौ पण्डितोऽप्येष वातः।
तेषामुद्देशभागे भ्रमति करतलन्यस्तकुद्दालदण्डः
कुल्यासंरोधमोक्षाकुलहलिकगणो दूरतो दत्तदृष्टः[दृष्टिः]॥४१॥

अन्वय- आगच्छन्मन्दवन्यासलिलपरिगताः स्फीतकेदारदेशाः शोभन्ते। शलिमाला-दलवलनविधौ एषः वातः पण्डितः। करतलन्यस्तकुद्दालदण्डः तेषाम् उद्देशभागे भ्रमति। कुल्यासंरोधमोक्षाकुलहलिकगणः दूरतः दत्तदृष्टिः॥४१॥

अनुवाद-विशेष स्वरूप को प्राप्त हो रहे, मन्द मन्द हवाओं वाले जंगल में, जल से घिरे हुए स्वच्छ केदारदेश (प्रान्त) शोभित हो रहे हैं। चावल (धान) की पंक्ति (समूह) के गुच्छों को मोड़ने की क्रिया में यह हवा नितान्त समर्थ है। हाथ की हथेली (मुठ्ठी) में पकड़ा हुआ यह कुद्दालदण्ड उस (केदार देश) के ऊपरी भूभाग में घूम रहा है। नहर के अवरोध से मुक्त होने के लिए (नालों के अवरोध (रुकावट) से मुक्त होने के लिए) आकुल हलवाहे दूर से (अपनी) नजरें गाड़े हुए हैं॥४१॥

पुलिनमपहरन्ती तीरमापूरयन्ती
तटभुवमतिवीचीवेगतो वेष्टयन्ती।
दिशि विदिशि जनेभ्यो दर्शयन्ती च मीना-
ननुसरति समन्तादाकुलेयं स्त्रवन्ती॥४२॥

अन्वय- इयं आकुला स्त्रवन्ती पुलिनम् अपहरन्ती तीरम् आपूरयन्ती अतिवीची-वेगतः तटभुवम् वेष्टयन्ती दिशि विदिशि जनेभ्यः 'मीनान् दर्शयन्ती समन्तात् अनुसरति॥४२॥

अनुवाद-यह आकुल नदी तट को चुराती हुई, तीर को (दोनों तरफ से) भरती हुई, अत्यन्त ऊँची लहरों के प्रवाह से तट की भूमि को आवेष्टित करती हुई, दिशाओं एवं प्रतिदिशाओं में लोगों को मछलियाँ दिखाती हुई चारों ओर से वह रही है (अनुसरण कर रही है)॥४२॥

तीरे स्त्रोतस्विनीनामनुपलमधुना शाखिनो यान्त्यधस्तात्
कच्छारण्यं नगण्यं क्वचिदपि हरिणाः सम्प्लवन्त्यम्बुपूरे।
ग्रामीणा मीनलोभादित उत उदिता वेगवन्तो वदन्तो
भूयो भूयः पतङ्गा ग्रथितमपि पदं कण्टकैर्नो विदन्ति॥४३॥

अन्वय- अधुना स्त्रोतस्विनीनां तीरे अनुपलम् शाखिनः अधस्तात् यान्ति। कच्छारण्यम् नगण्यम्। क्वचित् अम्बुपूरे हरिणाः सम्प्लवन्ति। उदिताः ग्रामीणाः मीनलोभात् इतः उतः वेगवन्तः। वदन्तः पतङ्गाः भूयो भूयः ग्रथितम् अपि पदम् कण्टकैः नो विदन्ति॥४३॥

अनुवाद-इस समय नदियों के तट पर प्रतिक्षण वृक्ष नीचे की ओर जा रहे हैं। तट के प्रान्तवर्ती जंगल न के बराबर हो गये हैं। कहीं जल भराव में हिरण सम्यक्तया उछल कूद रहे है। जगे हुए ग्रामीण मछली की इच्छा से इधर उधर वेगवान् हैं (दौड़ रहे हैं)। शब्द करते हुए पक्षिगण बार बार गूँथे गये भी खोंथें को काँटों के कारण नहीं जान पा रहे हैं (नहीं पहचान पा रहे हैं)॥४३॥

गाढान्दोलितकेतकीदलगलच्छूलीकलापाकुलो
लोलत्कोमलमालतीपरिमलैराप्लावयन् दिङ्मुखम्।
लीलालोलकलावतीपरिगलद्धमिल्लमालोलय-
न्नालिङ्गत्यरविन्दसुन्दरदृशां गण्डस्थलीं मारुतः॥४४॥

अन्वय- गाढान्दोलितकेतकीदलगलच्छूलीकलापाकुलः लोलत्कोमलमालतीपरिमलैः दिङ्मुखम् आप्लावयन् लीलालोलकलावतीपरिगलद्धम्मिल्लमालोलयन् मारुतः अरविन्दसुन्दरदृशाम् गण्डस्थलीम् आलिङ्गति॥४४॥

अनुवाद-सघन (प्रबल) आन्दोलन से युक्त केतकी के समूह से गिरती हुई धूलि के समूह से आकुल लहराती हुई कोमल मालती की सुगन्धि से दिशाओं को आप्लावित करता हुआ, लीला से चंचल कलावती (नायिका) पर फिसलते हुए धम्मिल्ल (धार्मिक व्यक्ति) को सर्वथा चंचल बनाता हुआ पवन, कमल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली (नायिकाओं) के कपोल भाग का आलिंगन कर रहा है॥४४॥

उन्मीलन्नीपवाटीतटरटनपरो राजदारालयाना-
मारादागत्य मध्यन्तरलयति मरुत्कामिनीहारभारान्।
आलिङ्गत्यङ्गभङ्गीं कलयति च हठादङ्गनानां रतान्त-
क्लान्तापाङ्गप्रसङ्गव्यसनमनुसरत्येव नो केलिगेहात्॥४५॥

अन्वय- उन्मीलन्नीपवाटीतटरटनपरः मरुत् आगत्य आरात् राजदारालयानां मध्यम् तरलयति। कामिनीहारभारान् आलिङ्गति। अङ्गभङ्गीं कलयति। च हठात् केलिगेहात् अङ्गनानां रतान्तक्लान्तापाङ्गप्रसङ्गव्यसनम् नो एव अनुसरति॥४५॥

अनुवाद-उन्मीलित होते हुए कदम्बोद्यान के किनारे रणरणन में संलग्न पवन आकर चारों ओर से राजरानियों के भवनों के आँगन को तरलित कर रहा है। कामिनियों के हारसमूह का (उनकी गुरुताओं का) आलिङ्गन कर रहा है। अङ्गों में भङ्गिमा का सम्पादन कर रहा है, और हठ के कारण क्रीड़ासदन से नायिकाओं के कामालिङ्गन के अन्त में उत्पन्न होने वाली श्रान्ति से युक्त नेत्रकोणों के संसर्गजन्य व्यसन का अनुसरण नहीं ही कर रहा है॥४५॥

निर्यन्निर्झरघोरघर्घररवात्कोलाहलिन्यो दिशः
सद्यो दीर्यदुदारगह्वरगलत्पाषाणगर्भा दरी।
वल्मीकोपरभागभास्वरलतातुल्योदरे विह्वलाः
कोलाः क्वापि मतङ्गजाः क्वचिदमी सीदन्ति नानामृगाः॥४६॥

अन्वय- दिशः निर्यन्निर्झरघोरघर्घररवात्कोलाहलिन्यः, दरी सद्यः दीर्यदुदारगह्वरगलत्पाषाणगर्भा। क्वचिद्वल्मीकोपरभागभास्वरलतागुल्मोदरे अमी विह्वलाः कोलाः, क्वापि नानामृगाः सीदन्ति॥४६॥

अनुवाद-दिशाएँ बहते हुए निर्झरों की घोर घर्घर ध्वनि से कोलाहलयुक्त हो गयी हैं। घाटी शीघ्र उजड़ती हुई अथाह खाईं में गिर रहे प्रान्तरों वाली हो गयी है। कहीं चींटी की माँद के ऊपर के स्थान पर सुशोभित लताकुञ्ज के अन्दर ये विह्वल कोल तथा कहीं नाना प्रकार के मृग थकान का अनुभव कर रहे हैं॥४६॥

नवीनैरम्भोभिः स्फटिकमणिबद्धेव वसुधा
स्रवद्धारासारैरुदितनवहारा इव दिशः।
नभो वातान्दोलन्निखिलजलझङ्कारि सरितां
प्रतीरं नीरन्ध्रद्रुमविपिनमध्यस्थितमृगम्॥४७॥

अन्वय- नवीनैः अम्भोभिः वसुधा स्फटिकमणिबद्धा इव। दिशः स्त्रवद्धारासारैः उदितनवहाराः इव। नभः वातान्दोलत् निखिलजलझङ्कारि। सरितां प्रतीरं नीरन्ध्रद्रुमविपिनमध्यस्थितमृगम्।।४७।।

अनुवाद-नवीन बादलों से पृथ्वी स्फटिकमणि से बद्ध सी हो गयी है। दिशाएँ हो रही मूसलाधारवर्षा से मानो स्फुरित होते हुए नवीनहारों वाली हो गयी हैं। आकाश हवा से आन्दोलित होता हुआ सब तरफ से जल के झङ्कार वाला हो गया है। सरिताओं का तट नीरन्ध्रद्रुम के वन के मध्य भाग में बैठे हुए मृगों वाला हो गया है॥४७॥

विद्युद्दामललामनीरदघटासङ्घट्टघोरन्नभो
वन्याप्लावितशैलकोटरपरित्यागाकुला जन्तवः।
धारापातविदीर्यदट्टपटलप्रासादगोपानसी-
संरावाकुलचित्तवृत्तिनयनाः सीत्कारगर्भाः स्त्रियः।।४८।।

अन्वय- नभः विद्युद्दामललामनीरदघटासङ्घट्टघोरम्। जन्तवः वन्याप्लावितशैल-कोटरपरित्यागाकुलाः। स्त्रियः धारापातविदीर्यदट्टपटलप्रासादगोपानसी-संरावाकुलचित्तवृत्तिनयनाः सीत्कारगर्भाः सन्ति।।४८।।

अनुवाद-आकाश विद्युद् की कान्ति से सुन्दर बादल की घटा के प्रसार से विकराल हो गया है। जन्तुगण वन में उगने वाले पौधों से आच्छादित पहाड़ों के कोटरों का परित्याग करने के लिए आकुल हो गये हैं। स्त्रियाँ मूसलाधार वर्षा से विदीर्ण होते हुए मीनारसमूह के कारण प्रासाद के छप्पर को सँभालने के लिए उसके नीचे लगी टेढ़ी बल्ली से होने वाले शोरगुल से आकुल मनोवृत्ति एवं नेत्रों वाली, सीत्कार से भरी हुई हो गयी हैं॥४८॥

दिग्भागा भूमिपृष्ठं गगनमपि घनव्रातसम्पातयोगा-
दुद्यद्गाढान्धकारे प्रसरति परितो नैव भिन्ना बभूवुः।
शम्पासम्पातघोरध्वनिजनितमहाभीतिकम्पाकुलाङ्ग्यो
गाढाश्लेषं स्वकान्ते दधति दृढतरं क्रोधवत्योऽपि बालाः।।४९।।

अन्वय- घनव्रातसम्पातयोगात् उद्यद्गाढान्धकारे परितः प्रसरति भूमिपृष्ठम् गगनम् दिग्भागाः अपि भिन्नाः न एव बभूवुः। शम्पासम्पातघोरध्वनिजनितमहा-भीतिकम्पाकुलाङ्ग्यः स्वकान्ते क्रोधवत्यः अपि बालाः दृढतरं गाढा- श्लेषम् दधति।।४९।।

अनुवाद-बादल समूह के परस्पर मिलने के योग से (तथा) उठते हुए घने अन्धकार के चारों ओर प्रसरित हो जाने पर पृथ्वी तल आकाश एवं दिशा भाग सभी भिन्न नहीं

ही हुए, अर्थात् एक में मिले हुए प्रतीत हुए। बिजली के गिरने की घोर ध्वनि से उत्पन्न होने वाले महान् भय से उत्पन्न कम्पन से आकुल अङ्गों वाली अपने प्रियतम के प्रति क्रुद्ध (पति से नाराज) भी नायिकाएँ बड़ी दृढ़ता के साथ गाढ़ आलिंगन को धारण कर रही हैं॥४९॥

अथ वर्षाशरत्सन्धिवर्णनम्

स्वैरं स्वैरं दलति परितो मण्डली वारिदानां
मन्दं मन्दं सलिलमभितो निम्नमेव प्रयाति।
कुञ्जे कुञ्जे विकलमनसो मन्थरास्ते मयूराः
किञ्चिन्किञ्चिन्नभसि रभसा लापिनोऽमी मरालाः॥५०॥

अन्वय- वारिदानां मण्डली परितः स्वैरं स्वैरं दलति। सलिलम् अभितः मन्दम् मन्दम् निम्नम् एव प्रयाति। ते मयूराः कुञ्जे कुञ्जे विकलमनसः मन्थराः। अमी मरालाः रभसा नभसि किञ्चित् किञ्चित् लापिनः॥५०॥

वर्षाशरत्सन्धिवर्णन

अनुवाद-बादलों का समूह चारों ओर अपनी इच्छानुसार नष्ट हो रहा है। जल सब ओर धीरे धीरे नीचे ही जा रहा है। वे मोर प्रत्येक कुञ्ज में विकल मना होकर शिथिल (हो गये) हैं। ये हंस गतिशीलता से आकाश में कुछ कुछ आलाप (को धारण) कर रहे हैं॥५०॥

अथ शरद्वर्णनम्

आकाशं सावकाशं शिशिरकरकैश्चन्दनालेपशोभां
धत्ते चञ्चूपुराग्रग्रथितबिसलता राजहंसाश्चरन्ति।
भृङ्गाः शृङ्गारभारालससरसवधूकेलिकीर्तीरिवामी
गायन्तो मन्दमन्दं विदधति विदलत्कैरवप्रीतिभावम्॥५१॥

अन्वय- सावकाशम् आकाशम् शिशिरकरकैः चन्दनालेपशोभां धत्ते। चञ्चूपुटाग्र ग्रथितविसलताः राजहंसाः चरन्ति। अमी भृङ्गाः शृङ्गारभारालस-सरसवधूकेलिकीर्तीः गायन्तः इव मन्दम् मन्दम् विदलत्कैरवप्रीतिभावम् विदधति॥५१॥

शरद्वर्णन

अनुवाद-निरभ्र आकाश चन्द्रमा की किरणों से चन्दन के आलेप सरीखी शोभा को धारण कर रहा है। चञ्चुपुट के अग्र भाग में गूँथे हुए कमलनाल वाले हंस विचरण कर

रहे हैं। ये भौंरे शृङ्गार के भार से अलसाई हुई सरसवधुओं (रसोद्रेकमयी नायिकाओं) की मदनक्रीड़ा की कीर्तियों को मानो गाते हुए धीरे धीरे मुरझाते हुए श्वेतकुमुदों के प्रीतिभाव को धारण कर रहे हैं॥५१॥

एतत्तीरं पुलिनममलं चैतदेषा स्त्रवन्ती
त्वेवं बुद्धिर्भवति विशदा मानवानां सुखेन।
शालिश्रेणी विकसति जलान्निस्सरन्ती तरूणां
सन्दृश्यन्ते स्तवकितपयोविन्दवोऽमी जटासु॥५२॥

अन्वय- एतत् तीरम्। च एतत् अमलम् पुलिनम्। एषा स्त्रवन्ती। सुखेन मानवानां तु एवं विशदा बुद्धिर्भवति। जलान्निस्सरन्ती शालिश्रेणी विकसति। तरूणां जटासु अमी स्तवकितपयोविन्दवः सन्दृश्यन्ते॥५२॥

अनुवाद-यह तट है, और यह निर्मल पुलिन है। यह नदी है। सुख से मानवों की तो इस प्रकार की विशदबुद्धि हो गयी है। जल से बाहर निकलती हुई यह धान की फसल विकसित हो रही है। वृक्षों की जटाओं पर ये गुच्छरूपी जल की बूँदें दिखाई दे रही हैं॥५२॥

अथ शरद्हेमन्तसन्धिवर्णनम्

सुखस्पर्शो घर्मः परिमृजितजंवालनिचयो-
ऽभवन्मार्गो मन्दं हिमकणगणोऽपि प्रसरति।
जनो व्यग्रस्तूलेन्धनवसनशय्याविरचने
सरोजिन्याः सैव द्युतिरहह भिन्नेव भवति॥५३॥

अन्वय- घर्मः सुखस्पर्शः। परिमृजितजंवालनिचयः मार्गः अभवत्। हिमकणोऽपि मन्दं प्रसरति। जनः तूलेन्धनवसनशय्याविरचने व्यग्रः। सरोजिन्याः सा एव द्युतिः अहह इह भिन्ना इव भवति॥ ५३॥

शरद्हेमन्तसन्धिवर्णन

अनुवाद-धूप सुखपूर्वक स्पर्श के योग्य है। पुँछे हुए कीचड़ समूह वाला मार्ग हो गया (अर्थात् मार्ग पुँछे हुए कीचड़ के समूह वाला हो गया है)। ओस का कण भी धीरे धीरे प्रसरित हो रहा है। मनुष्य रुई, ईंधन वस्त्र एवं शय्या के निर्माण में (व्यवस्था में) मग्न है। पोखरी की वही शोभा अरे! यहाँ मानो भिन्न सी हो रही है॥५३॥

अथ हेमन्तवर्णनम्

मन्दीभूतो विवस्वानविरलरजनीजानिसङ्गादिवायं
तन्मन्दीभावदु:खादिव कमलवनी मन्दिमानं जगाम।
केदारोद्देशभूमिस्थितशबरवधूगानसंनीयमाना
निःस्पन्दं रङ्कवोऽमी दधति खुरपुटन्यासमासङ्गवन्तः॥५४॥

अन्वय- अविरलरजनीजानिसङ्गात् अयं विवस्वान् मन्दीभूतः इव। तन्मन्दीभाव दुःखात् कमलवनी मन्दिमानं जगाम इव। केदारोद्देशभूमिस्थित- शबरवधूगानसंनीयमानाः आसङ्गवन्तः अमी रङ्कवः निःस्पन्दम् खुरपुट- न्यासम् दधति॥५४॥

हेमन्तवर्णन

अनुवाद-निरन्तर चन्द्रमा के साथ के कारण यह सूर्य मानो मन्द हो गया है (इसका ताप कम हो गया है)। उसके मन्दीभाव (मन्द हो जाने की स्थिति) के दुःख से कमलों का वन मानों मन्दता को प्राप्त हो गया है। केदारप्रान्त की भूमि में स्थित शबरों की स्त्रियों के गीतों के द्वारा ले जाये जाते हुए सम्यक् रूप से (उनके) साथ (सहनिवास) को प्राप्त ये मृग बिना शब्द किए हुए ही चरणन्यास (खुटपुटनिक्षेप) को धारण कर रहे हैं (चरण रख रहे हैं)॥५४॥

उत्फुल्ला शालिपालिः शिशिरकरगणैश्चुम्बिता मञ्जरीणा-
मग्रे कीरावलीयं प्रसरति परितः शालिभूपालिना [नः]किम्!
दूरात्सा वार्यमाणा रचयति गगने मण्डलीभूय सद्यः
केलि[लौ]लोलाङ्गनाङ्गोच्छलितमरकतस्त्रक्कलापस्य शोभाम्॥५५॥

अन्वय- शालिपालिः शिशिरकरगणैः चुम्बिता उत्फुल्ला। मञ्जरीणाम् अग्रे इयं कीरावली प्रसरति। किम् सा दूरात् शालिभूपालिना वार्यमाणा गगने मण्डलीभूय सद्यः केलिम् लोलाङ्गनाङ्गोच्छलितमरकतस्त्रक्कलापस्य शोभाम् रचयति॥५५॥

अनुवाद-धान्यपङ्क्ति चन्द्रमा की किरणों से (ओस की बूँदों से) चूमी गयी उत्फुल्ल है (फूली हुई है)। लताओं के आगे यह तोतों की पङ्क्ति व्याप्त हो रही है। क्या वह दूर से धान्यरक्षक के द्वारा रोंकी जाती हुई आकाश में मण्डली बनाकर शीघ्र सुखक्रीड़ा से चञ्चल नायिकाओं के अङ्गों से उछलते हुए मरकतमणि के मालारूपी हार की शोभा को रच रही है॥५५॥

शून्या लीलासरस्यः क्वचिदपि कुतुकोद्यानगर्भे न काञ्ची-
मञ्जीरध्वानधारा युवयुवतिषु नो कुत्रचित्पत्रलेखा।
न श्रीखण्डस्य सर्वो यतिरतिरमणोद्योगतो भोगसीमा
हेमन्ते शालिमालादलतरलदृशां कोऽपि केदारदेशः॥५६॥

अन्वय- हेमन्ते लीलासरस्यः शून्याः। कुतुकोद्यानगर्भे क्वचित् अपि काञ्ची-मञ्जीरध्वानधारा न। युवयुवतिषु कुत्रचित्पत्रलेखा नो। श्रीखण्डस्य सर्वो यतिः न। अतिरमणोद्योगतः शालिमालादलतरलदृशाम् कोऽपि केदारदेशः भोगसीमा॥५६॥

अनुवाद- हेमन्त में लीला पोखरियाँ (स्नानानन्द जहाँ लिया जाता है, वैसी वापिकाएँ) शून्य हो गयी हैं। कुतुकोद्यान में कहीं भी करधनी एवं नूपुर के शब्दों का सातत्य नहीं है। श्रीखण्ड को पीसने वाला (लेपने वाला) यति नही है। अत्यन्त रमणविषयक उद्योग से शालिमाला दल की तरह तरलनेत्रोंवाली नायिकाओं का कोई केदारदेश भोगसीमा बना हुआ है॥५६॥

तीरादातत्य जालं जलमधिविधिवन्मीनमाहर्तुकामाः
शैवालान्दोललीलायितकरयुगला धीवराः पीवराङ्गाः।
तिष्ठन्त्येते कथञ्चिद्दहनमनुसरन्त्येव भूयः समीनं
जालं बुद्ध्वा च भूयः कथमपि सलिलस्योपकण्ठे लुठन्ति॥५७॥

अन्वय- शैवालान्दोललीलायितकरयुगलाः पीवराङ्गाः मीनम् आहर्तुकामाः एते धीवराः तीरात् जालम् आतत्य कथञ्चित् जलम् अधि तिष्ठन्ति। कथञ्चित् भूयः दहनम् एव अनुसरन्ति, च भूयः समीनं जालं बुद्ध्वा कथमपि सलिलस्य उपकण्ठे लुठन्ति॥५७॥

अनुवाद- शैवालों के चारों ओर हिलने डुलने से चञ्चल हाथों वाले (दोनों हाथों वाले) मांसल अङ्गों वाले, मछलियों को पकड़ने की इच्छा रखने वाले ये नाविक तट से जाल को बिछाकर किसी प्रकार जल के अन्दर बैठते है। बार बार आग का ही अनुसरण करते हैं, और बार बार मछली से युक्त जाल को समझ कर (जाल को मछलीयुक्त समझकर) जल के अन्दर ही (जल के पास ही) गिर पड़ते हैं॥५७॥

अथ हेमन्तशिशिरसन्धिवर्णनम्

स्वीयं स्वीयं वपुरतितरां तत्तुषाराभिभूतं
लोका भूयः शिशिरकवलीभूतमत्तर्कयन्ति।
दीर्घा यामिन्यभवदथवा वासरो याति दैर्घ्यं
नैवं व्यक्तीभवति जडता नूतनेवाविरासीत्॥५८॥

अन्वय- लोकाः तत्तुषाराभिभूतं स्वीयं स्वीयं वपुः भूयः शिशिरकवलीभूतमत् तर्कयन्ति। यामिनी दीर्घा अभवत् अथवा वासरः दैर्घ्यं याति एवं न व्यक्ती भवति। जडता नूतना अविरा इव आसीत्॥५८॥

हेमन्तशिशिरसन्धिवर्णन

अनुवाद-लोग उस ओस से अभिभूत अपने अपने शरीर को बार बार ठंढ से कवलीभूत अनुभव कर रहे हैं। रात्रि लम्बी हो गयी अथवा दिन लम्बाई को (अधिकता को) प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार से (कुछ) व्यक्त नहीं हो पा रहा है। जड़ता (जकड़न) नूतन नायिका की भाँति हो गयी है॥५८॥

अथ शिशिरवर्णनम्

उत्तीर्योत्तीर्य तोयात्सलिलखगगणास्तीरदेशे निलीनाः
सन्ति द्वीपान्तराले विलुठति कमठश्रेणिरावर्तितास्या।
कूलश्वभ्रेषु मीना विशितुमभिपतन्त्यम्बुतो हन्त शीते
तेषां स्पर्शेऽपि धर्तुं क्षमति[1] नहि वको निष्क्रियत्रोटिपादः॥५९॥

अन्वय- सलिलखगगणाः तोयात् उत्तीर्य उत्तीर्य तीरदेशे निलीनाः सन्ति। द्वीपान्तराले आवर्तितास्या कमठश्रेणिः विलुठति। हन्त! शीते मीनाः अम्बुतः कूलश्वभ्रेषु विशितुम् अभिपतन्ति। निष्क्रियत्रोटिपादः वकः तेषां स्पर्शे अपि धर्तुं नहि क्षमति॥५९॥

---

१. "क्षमूष्" सहने इति आत्मनेपदी धातुः। छन्दोभङ्गात् "क्षमते" इत्यस्य प्रयोगः परिवर्तनधिया न क्रियते।

शिशिरवर्णन

अनुवाद-जल में विहार करने वाले पक्षीगण जल से निकल निकल कर तट प्रदेश में छिप गये हैं। द्वीपों के अन्दर (अन्तराल में) फैलाये हुए (घुमाए हुए) मुखों वाली वकुलों की पङ्क्ति (बकुलों का समूह) लोट रहा है। हाय कष्ट है कि शीत में मछलियॉ जल से तट के छिद्रों में प्रवेश करने के लिए उछल रही हैं। निष्क्रिय पक्षी वकुला उनका स्पर्श प्राप्त करने पर भी (उन्हें) धरने (पकड़ने) में समर्थ नहीं हो पा रहा है॥५९॥

चण्डांशोर्मण्डलेऽपि द्रवति हिमघटो द्वार एव त्रिलोकी
शीताम्भोधौ नु मग्ना दधति किमु दिशः शीतपाथोधिपूरान्।
अग्नेर्ज्वालोऽपि शीताकलित इव परं त्वङ्गनाङ्गप्रसङ्ग-
व्यापारे कोऽपि शीतापगमविधिरसौ दृश्यते धन्य एव॥६०॥

अन्वय- चण्डांशोः मण्डले अपि हिमघटोद्गार एव द्रवति। नु त्रिलोकी शीताम्भोधौ मग्ना। किमु दिशः शीतपाथोधिपूरान् दधति। अग्नेः ज्वालः अपि शीताकलितः इव। परन्तु अङ्नाङ्गप्रसङ्गव्यापारे धन्यः एव असौ कः अपि शीतापगमविधिः दृश्यते॥६०॥

अनुवाद-सूर्यमण्डल में भी चन्द्रमा का उद्गार (द्रव) ही द्रवित हो रहा है। निश्चित रूप से तीनों लोक शीतसमुद्र में मग्न हो गया है। क्या दिशाएँ शीतसमुद्र के जल (वाष्प) को धारण कर रही है? अग्नि की ज्वाला भी मानो शीताकलित है। परन्तु सुन्दरी (स्त्री) के पास अंगप्रसङ्गव्यापार (काम क्रीड़ा) में धन्य ही यह कोई शीतापगमविधि (शीत को दूर कर देने वाली विधि) दिखाई पड़ रही है॥६०॥

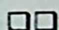
गत्वा मञ्जुपलालपुञ्जकुहरं मत्वा जनुः सार्थकं
कृत्वा शीतसमुद्रतारणविधिं ग्रामीणनारीजनः।
धन्योऽयं किल माघमासविभवो व्यर्था वसन्तादयो
व्यर्थास्ताः पुरयोषितः परमिति ध्यायत्यहो निर्भरम्॥६१॥

अन्वय- अहो! ग्रामीणनारीजनः मञ्जुपलालपुञ्जकुहरम् गत्वा जनुः सार्थकं मत्वा शीतसमुद्रतारणविधिं कृत्वा ''किल अयं माघमासविभवः धन्यः, वसन्तादयः व्यर्थाः, ताः पुरयोषितः व्यर्थाः'' इति परं निर्भरं ध्यायति॥६१॥

अनुवाद-अरे! गाँव की स्त्रियाँ सुन्दर पुआलसमूह से युक्त गुफाओं में जाकर जीवन (जन्म) को सार्थक मानकर शीत के समुद्र से तर जाने (मुक्त हो जाने) का विधान कर ''निश्चित रूप से यह माघ मास का वैभव धन्य है। वसन्त आदि (ऋतुएँ) व्यर्थ हैं, वे शहरों (नगरों) में बसने वाली स्त्रियाँ व्यर्थ हैं'' ऐसा, बड़ी दृढ़ता के साथ चिन्तन करती हैं (सोचती हैं)॥६१॥

इति श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे नानाविधकालवर्णनप्रकरणम्

श्रीमैथिलाभिनवश्रीकालिदासविरचित सकलरससारसङ्ग्रह में नानाविध कालवर्णनप्रकरणसमाप्त



अन्योक्तिनीतिप्रकरणम्

अथान्योक्तिश्लोकाः

दातुं चेत्तव शक्तिरस्ति जलद त्वं तत्सुधानिर्मलं
तोयं देहि ममाग्रतः कटुतरं गर्जं पुनर्मा कृथाः।
नाहं वारिद चातकस्तव पयोमात्रैकवृत्तिर्मुखं
तीर्थायानुदिनं कदर्थनपरस्त्वामेव यत्सेवते॥१॥

अन्वय- जलद! चेत् सुधानिर्मलं तोयं दातुं तव शक्तिः अस्ति, त्वं तत् देहि। ममाग्रतः पुनः कटुतरं गर्जं मा कृथाः। वारिद! अहं तव पयोमात्रैक वृत्तिः कदर्थनपरः चातकः न। यत् मुखम् अनुदिनम् तीर्थाय त्वाम् एव सेवते॥१॥

अन्योक्तिश्लोक

अनुवाद-हे बादल! यदि अमृत की तरह निर्मल जल देने की तुम्हारी सामर्थ्य है (तो) तुम उसे दो। मेरे आगे फिर कटुतर गर्जन मत करना। हे वारिद! मैं तुम्हारे जल मात्र की वृत्ति वाला याचना परायण चातक नहीं हूँ। जो मुख (चातक का जो मुख) प्रतिक्षण जीवनयापन के लिए तुम्हारा ही सेवन करता रहता है॥१॥

अस्त्येवोद्दामदावानलविकलतरं काननं यत्र तत्र
प्रौढोत्तापाभिभूतं जगदपि सकलं निर्जला एव नद्यः।
किं रे निर्लज्ज गर्जं कलयसि बहुशस्तर्जयन्पान्थबालाः
पर्जन्य त्वाममी किं क्वचिदपि गणयन्त्यम्बुदत्वेन लोकाः॥२॥

अन्वय- यत्र तत्र उद्दामदावानलविकलतरं काननम् अस्ति एव। सकलम् जगत् अपि प्रौढोत्तापाभिभूतम्। नद्यः निर्जलाः एव। रे निर्लज्ज पर्जन्य! पान्थबालाः तर्जयन् किं बहुशः गर्जं कलयसि। किम् अमी लोकाः क्वचिदपि त्वाम् अम्बुदत्वेन गणयन्ति?॥२॥

अनुवाद-जहाँ तहाँ उद्दाम दावानल से नितान्त व्याकुल वन है ही। सारा संसार भी प्रौढोत्ताप से अभिभूत है। नदियाँ निर्जल ही हैं। रे निर्लज्ज पर्जन्य! रास्ते में चलने वाली लड़कियों (नायिकाओं अथवा पथिकों की स्त्रियों) को तर्जित करते हुए क्यों बहुत बार गर्जन करते हो? क्या ये संसार के लोग कहीं भी तुमको बादल (जल देने वाले) के रूप में गिनते हैं?॥२॥

प्रसूनानां भारं[1] बहुबहलसौरभ्यसुभगो
वसन्त त्वं हन्त ध्रुवमसि विधातुर्नहि मतः।
किमेतैरुद्यद्भिर्विविधवनवाटीपरिमलै-
र्व्यलीकं ते सर्वं यदि न नवनीपो मुकुलितः॥३॥

अन्वय- वसन्त! ध्रुवम् बहुबहलसौरभ्यसुभगः त्वम् विधातुः मतः नहि असि। यदि नवनीपो न मुकुलितः, हन्त एतैः उद्यद्भिः विविधवनवाटीपरिमलैः ते किम्?। प्रसूनानां सर्वं भारं व्यलीकम्॥३॥

अनुवाद-हे वसन्त! निश्चित रूप से बहुविध एवं प्रचुर सुगन्धि से सुभग तुम विधाता को प्रिय (अभीष्ट) नहीं हो [विधाता के द्वारा स्वीकृत नहीं हो]। यदि अभिनव कदम्बवृक्ष मुकुलित नहीं हो जाता है (तो) हाय! इन उठ रहे विविधवनों के पुष्पोद्यान की सुगन्धि से तुम्हारा क्या लाभ? पुष्पों का सारा भार बेकार है॥३॥

एकस्मिन् गिरिगह्वरे निवसतिश्चैकैव जातिस्ततो
मा खड्गादिचतुष्पदा मृगपतौ स्पर्धां कुरुष्व ध्रुवम्।
भिन्नोऽयं किल कोऽपि यत्खरनखव्याघातभिन्नद्विपि-
व्रातोन्मुक्तविशालमौक्तिकफलैरापूरितेयं मही॥४॥

अन्वय- खड्गादिचतुष्पदाः! एकस्मिन् गिरिगह्वरे निवसतिः, च एका एव जातिः। ध्रुवम् मृगपतौ स्पर्धाम् मा कुरुष्व। अयं किल कोऽपि भिन्नः। यत्खरनखव्याघातभिन्नद्विपिव्रातोन्मुक्तविशालमौक्तिकफलैः इयं दरी आपूरिता॥४॥

---

१. भार इति पुंल्लिङ्गी शब्दः, किन्तु कविना एतस्य प्रयोगः नपुंसकलिङ्गे कृतः।

अनुवाद-हे गैंड़े आदि जानवरो! एक ही पहाड़ की गुफा में निवास है, एक ही जाति है। (इसलिए) निश्चित तौर से सिंह से (में) स्पर्धा न कीजिए। यह निश्चित रूप से कोई अलग (जन्तु) है। जिसके तेज नाखूनों के विशेष आघात से विदीर्ण हाथियों के समुदाय के कारण गिरे हुए विशाल मुक्ताफलों से यह गुफा भर दी गयी है॥४॥

एतस्मिन् पल्वले किं गमयसि समयं पङ्कशम्बूकलाभ-
प्रक्रीडत्कङ्करङ्कप्रकरसमुचिते ते च यद्वासयोग्यम्।
एतत्तत्किञ्चिदञ्चत्कमलवनमिलद्भृङ्गसङ्गप्रनृत्य-
द्भृङ्गीसङ्गीतकामोत्सवममलसरो राजते राजहंस?॥५॥

अन्वय- राजहंस! यत् पङ्कशम्बूकलाभप्रक्रीडत्कङ्करङ्कप्रकरसमुचिते एतस्मिन् पल्वले एतत् समयं गमयसि, किं ते वासयोग्यम्? च तत् किञ्चिदञ्चत्कमलवनमिलद्भृङ्गसङ्गप्रनृत्यद्भृङ्गीसङ्गीतकामोत्सवममलसरः राजते॥५॥

अनुवाद-हे राजहंस! जो कीचड़ के घोंघे के लाभ के लिए वकुले सरीखे भुखमरों के समूह के लिए उचित इस तालाब में यह समय बिता रहे हो, क्या (यह) तुम्हारे निवास के योग्य है? और वह कुछ विकसित होते हुए कमलों के वन में घूमते हुए भौरों के साथ के कारण नाचती हुईं भ्रमरियों के सङ्गीत से समन्वित मदनोत्सव वाला स्वच्छ सरोवर सुशोभित हो रहा है॥५॥

एतद्वारिदवृन्दमम्बरमगादम्भोधितोयोदरात्
पार्श्वे पश्य तरङ्गिणी वितनुते वन्याविलासक्रमम्।
तत्किं धावसि दावपावकशिखासन्दोहमान्दोलयन्
लोभस्ते विफलो भविष्यति बलोन्मादश्च ते यास्यति॥६॥

अन्वय- दावपावक! अम्भोधितोयोदरात् एतत् वारिदवृन्दम् अम्बरम् अगात्। तरङ्गिणी पार्श्वे वन्याविलासक्रमम् वितनुते। तत् पश्य। शिखासन्दोहम् आन्दोलयन् तत् किं धावसि। ते लोभः विफलः भविष्यति, च ते बलोन्मादः यास्यति॥६॥

अनुवाद-हे दावाग्नि! समुद्र के जल के अन्दर से यह बादलों का समूह आकाश को चला गया। पास में नदी नायिका के (वन में रहने वाली स्त्री के) विलासक्रम

(कामव्यापार) को उत्प्रेरित कर रही है। उसे देखो। लपटों के समूह को आन्दोलित करते हुए क्यों दौड़ रहे हो। तुम्हारी लालच विफल हो जायेगी, और तुम्हारा बलोन्माद चला जायेगा॥६॥

धन्यस्त्वं नववारिवाह भवतः कान्तिर्जगन्मोदिनी
नीलेन्दीवरदामसुन्दरतरा धन्यातिधन्या पुनः।
यामेवं निजनायकागमसमुल्लासालसाङ्ग्यो भृशं
पश्यन्त्यो न विदन्ति सौधशिखरारोहश्रमं सुभ्रुवः॥७॥

अन्वय- नववारिवाह! त्वं धन्यः। एवं नीलेन्दीवरदामसुन्दरतरा जगन्मोदिनी पुनः भवतः कान्तिः धन्या, अति धन्या। याम् निजनायकागमसमुल्लासाल- साङ्ग्यः सुभ्रुवः भृशं पश्यन्त्यः सौधशिखरारोहश्रमं न विदन्ति॥७॥

अनुवाद-हे नवीनजल को ढोने वाले (बादल)! तुम धन्य हो। इसी प्रकार नीलकमल की तरह कान्ति से नितान्त सुन्दर संसार को आनन्दित करने वाली फिर आप की कान्ति धन्यातिधन्य है, जिस (कान्ति) को अपने प्रियतम के आगमन विषयक उल्लास से अलसाये अङ्गों वाली सुन्दर भौंहों वाली रमणियाँ बार बार देखती हुईं महलों की चोटियों (ऊपर का भाग) पर चढ़ने की थकान का अनुभव नहीं करतीं हैं॥७॥

किं कालोरग कोटिकण्ठगरलज्वालोऽयमालोकितो
नित्यं भिल्लकिरातसेविततटः श्रीखण्डशैलस्त्वया।
एतच्चन्दनमन्दमारुतसमासङ्गे कुरङ्गीदृशा-
मङ्गेऽनङ्गविलासमङ्गलकलाभङ्गिस्तरङ्गायते॥८॥

अन्वय- कालोरग! किं कोटिकण्ठगरलज्वालः नित्यम् भिल्लकिरातसेविततटः अयं श्रीखण्डशैलः त्वया आलोकितः। एतत्चन्दनमन्दमारुतसमासङ्गे कुरङ्गीदृशाम् अङ्गे अनङ्गविलासमङ्गलकलाभङ्गिः तरङ्गायते॥८॥

अनुवाद-हे कालोरग! क्या करोड़ों कण्ठों में विद्यमान विष की ज्वाला की तरह विषज्वाला वाला, हर समय भिल्लों एवं किरातों से सेवित तट (भूमि) वाला यह श्रीखण्ड शैल तुम्हारे द्वारा देखा गया है। इस चन्दन वृक्ष की मन्द हवा से सम्पृक्त हरिणनयनियों के अङ्ग में कामविलास की मङ्गलमयी कलाभङ्गी तरङ्गित हो रही है ॥८॥

गुणो यस्य क्षोणीपतितिलकभावे सुविदितो
रसो यस्य प्रौढं हरति किल तापं रसवताम्।
पटीरोऽयं धातः कुटिलतरकालोरगशतै-
र्निबद्धो बुद्धं ते सकलकृतिपाण्डित्यमधुना॥९॥

अन्वय- धातः! यस्य गुणः क्षोणीपतितिलकभावे सुविदितः। यस्य रसः किल रसवताम् प्रौढं तापं हरति। अयं कुटिलतरकालोरगशतैः निबद्धः पाटीरः। अधुना ते सकलकृतिपाण्डित्यम् बुद्धम्॥९॥

अनुवाद-हे विधाता! जिसका गुण पृथ्वीपति (राजा) के तिलकाभिषेकक्रिया में सुविख्यात है। जिसका रस रसधारियों (प्राणियों) के महान् ताप को हर लेता है। यह नितान्त कुटिल सैकड़ों काले सर्पों से निबद्ध चन्दन है। इस समय तुम्हारा सब कुछ निर्मित करने का पाण्डित्य (कौशल) स्पष्ट हो गया है॥९॥

एतस्य शुद्धगुणशैत्यसुगन्धभार-
संस्कारशून्यहृदयेन किरातकेन।
सामान्यवन्यतरुबुद्धिवशाद्विमुक्त-
मेतन्न मुञ्च गुणगुम्फितगन्धसारम्॥१०॥

अन्वय- एतस्य गुणगुम्फितगन्धसारम् शुद्धगुणशैत्यसुगन्धभारसंस्कारशून्यहृदयेन किरातकेन सामान्यवन्यतरुबुद्धिवशात् विमुक्तम्, एतत् न मुञ्च॥१०॥

अनुवाद-इस (चन्दन) का गुण गुम्फित सुगन्धसारतत्त्व, पवित्रगुण शीतलता तथा सुगन्धि के भार को समझने के संस्कार से शून्य हृदय वाले किरात के द्वारा सामान्य रूप से वन में उत्पन्न होने वाले वृक्ष की बुद्धि से छोड़ दिया गया है (उपेक्षित कर दिया गया है, त्याग दिया गया है)। (हे विज्ञ मनुष्य! तुम) इसे न छोड़ो॥१०॥

अज्ञात्वैव रसं गुणञ्च निखिलं रूपञ्च तस्योज्ज्वलं
किं चूर्णभ्रमतो विमुञ्चसि मुधा कर्पूरपूरं सखे।
मुक्तश्चेदथवा त्वया हतधिया यत्रैव यास्यत्यसौ
सन्देशं समलङ्करिष्यति निजैरेव प्रसिद्धैर्गुणैः॥११॥

अन्वय- सखे! तस्य उज्ज्वलं रूपम् रसम् च निखिलगुणम् चूर्णभ्रमतः अज्ञात्वा एव किं मुधा कर्पूरपूरं विमुञ्चसि। अथवा त्वया हतधिया असौ मुक्तः चेत् यत्र एव यास्यति निजैः एव प्रसिद्धैः गुणैः सन्देशम् समलङ्करिष्यति॥११॥

अनुवाद-हे मित्र! उसके (कर्पूर के) उज्ज्वल रूप को रस को और सारे गुणों को चूर्ण के भ्रम से न जान कर ही क्यों प्रमादवश कर्पूरद्रव्य (कर्पूर चूर्ण) को छोड़ रहे हो। अथवा तुझ नष्ट बुद्धि वाले (व्यक्ति) के द्वारा यह छोड़ (भी) दिया गया तो जहाँ ही जायेगा, अपने ही प्रसिद्ध गुणों के द्वारा सन्देश (प्रतिष्ठा) को संशोभित करेगा॥११॥

लब्धाम्भोलहरीशतैरितरितः [इतरतः] किं धावसि व्याकुला
शुष्यच्छालिवनं तरङ्गिणि जलैः केदारमापूरय।
तद्द्रव्यं सफलं करोति सुखितं यद्दुःखितं तेन किं
यद् व्यर्थं विलयं प्रयाति परितः तस्मादिदं कथ्यते॥१२॥

अन्वय- तरङ्गिणि! लब्धाम्भोलहरीशतैः व्याकुला किं इतरतः धावसि। शुष्यच्छालिवनम् केदारम् जलैः आपूरय। यत् सफलं सुखितं करोति तत् द्रव्यम्। यत् परितः दुःखितम् (करोति) व्यर्थं विलयं प्रयाति, तेन किम्? तस्मात् इदम् कथ्यते॥१२॥

अनुवाद-हे सरिता! प्राप्त सैकड़ों जललहरियों से व्याकुल होकर क्यों अन्यत्र भाग रही हो। सूखते हुए शालिवनों वाले (धान्यशस्यवाले) केदार को जलों से भरो। जो सफल (एवं) सुखी करता है वह द्रव्य है। जो चारों ओर से दुःखी (करता है) व्यर्थ विलय को प्राप्त करता है, उससे क्या प्रयोजन? इसी से यह (तुमसे) कहा जा रहा है॥१२॥

दग्धं जरत्तालतमालजालं
त्वया दवाग्न्या मम तन्न खेदः।
एषा लतालीनमधुव्रताली
व्यालीढगुच्छा कवलीकृता किम्॥१३॥

अन्वय- दवाग्ने! त्वया तत् जरत्तालतमालजालं दग्धम्, मम खेदः न। एषा व्यालीढगुच्छा लतालीनमधुव्रताली किम् कवलीकृता?॥१३॥

अनुवाद-हे दवाग्नि! तुम्हारे द्वारा वह जीर्ण होता हुआ ताड़ों एव तमालों का समूह जला दिया गया, मुझे कष्ट नहीं है। यह विशेष रूप से चखे हुए गुच्छों वाली लताओं में छिपी हुई भौरों की श्रेणी (तुम्हारे द्वारा) क्यों कवलित कर ली गयी?॥१३॥

हे पाटीरतरो वरोन्नतिकरो युष्मत्पुरो मारुत-
श्छायातापभयावहा तव रसैरामोदिनीयं नदी।
किं लोकोत्तरमस्ति न त्वयि परं त्वेतत्कथं कोटरे
स्फूर्जत्कालकरालसर्पगरलज्वालावलीढं वपुः॥१४॥

अन्वय- हे पाटीरतरो! युष्मत्पुरः वरोन्नतिकरः मारुतः। तव रसैः छायातापभयावहा इयम् आमोदिनी नदी। त्वयि किम् लोकोत्तरम् नास्ति। परं कोटरे वपुः स्फूर्जत्कालकरालसर्पगरलज्वालावलीढं कथम्?॥१४॥

अनुवाद-हे चन्दन के वृक्ष! तुम्हारे पास (सामने) श्रेष्ठ उन्नतिकारक पवन है। तुम्हारे रस से, छाया से, ताप विषयक भय को हर लेने वाली, यह आनन्दित करने वाली नदी है। तुम्हारे में (तुझमें) क्या लोकोत्तर नहीं है। किन्तु, कोणर में (तुम्हारा) शरीर फनफनाते हुए काले करालसर्पों की विषज्वाला से अवलिप्त क्यों है?॥१४॥

पुरा यो भूझञ्झापवनहतपत्रावलिशिखा-
गतश्रीसम्भारः सकलजननेत्रातिविरसः।
मधौ सोऽयं वृक्षोदरविकचगुच्छोत्करगलन्
मरन्दैः स्वच्छन्दं सुखयति हि वृन्दं मधुलिहाम्॥१५॥

अन्वय- पुरा यः भूझञ्झापवनहतपत्रावलिशिखागतश्रीसम्भारः, सकलजन- नेत्रातिविरसः, सः हि अयम् मधौ वृक्षोदरविकचगुच्छोत्करगलन् मरन्दैः स्वच्छन्दम् मधुलिहाम् वृन्दं हि सुखयति॥१५॥

अनुवाद-पहले जो पृथ्वी पर झञ्झापवन से टूटी हुई पत्तों की श्रेणी के अग्रभाग से उत्पन्न होने वाली शोभा का सम्भार सारे लोगों के नेत्रों के लिए अत्यन्त रसशून्य (अनाकर्षक) था, वह ही यह मधु ऋतु में वृक्षों के अन्दर से तथा विकसित पत्रगुच्छों से ऊपर की ओर उछलती किरणों से झरता हुआ, परागों से स्वच्छन्द रूप में भौंरों के समूह को सुखी कर रहा है॥१५॥

एतस्यावनिमण्डनस्य मलयस्यातिप्रसिद्धा गुणाः
संसारे विलसन्तु हन्त हृदये खेदो मदीये पुनः।
एतस्मिन्नवनीपचम्पकवने शाखोटकादौ तथा
जाते चन्दनतां न सूक्ष्ममपि यज्जानन्ति भेदं जनाः॥१६॥

अन्वय- एतस्य अवनिमण्डनस्य मलयस्य अतिप्रसिद्धाः गुणाः संसारे विलसन्तु। हन्त! मदीये हृदये पुनः खेदः। एतस्मिन् नवनीपचम्पकवने शाखोट- कादौ चन्दनतां जाते सूक्ष्मम् अपि भेदम् जनाः न जानन्ति॥१६॥

अनुवाद-इस पृथ्वी को अलङ्कृत करने वाले मलय (चन्दन) के अत्यन्त प्रसिद्ध गुण संसार में सुशोभित हों। हाय! मेरे हृदय में फिर (भी) कष्ट है। इस नये कदम्ब एवं चम्पक के वन में शाखोटक आदि के भी चन्दनता को प्राप्त हो जाने पर (चन्दन बन जाने पर) सूक्ष्म भी भेद को लोग नहीं जान पा रहे हैं॥१६॥

सकललोकनमस्करणीयता
वरवधूनयनोपमता च ते।
रुचिरता जगतोऽपि च खञ्जन
क्वचिदपि स्थिरता नहि ते कथम्॥१७॥

अन्वय- खञ्जन! ते सकललोकनमस्करणीयता च वरवधूनयनोपमता च जगतः अपि रुचिरता। क्वचिदपि ते स्थिरता कथं नहि॥१७॥

अनुवाद-हे खञ्जन! तुम्हारी समग्र लोक से नमस्करणीयता और वरवधू के नेत्रों की (नेत्रों के लिए) उपमानता और संसार से भी (अधिक) सुन्दरता (प्रसिद्ध) है। (फिर) कहीं भी तुम्हारी स्थिरता क्यों नहीं है?॥१७॥

अतिस्फीतं पीतं प्रणयमयशीतद्युतिकरा-
दुपेतं पीयूषं चिरमिह सुखेनैव भवता।
किमङ्गारस्तोमं कवलयसि रङ्गादविरलं
चकोर त्वं घोरक्रम कथय कोऽयं तव विधिः॥१८॥

अन्वय- घोरक्रमचकोर! प्रणयमयशीतद्युतिकरात् उपेतम् अतिस्फीतम् पीयूषम् इह सुखेन एव भवता चिरं पीतम्। रङ्गात् अविरलम् अङ्गारस्तोमं त्वं किम् कवलयसि? कः अयं तव विधिः? कथय॥१८॥

अनुवाद-हे कठोरव्रती चकोर! प्रणययुक्त चन्द्रमा की किरणों से प्राप्त अत्यन्त उज्ज्वल अमृत यहाँ सुख के साथ ही आपके द्वारा बहुत समय तक पीया गया। रंग से निरन्तर अङ्गारसमूह को तुम क्यों कवलित कर रहे हो (कवल बना रहे हो)?। कौन यह तुम्हारी विधि है? कहो॥१८॥

युष्मच्चीत्कारभीत्या निजनिलयवनान्निर्गतो दुर्गपङ्के
मग्नोऽसौ हन्त दन्ती त्वमिति तदनु किं धावसि व्यात्तवक्त्रः।
पारीन्द्र त्वत्कराग्रप्रखरतरनखश्रेणिरेखा ने केषां
भित्वा कुम्भं गजानां क्षिपति दिशि दिशि स्थूलमुक्ताकलापान्॥१९॥

अन्वय- पारीन्द्र! युष्मच्चीत्कारभीत्या असौ दन्ती निजनिलयवनात् निर्गतः दुर्गपङ्के मग्नः। हन्त! व्यात्तवक्त्रः त्वम् तदनु किं धावसि? त्वत्कराग्रप्रखरतर नखश्रेणिरेखा केषां गजानां कुम्भं भित्वा स्थूलमुक्ताकलापान् दिशि दिशि न क्षिपति?॥१९॥

अनुवाद-हे सिंह! तुम्हारे चीत्कार के डर से यह हाथी अपने निवासवन से निकल कर (निकला हुआ) दुर्गम कीचड़ में मग्न हो गया है (छुप गया है)। हाय! फैलाए हुए मुख वाले तुम उसके पीछे क्यों दौड़ रहे हो?। तुम्हारे हाथ (पैर) की तीक्ष्ण नाखून पङ्क्ति कितने हाथियों के कुम्भस्थल को विदीर्ण कर स्थूल मुक्ताकलापों को दिशाओं दिशाओं में नहीं फेंक रही है?॥१९॥

ज्वालैस्तुङ्गद्रुमचयशिखाचुम्बकैर्दाववह्नि-
र्विष्वग्धावत्यहह गहने प्रेयसी मे मृगीयम्।
सद्यो जातप्रसवविकला किं करोमीति रङ्कौ
जल्पत्यम्भोधरशतमभूदम्बुदानप्रसक्तम्॥२०॥

अन्वय- तुङ्गद्रुमचयशिखाचुम्बकैः ज्वालैः दाववह्निः विष्वक् धावति। अहह गहने मे इयं प्रेयसी मृगी सद्यो जातप्रसवविकला किं करोमि इति रङ्कौ जल्पति अम्भोधरशतम् अम्बुदानप्रसक्तम् अभूत्॥२०॥

अनुवाद-ऊँचे पेड़ों की चोटी को चूमने वाली लपटों से दावाग्नि चारों ओर दौड़ रही है (व्याप्त हो रही है)। कष्ट है गहन (वन) में मेरी यह प्रेयसी मृगी शीघ्र किये हुए प्रसव से विकल है। 'क्या करूँ' ऐसा मृग के कहने पर (बोलने पर) सैकड़ों बादल जल देने के लिए (बरसाने के लिए) तैयार हो गये॥२०॥

दिशि दिशि दरचञ्चत्कोरकालीसुगन्ध-
प्रमुदितजनचित्तां मालतीं संविहाय।
मधुकर तव युक्तो दानलोभागतस्य
प्रमदकरिकराग्रे क्षिप्तधूलीनिपातः॥२१॥

अन्वय- मधुकर! दरचञ्चत्कोरकालीसुगन्धप्रमुदितजनचित्तां मालतीं संविहाय दानलोभागतस्य तव प्रमदकरिकराग्रे क्षिप्तधूलीनिपातः युक्तः॥२१॥

अनुवाद-हे भ्रमर! घाटियों में लहराती हुई अर्धविकसित पुष्पश्रेणी की सुगन्ध से लोगों के चित्त को प्रसन्न कर देने वाली मालती को सम्यक् रूप से छोड़कर तुम्हारा, दानजल के पान के लोभ से आये हुए मदमत्त हाथियों की सूँड़ के अग्रभाग से उठाई जाती हुई (फेंकी जाती हुई) धूलि में गिरना (क्या) उचित है?॥२१॥

नानारूपविचित्रपक्षरुचिता नेत्रातिसौख्यप्रदा-
स्ते ते सन्तु कपोतखञ्जनशिखिक्रौञ्चादयो नीडजाः।
भिन्नः कोऽपि स कोकिलः पुनरहो यत्कण्ठकोशादिदं
निर्यातं कलकूजितं वितनुते पीयूषधारासुखम्॥२२॥

अन्वय- नानारूपविचित्रपक्षरुचिराः नेत्रातिसौख्यप्रदाः कपोतखञ्जनशिखिक्रौञ्चा- दयः ते ते नीडजाः सन्तु। अहो! यत्कण्ठकोशात् निर्यातम् इदं कलकूजितं पीयूषधारासुखं वितनुते, स कोकिलः पुनः कोऽपि धन्यः॥२२॥

अनुवाद-अनेक प्रकार के रूपों एवं चित्रविचित्र पंखों से सुन्दर, नेत्रों को अत्यन्त सुख प्रदान करने वाले कबूतर, खञ्जन, मयूर, क्रौञ्चआदि वे वे घोसलों में पैदा होने वाले पक्षी (संसार में भले ही) हैं। आश्चर्य है कि जिसके कण्ठकोश से निकला हुआ यह सुन्दर कूजन अमृत की धारा के सुख को (अमृत की धारा सरीखे आनन्द को) विशेष रूप से उत्प्रेरित करता है (प्रदान करता है) वह कोकिल फिर कोई धन्य (ही) है॥२२॥

कदाचिन्माकन्दे विदलदरविन्दे क्वचिदपि
क्वचित्कुन्दे वृन्दे विविधवनवाटीसुमनसाम्।
मधुस्पन्दे तिष्ठंस्तव तु मकरन्दे धृतमति-
र्मिलिन्देन्द्रो नायं भवति किल मालत्यविकलः॥२३॥

अन्वय- मालति! कदाचित् माकन्दे क्वचित् अपि विदलदरविन्दे क्वचित् कुन्दे विविधवनवाटीसुमनसाम् वृन्दे तिष्ठन् मधुस्पन्दे तव मकरन्दे धृतमतिः अयं मिलिन्देद्रः तु किल अविकलः न भवति॥२३॥

अनुवाद-हे मालती! कभी माकन्द पर कभी विदलित होते हुए कमल पर, कहीं कुन्दपर, विविधप्रकार के वृक्षों वाली वनवाटिका के पुष्प समूह पर बैठता हुआ, मधुस्पन्द वाले मकरन्द में अपना ध्यान लगाया हुआ यह भ्रमरराज तो निश्चित रूप से अविकल नहीं होता है (अर्थात् हर पल मधु के लिए व्याकुल रहता है)॥२३॥

दन्तावल चलपल्लवपल्लवमिह चर्व सुखेन चिरम्।
बिसदलकवलविलासं विस्मर करकल्पितं सरसः॥२४॥

अन्वय- दन्तावल। इह चलपल्लवपल्लवम् चिरम् सुखेन चर्व। करकल्पितं सरसः बिसदलकवलविलासम् विस्मर॥२४॥

अनुवाद-हे हाथी! यहाँ हिलते हुए पल्लवों को बहुत समय तक सुखपूर्वक चबाओ। सूँड़ के द्वारा परिकल्पित तालाब के कमलदलों के कवलविषयक विलास को भूल जाओ॥२४॥

मालिन्यं शिशिरैः कृतं विरचितं झञ्झामरुद्वेल्लनैः
शाखाजालविमोटनं कवलनं जातं दवाग्नेरपि।
एतावत्यपि दुर्दशा विधिवशादेतस्य जाता तरो-
रामूलं न पपात चेदथ मधौ स्यादेव काचिद्द्युतिः॥२५॥

अन्वय- शिशिरैः मालिन्यं कृतम्। झञ्झामरुद्वेल्लनैः शाखाजालविमोटनम् विरचितम्। दवाग्नेः अपि कवलनम् जातम्। विधिवशात् एतस्य तरोः एतावती अपि दुर्दशा जाता, आमूलं न पपात। अथ चेत् मधौ काचिद् द्युतिः स्यात् एव॥२५॥

अनुवाद-ठण्ठी के द्वारा मलिनता (उत्पन्न) कर दी गयी। झञ्झावात के झकोरों के द्वारा शाखा समूह के तोड़ने की क्रिया सम्पन्न कर ली गयी। दावाग्नि का भी कवलन (वन को जला देने वाला) कार्य पूर्ण हो गया। भाग्यवश इस वृक्ष की इस प्रकार की भी दुर्दशा हो गयी (फिर भी यह) जड़ से नहीं गिरा। (इस आशा से कि) इसके बाद शायद वसन्त में कोई शोभा हो ही जाय (प्राप्त ही हो जाय)॥२५॥

अग्रे देवद्रुमवनमिदं तस्य काचित्पुरो मे
शाखा सद्यो द्रवदतिरसारम्भिणी मञ्जरीयम्।
तस्यां चेतो वलति बहुशो मामकं नाम कञ्चिद्
धातुश्चेतोवलनकलया कालमासादयामि॥२६॥

अन्वय- अग्रे इदं देवद्रुमवनम्। मम पुरः तस्य काचित् सद्यः द्रवदतिरसारम्भिणी इयं शाखामञ्जरी। तस्यां बहुशः मामकं कञ्चित् चेतो नाम वलति। धातुश्चेतोवलनकलया कालम् आसादयामि॥२६॥

अनुवाद-आगे यह कल्पतरूपवन है। मेरे सामने उसकी कोई, द्रवित होते हुए अधिकाधिक रसों का सम्यक् प्रकार से आरम्भण कराने वाली यह शाखा (में लगी हुई) लता है। उसमें बार बार मेरा कोई चित्त भले ही अनुरक्त हो रहा है, मैं तो विधाता की चित्तानुरक्तीकरणकला से समय का उपभोग (लाभ) कर रहा हूँ॥२६॥

जाने मन्दरसुन्दरोदरदरोदञ्चत्प्रसूनावली-
व्यालीढा विहरन्ति ते मधुकराः संसारसारायिताः।
जृम्भारम्भहठावगुण्ठितभुजारम्भावतंसीभवन्
मन्दारस्फुटमञ्जरीपरिगतो भृङ्गोऽयमेकः परम्॥२७॥

अन्वय- ते संसारसारायिताः मन्दरसुन्दरोदरदरोदञ्चत्प्रसूनावलीव्यालीढाः मधुकराः विहरन्ति, जाने। परम् जृम्भारम्भहठावगुण्ठितभुजारम्भावंतसीभवन् मन्दारस्फुटमञ्जरीपरिगतः अयम् एकः भृङ्गः॥२७॥

अनुवाद-वे संसार के तत्त्वभूत, मन्दराचल के रमणीक प्रान्तभाग में विद्यमान गुफा से ऊपर की ओर विकसित होती हुई पुष्प श्रेणी को विशेषरूप से चूसने मे लगे हुए भौंरे घूम रहे हैं, जानता हूँ। किन्तु जमुहाई के आ जाने के कारण हठात् अवगुण्ठित भुजाओं वाली रम्भा (नायिका) का कर्णाभूषण बनता हुआ मन्दार की विकसित लताओं से घिरा हुआ यह एक (अकेला ही) भौंरा है॥२७॥

उत्पत्यावासवाटीकुसुमपरिमलाद्दिग्विभागे प्रसून-
स्तोमान्निःसृत्य पङ्केरुहमयसरसो निर्गतो यो मिलिन्दः।
सोऽयं केलीकलापाकुलसकलसुरस्त्रीकरान्दोललोल-
न्मन्दाकिन्यम्बुजालीपरिमलमिलनादेव भूयाद्विशोकः॥२८॥

अन्वय- आवासवाटीकुसुमपरिमलात् दिग्विभागे उत्पत्य प्रसूनस्तोमात् निःसृत्य पङ्केरुहमयसरसः यः मिलिन्दः निर्गतः। सः अयम् केलीकलापाकुल-सकलसुरस्त्रीकरान्दोललोलन्मन्दाकिन्यम्बुजालीपरिमलमिलनात् एव विशोकः भूयात्॥२८॥

अनुवाद-आवास की वाटिका में विद्यमान फूलों के पराग से दिक् प्रान्त में उछलकर (उड़कर) पुष्पसमूह से निकलकर कमलमय तालाब से जो भौंरा बाहर चला गया है वह यह (भौंरा) सुरतक्रीडा के लिए आकुल समस्त देवाङ्गनाओं के हाथों के आन्दोलन से चञ्चल होती हुई मन्दाकिनी में उत्पन्न होने वाली कमलश्रेणी के पराग के प्राप्त होने से ही शोकरहित हो सकता है (उसे शोकरहित होना चाहिए)॥२८॥

आपीयामरशाखिसौरभभरं रम्भादिसम्भावनां
सम्भाव्य श्रवणान्तपाति नयनान्दोलप्रमोदोदयम्।
लब्ध्वा मञ्जुलपारिजातकुसुमे हिन्दोलिकान्दोलनं
कृत्वा कोमलगुञ्जितं विरचयन्भृङ्गोऽयमागन्तुकः॥२९॥

अन्वय-अमरशाखिसौरभभरम् आपीय रम्भादिसम्भावनां सम्भाव्य श्रवणान्तपाति नयनान्दोलप्रमोदोदयम् लब्ध्वा मञ्जुलपारिजातकुसुमे हिन्दोलिकाऽऽन्दो- लनं कृत्वा कोमलगुञ्जितं विरचयन् अयं भृङ्गः आगन्तुकः॥२९॥

अनुवाद-सुरतरु की सुगन्धियों को (सौरभभार को) सम्यक् रूप से पीकर, रम्भा आदि की सम्भावनाओं को सम्भावित कर कानों के अन्त तक प्रसारित होने वाले नेत्रों के आन्दोलन (सञ्चालन) से उद्भूत आनन्दातिरेक का अनुभव कर, मञ्जुल पारिजात पुष्प के हिंडोले में झूलकर मधुरगुञ्जनध्वनि की रचना करता हुआ यह भौंरा आना चाह रहा है (आगन्तुक है)॥२९॥

आस्ते संसारसारा सरससरसिजामोदधारा प्रकारा-
वापी सा पीनभृङ्गावलिकलितकलाकौशला चेति विद्मः।
सेव्या मन्दारवाटी तदुपगतरसैः केलिसञ्चारघाटी
कर्तव्या स्वर्वधूटीस्फुरदधरतटी चुम्बिनीयेति चेतः॥३०॥

अन्वय-सा संसारसारा सरससरसिजामोदधाराप्रकारा भृङ्गावलिकलितकला वापी आस्ते इति विद्मः। मन्दारवाटी तदुपगतरसैः केलिसञ्चारघाटी सेव्या। स्फुरदधरतटी स्वर्वधूटी चेतः चुम्बनीया इति कर्तव्या॥३०॥

अनुवाद-वह संसार की साररूप, रसमय कमल की सुगन्धि धारा से आप्लावित भौंरों के समूह से उत्पादित कला को धारण करने वाली पोखरी है। ऐसा (हम लोग) जानते हैं। मन्दारवाटी तथा उससे उद्गत (अधिगत) रसों से युक्त कामक्रीड़ा के

सञ्चार को धारण करने वाली घाटी सेवनीय है। फड़फडाते हुए अधररूपी तटवाली स्वर्गांगना हृदय से चुम्बनीय है, ऐसा (मानकर) (उसे) हृदयचुम्बनीया बनाया जाना चाहिए॥३०॥

नीतः कालः कमलकुसुमैः केनचिद् वापिकायां
तस्यां केचित् तटभुवि लतासौरभैः सानुरागाः।
स्वस्थाः केचित् गृहतरुलतामोदमास्वादयन्तः
कश्चिद् भृङ्गो भ्रमति विकलः पारिजाताभिलाषी।।३१।।

अन्वय- केनचित् वापिकायाम् कमलकुसुमैः कालः नीतः। तस्यां तटभुवि केचित् लतासौरभैः सानुरागाः। केचित् गृहतरुलतामोदम् आस्वादयन्तः स्वस्थाः। कश्चित् पारिजाताभिलाषी विकलः भृङ्गः भ्रमति।।३१।।

अनुवाद-किसी (भौंरे) के द्वारा पोखरी में कमल के फूलों के साथ समय बिताया गया है। उस तटभूप्रदेश में कुछ (भौंरे) लता की सुगन्धि से अनुराग युक्त हैं। कुछ घर के तरुओं एवं लताओं की सुगन्ध का आस्वादन करते हुए स्वस्थ हैं। कोई पारिजात पुष्प का इच्छुक विकल भौंरा घूम रहा है॥३१॥

भ्रान्त्वा दिग्वलयं सरोजनिलयं संविश्य पद्मावली-
सौरभ्यैरभिषिच्य पक्षयुगलं सद्यो मृणालीदलैः।
कृत्वा चञ्चुपुटस्य कौशलविधिं नादैर्जनाह्लादनै-
रापूर्याखिलमम्बरोदरमसौ हंसो हि संशोभते।।३२।।

अन्वय- दिग्वलयं भ्रान्त्वा सरोजनिलयं संविश्य पद्मावलीसौरभ्यैः पक्षयुगलम् अभिषिच्य सद्यः मृणालीदलैः चञ्चुपुटस्य कौशलविधिम् कृत्वा जनाह्लादनैर्नादैः अखिलम् अम्बरोदरम् आपूर्य हि असौ हंसः संशोभते।।३२।।

अनुवाद-दिशा रूपी वलय में (दिशाओं में) घूम कर, कमल के घर में प्रवेशकर, कमलश्रेणी की सुगन्धि से दोनों पंखों को अभिषिक्त कर, शीघ्र कमलिनी के पत्तों से चञ्चुपुट की कुशलता को दर्शाकर, लोगों को प्रसन्न कर देने वाली ध्वनियों से सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त कर के ही यह हंस सुशोभित हो रहा है॥३२॥

भङ्क्त्वा कोदण्डमैशं सकलनृपपुरो जानकीपाणिकीर्णां
मालां स्वीकृत्य भूमीततपरमपदं प्राप्तमुत्सृज्य धर्मात्।
अङ्गीकृत्यातिकष्टं विकटवनतटीवासतो वारिराशेः
पारं गत्वा च हित्वा त्रिदशरिपुगणान् भाति रामादृते कः॥३२॥

अन्वय- सकलनृपपुरः ऐशं कोदण्डम् भङ्क्त्वा जानकीपाणिकीर्णाम् मालाम् स्वीकृत्य धर्मात् प्राप्तम् भूमीततपरमपदम् उत्सृज्य विकटवनतटीवासतः अतिकष्टम् अङ्गीकृत्य वारिराशेः पारं गत्वा त्रिदशरिपुगणान् हत्वा रामात् ऋते कः भाति?॥३३॥

अनुवाद-समस्त राजाओं के सामने शिव के धनुष को तोड़कर, सीता के हाथों के द्वारा पहनाई गयी माला को स्वीकार करके धर्म से प्राप्त पृथ्वीपर्यन्त व्याप्त परमपद (नृपत्व) को त्यागकर, विकटवनप्रदेश में निवास से उत्पन्न अत्यन्त कष्ट को अङ्गीकार कर, समुद्र के पार जाकर देवताओं के शत्रु राक्षसराज रावण को तथा उसके गणों को मारकर, राम के अलावा कौन सुशोभित हो रहा है?॥३३॥

अथ नीतिश्लोकाः

किं मानैर्यदि साहसो नहि किमुद्योगैर्न चेत्तत्फलम्
किं क्रोधैर्यदि नारितापनविधिः किं विद्यया नो यदि।
सत्कर्माश्रयणं कुलैः किमु न चेत्तादृक्क्रिया किं तपो-
ऽभ्यासैर्नो यदि सर्वतो नियमनं सर्वेन्द्रियाणां सदा॥३४॥

अन्वय- यदि साहसो नहि, मानैः किम्? चेत् तत्फलम् न, उद्योगैः किम्? यदि अरितापनविधिः न क्रोधैः किम्? यदि सत्कर्माश्रयणम् न विद्यया किम्? चेत् तादृक् क्रिया न, कुलैः किम्? यदि सर्वेन्द्रियाणाम् सदा सर्वतो नियमनम् न तपोऽभ्यासैः किम्?॥३४॥

अनुवाद-यदि साहस नहीं है तो अभिमानों से क्या प्रयोजन? यदि उसका फल नहीं है तो उद्यमों से क्या प्रयोजन? यदि शत्रु को समाप्त करने की क्रिया नहीं आती तो क्रोध से क्या प्रयोजन? यदि सत्कर्मो का सहारा (या आचरण) नहीं है तो विद्या से क्या प्रयोजन? यदि कुलप्रतिष्ठानुरूप आचरण नही होता है तो वंशों से क्या प्रयोजन?

यदि समस्त इन्द्रियों का सदैव हर प्रकार से नियमन नहीं है तो तपस्या के अभ्यासों से क्या प्रयोजन?॥३४॥

विद्वच्चेतो विभाव्यं पिशुनजनमनः क्षोभकं शोभमानं
सर्वाकारैररीणां हृदयविदलनं दर्शनं सत्क्रियाणाम्।
अन्तर्भावातिवक्रं बहिरति सरलं धीरताधारभूतं
सभ्यानामन्त्रयन्तो वचनविरचनं केऽपि कुर्वन्ति धीराः॥३५॥

अन्वय- पिशनुजनमनः क्षोभकं शोभमानं सर्वाकारैः अरीणाम् हृदयविदलनम् सत्क्रियाणां दर्शनं अन्तर्भावातिवक्रं बहिः अतिसरलम् धीरताधीरभूतं विद्वच्चेतः विभाव्यम्। के अपि धीराः सभ्यान् आमन्त्रयन्तः वचनविरचनम् कुर्वन्ति॥३५॥

अनुवाद-चुगुलखोरों के मन को क्षुब्ध करने वाले, शोभित होते हुए (शोभित होने वाले) समस्त आकारों से शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर कर देने वाले, सत्क्रियाओं के दर्शन (सत्क्रियाओं को दिखाने वाले), हृदय के अन्दर विद्यमान भावाधिक्य से नितान्त वक्र (झुके हुए), बाहर से अत्यन्त सरल धीरता के आधारभूत विद्वानों का चित्त (हृदय) अनुष्ठेय है (विभावन के योग्य है)। कुछ धीरपुरुष, सभ्यों को आमन्त्रित करते हुए (ऐसा) वचनविरचन करते हैं॥३५॥

उद्योगं सन्दधानःस्थिर इव सकलं वञ्चयन् साधुतुल्यो
वैकल्यव्यग्रचित्तः सुखित इव रसान् कल्पयन् निर्विकारः।
पश्यन्नानाविकारांश्च्युत इव विगुणैदर्शयन्दर्पमुच्चै-
रव्यग्रः साधुकृत्यं कलयति सकलं कोऽपि धन्यो मनीषी॥३६॥

अन्वय-उद्योगं सन्दधानः स्थिर इव, सकलं वञ्चयन् साधुतुल्यः, वैकल्यव्यग्रचित्तः सुखित इव च्युतः रसान् कल्पयन् नानाविकारान् पश्यन् निर्विकारः इव उच्चैः विगुणैः दर्प दर्शयन् अव्यग्रः कोऽपि धन्यः मनीषी सकलं साधुकृत्यं कलयति॥३६॥

अनुवाद-उद्यम को करता हुआ भी स्थिर जैसा, सारे लोगों को ठगता हुआ भी साधु सरीखा, विकलता से व्यग्र चित्त (दिखता हुआ)भी आनन्दित जैसा, धुत होकर रसों की कल्पना करता हुआ नाना प्रकार के विकारों को देखता हुआ भी

निर्विकार जैसा, तेजी के साथ गुणों के द्वारा अभिमान दिखाता हुआ (भी) व्यग्रताशून्य कोई धन्य मनीषी सारे सज्जनों के कार्य को सम्पन्न कर रहा है॥३६॥

कश्चित्कल्याणकृत्यं कलयति यशसा कोऽपि लुब्धः सुविद्या-
सक्तः कश्चिद् वधूनामविरलरभसोद्योगयोगप्रसिद्धः।
कश्चिद् दानैकवीरः सकरुणहृदयः कोऽपि सङ्ग्रामशूरः।
सर्वानेतान् विधत्ते जगति पुनरहो कोऽपि धन्यो मनीषी॥ ३७॥

अन्वय- कश्चित यशसा कल्याणकृत्यं कलयति। कोऽपि लुब्धः सुविद्यासक्तः, कश्चित् वधूनाम् अविरलसभसोद्योगयोगप्रसिद्धः, कश्चिद् दानैकवीरः सकरुणहृदयः, कोऽपि सङ्ग्राम शूरः। अहो! कोऽपि धन्यः मनीषी जगति पुनः एतान् सर्वान् विधत्ते॥ ३७॥

अनुवाद-कोई यश के साथ कल्याणमय कृत्यों का सम्पादन कर रहा है। कोई लोभी बनकर सुन्दर विद्या को प्राप्त करने में आसक्त है। कोई स्त्रियों के गाढोद्वेग जन्य सुरतोद्योग की सम्बद्धता से प्रसिद्ध है (सुरतोद्योग से जुड़ने में दक्ष है)। कोई दानैकवीर करुणहृदय है। कोई संग्रामयोद्धा है। आश्चर्य है कि कोई धन्य मनीषी (ही) संसार में फिर इन सभी (गुणों) को धारण करता है॥३७॥

वैराग्यं दृढमस्ति चेत्किमु जनासङ्गैः श्मशानेन किम्
चेदन्तस्तरलायमानमखिलं प्रीतिर्न चेत्किं गुणैः।
वैदेश्यैः किमु नो यदुद्यमविधिर्धैर्येण चेत्किं महद्-
व्यापारैरुपकारिता यदि न तद्रूपप्रसादेन किम्॥३८॥

अन्वय- चेत् दृढं वैराग्यम् अस्ति, जनासङ्गैः किम्?। चेत् तरलायमानम् अन्तः, श्मशानेन किम्? चेत् अखिलप्रीतिःन, गुणैः किम्? यदि उद्यमविधिः न, वैदेश्यैः किमु? चेत् धैर्यं न, महद्व्यापारैः किम्? उपकारिता यदि न, तद्रूपप्रसादेन किम्?॥३८॥

अनुवाद-यदि दृढ़ वैराग्य है (तो) लोगो के साथ रहने से क्या? यदि तरलायमान सरस हृदय है (तो) श्मशान से क्या? यदि सब के प्रति प्रेम नहीं है (तो) गुणों से क्या? यदि उद्योग का विधान नहीं है (तो) विदेशों में रहने से क्या? यदि धैर्य

नहीं है (तो) बड़े बड़े व्यापारों से क्या? यदि परोपकार की भावना नहीं है (तो) रूपगत प्रसन्नता से क्या? (रूप एवं खुशी से क्या?)॥३८॥

उद्योगं कुरु निर्भरं वस रिपूद्योगं सदा भावय
स्वीयं स्वाधिकमेव वैभवविधिं चित्ते चिरं चिन्तय।
साहाय्येन कृपाणमेव गणय क्षोणीभरं संहर
प्राज्ञञ्चापि समीप एव कलय क्षोणीपते सर्वदा॥३९॥

अन्वय-क्षोणीपते! उद्योगं कुरु। निर्भरम् वस। सदा स्वीयं रिपूद्योगं भावय। चित्ते स्वाधिकं वैभवविधिम् एव चिरं चिन्तय। कृपाणम् एव साहाय्येन गणय। क्षोणीभरं संहर, च सर्वदा प्राज्ञम् समीपे एव कलय॥३९॥

अनुवाद-हे पृथ्वीपति! उद्योग करो। स्वावलम्बी होकर निवास करो। सदैव अपने शत्रु की चाल (प्रवृत्ति) को समझो, हृदय में अपनी अधिकतम (अधिकाधिक) वैभव प्राप्त करने की विधि को ही बहुत समय तक सोचो। तलवार को ही सहायक समझो। (अपने से पृथक्) राजा का (राजाओं का) संहार करो और सदैव प्राज्ञ को (अपने) समीप ही रखो॥३९॥

सङ्ग्रामे कालरूपः सदसि सुरपतिर्विद्वदालापयोगे
वागीशः कामदेवः समदवरवधूविभ्रमे भिक्षुकेषु।
साक्षात्कल्पद्रुमाणां वनमरिभवने धूमकेतुः प्रजानां
विश्रामस्यैकधाम स्फुरति नरपतिः कोऽपि कल्याणमूर्तिः॥४०॥

अन्वय-सङ्ग्रामे कालरूपः, सदसि सुरपतिः, विद्वदालापयोगे वागीशः, समदवरवधूविभ्रमे कामदेवः, भिक्षुकेषु साक्षात्कल्पद्रुमाणाम् वनम्। अरिभवने धूमकेतुः। प्रजानां विश्रामस्य एकधाम कोऽपि कल्याणमूर्तिः नरपतिः स्फुरति॥४०॥

अनुवाद-युद्ध में कालरूप, सभा में इन्द्र, विद्वानों से बातचीत के समय वागीश, मदमत्त सुन्दरनायिका के विभ्रम के समय कामदेव (विलासों के प्रति कामदेव), भिक्षुकों के प्रति साक्षात् कल्पद्रुम का वन, शत्रु के घर में धूमकेतु, प्रजाओं के विश्राम (सुख) का एक मात्र केन्द्र कोई कल्याणमूर्ति राजा स्फुरित (सुशोभित) हो रहा है॥४०॥

मा कोपं कुरु विप्र मा नरपते कोपं विमुञ्च ध्रुवं
मासार्थे व्रज चौर माध्वग सदा सार्थाद्बहिः सञ्चर।
मा वक्रोक्तिसहस्रवञ्चनविधिं कुर्याः क्वचित्पण्डित
त्वं मा मुञ्च सुवक्रभाववचनारम्भं क्वचित्कामिनि॥४१॥

अन्वय- विप्र! कोपं मा कुरु। नरपते! ध्रुवम् कोपम् मा विमुञ्च। चौर! मासार्थे व्रज। अध्वग। सार्थाद् बहिः सदा मा सञ्चर। पण्डित! वक्रोक्तिसहस्र वञ्चनविधिं क्वचित् मा कुर्याः। कामिनि! सुवक्रभाववचनारम्भं त्वं क्वचित् मा मुञ्च॥४१॥

अनुवाद-हे ब्राह्मण! क्रोध मत करो। हे राजन्! निश्चित रूप से क्रोध को मत छोड़ दो। हे चोर! धान्य के लिए जाओ। हे राही! धनवानों के पास से दूर हर समय मत घूमो। हे पण्डित! सहस्रों वक्रोक्तियों से ठगने का विधान कहीं मत करना। हे कामिनी! सुन्दर एवं वक्रिम भाववचनों का आरम्भ (प्रयोग) तुम कहीं मत छोड़ना॥४१॥

अव्याजं सुकृतं सरोरुहदृशः सव्याजमालिङ्गनं
सक्रोधं रिपुशासनं सविनयं विद्वज्जनाभ्यर्थनम्।
सस्नेहं सुहृदानुरञ्जनमहो सोत्साहमोजो धनं
सत्यागोत्सवभोगमेव[भोग एव]हि जगन्मध्ये चिरं शोभते॥४२॥

अन्वय- अव्याजम् सुकृतम्, सरोरुहदृशः सव्याजम् आलिङ्गनम् सक्रोधम् रिपुशासनम्, सविनयं विद्वज्जनाभ्यर्थनम्, सुहृदां सस्नेहम् अनुरञ्जनम्, सोत्साहम् ओजो धनम् सत्यागोत्सवभोगः एव हि जगन्मध्ये चिरम् शोभते॥४२॥

अनुवाद-बिना किसी छल (बहाने) के पुण्य, कमलनयनी का सोद्देश्य (छल के साथ) आलिंगन, क्रोध के साथ शत्रुओं पर शासन, विनम्रता के साथ विद्वज्जनों का अर्चन (अथवा उनसे अभ्यर्थन), मित्रों का स्नेह के साथ अनुरञ्जन, उत्साह के साथ शारीरिक बल रूपी धन (ओजोरूपीवैभव), त्याग एवं उत्सव के साथ भोग ही संसार के मध्य में अरे! बहुत समय तक शोभित होता है (शोभित होते हैं)॥४२॥

वैमुख्यं पिशुने जने सुमुखता साधौ घृणा पातके
निष्ठा धर्मकथासु कोमलतरालापो जनाभ्यर्थने।
विद्वत्सेवनमर्थचिन्तनविधिश्चौदास्यवद् बन्धुता
नित्येव प्रतिवासरं विजयते लोके स्वभावात्सताम्॥४३॥

अन्वय- पिशुने जने वैमुख्यम्, साधौ सुमुखता, पातके घृणा, धर्मकथासु निष्ठा, जनाभ्यर्थने कोमलतरालापः, विद्वत्सेवनम्, अर्थचिन्तनविधिः, औदास्य- वद् बन्धुता सताम् स्वभावात् लोके नित्या इव प्रतिवासरं विजयते॥४३॥

अनुवाद-चुगुलखोर व्यक्ति के प्रति उपेक्षा, साधु के प्रति अपेक्षा, पापों के प्रति घृणा, धर्मकथाओं में निष्ठा, लोगों के द्वारा की जाने वाली अभ्यर्थना (याचना) में विनम्रतापूर्ण वाणी, विद्वानों का सेवन, अर्थ-चिन्तनकौशल, निःस्वार्थवत् मैत्री (यह सब) सज्जनों के स्वभाव से संसार में नित्य की भाँति (मानों नित्य होकर) प्रतिदिन विजयशील हो रहे हैं॥४३॥

कामिन्या नयनान्तयोर्नरपते मन्त्रे च बाणासने
कुल्यावारिणि वेगशालिनि हये यूनोर्मिथो भाषणे।
वात्यानीतरजोभरे नवघने विद्युल्लतायां पद-
न्यासे ताण्डवपण्डितास्वपि चिरं शोभावहा वक्रता॥४४॥

अन्वय-कामिन्याः नयनान्तयोः, नरपतेः मन्त्रे च बाणासने, कुल्यावारिणि, वेगशालिनि हये, यूनोः मिथः भाषणे, वात्यानीतरजोभरे, नवघने, विद्युल्लतायाम्, पदन्यासे, ताण्डवपण्डितासु वक्रता चिरं शोभावहा (भवति)॥४४॥

अनुवाद-नायिका के दोनों नेत्रकोणों में, राजा के मन्त्र में (सलाह में) और बाण के सन्धान में, नहर के जल में, वेगशाली घोड़े में, युवकयुवतियों के एकान्त भाषण में, आँधी के द्वारा लायी गयी धूलि के समुच्चय में, नवीनबादल में, विद्युल्लता में, पदन्यास में, ताण्डव की ताण्डव (नृत्य) की पण्डित नायिकाओं में वक्रता (भङ्गिमा) बहुत समय तक शोभाऽऽधायिनी होती है॥४४॥

सञ्चारे वरवर्णिनीचरणयोर्नव्याम्बुवाहोदये
सत्काव्यस्य विभावने वररणारम्भे महावीरयोः।
दूरादुत्सुककामिनोर्भुजलताबन्धे दलोन्मीलने
पद्मानामतिचारुतास्पदमहो शैथिल्यमालक्ष्यते॥४५॥

अन्वय-वरवर्णिनीचरणयोस्सञ्चारे नवाम्बुवाहोदये, सत्काव्यस्य विभावने; महावीरयोः वररणारम्भे, दूरादुत्सुककामिनोर्भुजलताबन्धे पद्मानां दलोन्मीलने अहो! अतिचारुतास्पदम् शैथिल्यम् आलक्ष्यते॥४५॥

अनुवाद-सुन्दररूपवाली स्त्री के चरणसञ्चार में, अभिनवजलवाही बादल के उठने में, सुन्दरकाव्य की भावाभिभूति में, महावीरों (महान् योद्धाओं) के भीषण युद्ध के आरम्भ में, दूर से ही समुत्सुक नायकनायिकाओं के भुजारूपी लताओं के बन्धन में, कमलरत्नों के उन्मीलन में अरे! अत्यन्त चारुतामयी शिथिलता सम्यक् रूप से दिखाई देती है॥४५॥

विद्यास्वादपराङ्मुखो नरपतिश्चेत्सेवितः किं यम-
द्वारप्राप्तिभयं तदा बहुजनप्रेम्णाकुला कामिनी।
चेदन्तर्विनिवेशिता किमपरं दुःखं विपत्तौ धन-
प्रौढोन्मादजनैः समं निवसतिः मृत्युस्तदा कः सताम्॥४६॥

अन्वय- चेत् विद्यास्वादपराङ्मुखः नरपतिः सेवितः, तदा यमद्वारप्राप्तिभयं किम्? चेत् बहुजनप्रेम्णाकुला कामिनी अन्तर्विनिवेशिता, अपरं दुःखम् किम्? विपत्तौ धनप्रौढोन्मादजनैः समं निवसतिः, तदा सताम् मृत्युः कः?॥४६॥

अनुवाद-यदि विद्या के आस्वाद से पराङ्मुख राजा की सेवा की जा रही है, तब यमराज के दरवाजे पर पहुँचने से प्राप्त होने वाला भय क्या? यदि अनेक लोगों के प्रति प्रेम से आकुल सुन्दरी हृदय में स्थान प्राप्त कर गयी, (तो) दूसरा दुःख क्या है? विपत्ति में धन की प्रौढि से अत्यन्त उन्मादी जनों के साथ (यदि) रहना पड़ रहा है (रहना पड़ जाय तो (फिर) सज्जनों की (इससे बढ़कर) मृत्यु क्या है? ॥४६॥

ऐरावतः सुरपुरीतिलकेन लक्ष्मीः
नारायणेन विबुधैरमृतञ्च लब्धम्।
शैलाधिराजतनयापतिरम्बुराशे-
र्दुर्देवदोषविहितानि विषानि लेभे॥४७॥

अन्वय-अम्बुराशेः सुरपुरीतिलकेन ऐरावतः लब्धः। नारायणेन लक्ष्मीः, च विबुधैः अमृतं लब्धम्। शैलाधिराजतनयापतिः दुर्देवदोषविहितानि विषानि लेभे॥४७॥

अनुवाद- समुद्र से सुरपुरीतिलक इन्द्र के द्वारा ऐरावत हाथी लिया गया। नारायण (विष्णु) के द्वारा लक्ष्मी ग्रहण की गयी, और देवताओं के द्वारा अमृत प्राप्त किया गया। शैलाधिराजतनया (पार्वती) के पति (महादेव) ने दुर्भाग्यजन्यदोष से निर्धारित विषों को प्राप्त किया॥४७॥

गृहद्वारे नार्थिप्रकरवरदानध्वनिरभू-
न्न पर्यङ्के कामाकुलयुवतिकाञ्चीकलरवः।
न विद्याविद्योतैर्व्यपगमदविद्यामयतमः
किमर्थं जातं मे जनुरिह न विद्मो वयमिति॥४८॥

अन्वय-गृहद्वारे अर्थिप्रकरवरदानध्वनिर्न अभूत्। पर्यङ्के कामाकुलयुवतिकाञ्चीकलरवः न। विद्याविद्योतैः अविद्यामयतमः न व्यपगमत्। इह किमर्थं मे जनुः जातम् इति वयं न विद्मः॥४८॥

अनुवाद-घर के दरवाजे पर याचकसमूह के लिए वरदान की ध्वनि (गुञ्जित) नहीं हुई। शय्या पर कामातुर नायिका की करधनी का कलरव नहीं (हुआ) विद्या के प्रकाश से अविद्या का अन्धकार समाप्त नहीं हुआ। इस भूलोक में किसके लिए मेरा जन्म हुआ, ऐसा हम लोग नहीं जानते॥४८॥

कामिनीकुचविमर्दको रिपुव्यूहखण्डककृपाणकर्कशः।
याचकप्रकरचित्तचुम्बितः शोभते कर उदारचेतसाम्॥४९॥

अन्वय-उदारचेतसाम् कामिनीकुचविमर्दकः रिपुव्यूहखण्डककृपाणकर्कशः याचकप्रकरचित्तचुम्बितः करः शोभते॥४९॥

अनुवाद-उदारहृदयवालों का कामिनी के स्तनों का विशेष रूप से मर्दन करने वाला, शत्रुओं की सेना को नष्ट करने वाले कृपाण को धारण करने सें कर्कश, याचकसमूह के चित्त से चूमा हुआ हाथ सुशोभित हो रहा है॥४९॥

शठो नृपपुरस्कृतः स च परीक्षको धीमतां
नृपो रिपुभयाकुलः स च सुमन्त्रिमन्त्रच्युतः।
विदेशविमुखो गुणी स च सुखैकबद्धस्पृहः
मुनिर्निखिलवञ्चकः किमथ लोकशोकास्पदम्॥५०॥

अन्वय-स शठः नृपपुरस्कृतः च धीमतां परीक्षकः। स नृपः रिपुभयाकुलः च सुमन्त्रिमन्त्रच्युतः। स गुणी विदेशविमुखः च सुखैकबद्धस्पृहः। मुनिः निखिलवञ्चकः, अथ किम् लोकशोकास्पदम्॥५०॥

अनुवाद-वह धूर्त राजा से पुरस्कृत है, और बुद्धिमानों का परीक्षक है॥ वह राजा शत्रु के भय से आकुल है, और सुबुद्ध मन्त्रियों के मन्त्र से (मन्त्रणा से) च्युत है। वह गुणी विदेश जाने से विमुख है, और सुख मात्र की अभिलाषा से आबद्ध है। मुनि संसार को ठगने वाला है। इसके बाद (इसके अलावा) क्या (और) लोक के लिए शोकास्पद है (हो सकता है) ॥५०॥

भूयांसो भूमिपाला प्रतिनृपतिपुरो जृम्भमाणप्रतापा
जाता लक्ष्मीविलासालसमिह वसुधाधारणे सम्प्रवृत्ताः।
वैदग्ध्यं बाहुवीर्यं क इह किल वदेदत्र लक्ष्मीविलासं
तेषामेषा न जीवेत्कविवदनसुधास्यन्दिनी भारती चेत्॥५१॥

अन्वय- इह प्रतिनृपतिपुरः जृम्भमाणप्रतापा लक्ष्मीविलासालसम् वसुधाधारणे सम्प्रवृत्ताः भूयांसः भूमिपालाः जाताः। चेत् अत्र कविवदनसुधास्यन्दिनी एषा भारती न जीवेत् तेषां वैदग्ध्यं बाहुवीर्यं किल कः इह वदेत्?॥५१॥

अनुवाद-यहाँ पर शत्रुराजाओं के समक्ष जृम्भमाण (अभ्युदीयमान) प्रताप वाले, लक्ष्मी के विलास एवं तद्गत आलस्य से अभिभूत होते हुए पृथ्वी का पालन पोषण करने

में प्रवृत्त बहुत से राजा पैदा हुए। यदि यहाँ कवि की मुखसुधा से प्रवहमाण यह वाणी जीवित न होती (रहे) (तो) उन (राजाओं) के वैदग्ध्य (एवं) भुजाबल को निश्चित रूप से यहाँ कौन बताता (बताये) (बता सकता है)?॥५१॥

वाचां देवि निवेदयामि भवतीं नत्वा च कृत्वाञ्जलिं
मा भूयोऽपि कुभूमिपालपुरतः कुर्याः क्वचिन्नर्तनम्।
मज्जिह्वामवलम्ब्य सम्प्रति परं सान्द्रं प्रमोदोदये
चण्डीपादसरोजचिन्तनसरोमध्येऽवगाहं कुरु॥५२॥

अन्वय- वाचां देवि! भवतीं नत्वा अञ्जलिं च कृत्वा विनिवेदयामि भूयः क्वचिदपि कूभूमिपालपुरतः नर्तनं मा कुर्याः। सम्प्रति परं प्रमोदोदये मज्जिह्वामवलम्ब्य चण्डीपादसरोजचिन्तनसरो मध्ये सान्द्रम् अवगाहं कुरु॥५२॥

अनुवाद-हे वाणी की देवी सरस्वती! आप को प्रणाम कर अंजलि बाँधकर निवेदन करता हूँ (कि) बार बार कहीं भी दुष्ट राजा के समक्ष नृत्य (प्रसार) मत करना। इस समय परम प्रमोद के उदित हो जाने पर मेरी जिह्वा का सहारा लेकर चण्डी के चरणकमल के ध्यानरूपी सरोवर के बीच सघन अवगाहन (स्नान) करो॥५२॥

धिक् त्वां देवि वसुन्धरे पत पुनः पातालतोयोदरे
धिक् त्वां वारिधिकन्यके त्यज पुनः संसारमेतं द्रुतम्।
धिक् त्वां वाणि वदामि किं गुणवतां श्लाघाविधौ मत्सरै-
रेभिश्चेदवनीधरैरपि समं रन्तुं समुत्कण्ठसे॥५३॥

अन्वय- देवि वसुन्धरे! त्वां धिक्। पुनः पातालतोयोदरे पत। वारिधिकन्यके त्वां धिक्, पुनः एतं संसारं द्रुतं त्यज। वाणि! त्वां धिक्, मत्सरैः गुणवतां श्लाघाविषये किं वदामि। चेत् एभिः अवनीधरैः समम् अपि रन्तुं समुत्कण्ठसे॥५३॥

अनुवाद-हे देवी वसुन्धरा! तुम्हें धिक्कार है, फिर पाताल के जल के अन्दर गिर जाओ। हे समुद्रपुत्री लक्ष्मी! तुम्हें धिक्कार है, इस संसार को तुरन्त छोड़ दो। हे सरस्वती! तुम्हें धिक्कार है, मत्सरता के कारण गुणवानों की प्रशंसा के विषय में क्या कहूँ,

यदि तुम (सरस्वती) इन राजाओं के साथ भी अभिसार करने के लिए समुत्कण्ठित हो रही हो॥५३॥

समाधाय स्वाङ्के रतिशिथिलपङ्केरुहमुखीं
शयाने पर्यङ्के भज नयनपङ्केरुहयुगम्।
खरश्वासाभ्यासादिह भवति नाशास्पदमतो
न निद्रे त्वं क्षुद्रे कुरु मयि दरिद्रे निवसतिम्॥ ५४॥

अन्वय-हे पर्यङ्के शयाने निद्रे! स्वाङ्के रतिशिथिलपङ्केरुहमुखीं समाधाय नयनपङ्केरुहयुगम् भज, खरश्वासाभ्यासात् इह आशास्पदं न भवसि अतः मयि क्षुद्रे दरिद्रे निवसतिम् न कुरु॥५४॥

अनुवाद-हे पर्यङ्क पर सोती हुई नींद! अपनी गोद में सुखक्रीड़ा से शिथिल कमलवदना (नायिका) को सम्यक् रूप से धारण कर (लेकर) (उसके) नेत्ररूपी कमलयुगल का सेवन करो। गले से ली जाने वाली श्वास के अभ्यास से (खरखराहट भरी श्वास के अभ्यास से) यहाँ (तुम) आशास्पद (आशानुकूल) नहीं हो रही हो। (इसलिए) मुझ क्षुद्र दरिद्र में निवास मत करो॥५४॥

इति श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे अन्योक्तिनीतिप्रकरणम्

श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचितसकलरससारसङ्ग्रह में अन्योक्तिनीतिप्रकरणसमाप्त



शान्तरसप्रकरणम्

अथ शान्तो रसः

न सारोऽयं तारोच्छलितमणिहारो मृगदृशां
विहारो वामारोद्यमजनितभारो न रुचिरः।
विकारो वामारोचयधनमपारो विजयते
महामोहाकारो जलधिरिह हा रोदिमि ततः॥१॥

अन्वय- मृगदृशाम् अयम् तारोच्छलितमणिहारः सारः न। वामारोद्यमजनितभारः विहारः रुचिरः न। अपारः विकारः वामारोचयधनम् विजयते। हा! इह महामोहाकारः जलधिः, ततः रोदिमि॥१॥

शान्तरस

अनुवाद-मृगनयनियों का यह मोती की चमक से प्रस्फुटित होता हुआ मणिनिर्मितहार तत्त्व नहीं है। नायिका के अर्धव्यास (शरीरार्ध) में प्रतिपादित उद्यम से उद्भूत भारस्वरूप विहार रुचिर (रुचिवर्धक) नहीं है। अपार विकारास्पद नायिका के शरीरार्ध से इकट्ठा होने वाला धन विजयशील हो रहा है। कष्ट है कि (यह) यहाँ महामोहाकार समुद्र है। उससे (उसी से) रो रहा हूँ॥१॥

करालोऽयं कालो वसति पुरतस्तेन हि कथं
मनागप्यालोलस्तमिह सहसा लोकयसि रे।
सदा लोभे मग्नो भवसि बहुधालोचितधनो
न बालो भूयस्त्वं भव कुरु शिवालोचनविधिम्॥२॥

अन्वय- रे! अयं करालः कालः ते पुरतः वसति। आलोकः मनाक् अपि इह सहसा तं कथं नहि लोकयसि। बहुधा आलोचितधनः सदा लोभे मग्नो भवसि। भूयः बालः न भव। शिवालोचनविधिं कुरु॥२॥

अनुवाद-रे (मानव)! यह विकरालकाल तुम्हारे सामने निवास कर रहा है। चंचल (तुम) थोड़ा भी यहाँ अकस्मात् उसे (काल को) क्यों नहीं देखते हो। बहुत बार आलोचित धन वाले तुम हर समय लोभ में मग्न हो रहे हो। पुनः बच्चा न बनो। भगवान् (शङ्कर) के सर्वतः दर्शन के निमित्त विधियों (अनुष्ठान क्रियाओं) को करो॥२॥

कुरङ्गाक्षीसङ्गाकुलहृदयरङ्गानविरलं
विधत्से शृङ्गारं वपुषि किमनङ्गाशुगहतः।
क्वचिद् गङ्गातीरे सुललिततरङ्गावलियुते
लवं गाढं कृत्वा भजसि नहि गङ्गाधरपदम्॥३॥

अन्वय-अनङ्गाशुगहतः किं कुरङ्गाक्षीसङ्गाकुलहृदयरङ्गान् अविरलं शृङ्गारं वपुषि विधत्से। सुललिततरङ्गावलियुते गङ्गातीरे क्वचित् गाढं लवं कृत्वा गङ्गाधरपदं नहि भजसि॥३॥

अनुवाद-अनङ्ग (कामदेव) के वाण से मारे गये (तुम) क्यों हरिणनयनी के आलिङ्गन के लिए आकुल, हृदय के रंगो को (तथा) निरन्तरशृङ्गार को शरीर में धारण करते रहते हो (आत्मसात् करते रहते हो)। सुललित तरङ्गसमूह से युक्त गङ्गा के तट पर कहीं ध्यानपूर्वक समय का सूक्ष्मविभाजन करके गंगाधर (शिव) के चरणों को नहीं भजते हो॥३॥

चिदानन्दस्पन्दद्रवदमृतमस्पन्दमनिशं
पदद्वन्द्वं शम्भोर्नमदमरवृन्दं न रमते।
समानीयानन्दादरदलितमन्दारकुसुमं
जलं मन्दाकिन्याः सुकृतशतसन्दानकुशलम्॥४॥

अन्वय- सुकृतशतसन्दानकुशलम् मन्दाकिन्याः जलम् आनन्दादरदलितमन्दारकुसुमं समानीय चिदानन्दस्पन्दद्रवदमृतं नमदमरवृन्दं शम्भोः अस्पन्दम् पदद्वन्द्वम् अनिशं न रमते॥४॥

अनुवाद-सैकड़ों पुण्यों को प्रदान करने में समर्थ गंगा जल को (तथा) आनन्द एवं आदर से तोड़े गये मन्दार पुष्पों को ग्रहण कर चैतन्य ब्रह्म के स्पन्द से द्रवित होते हुए अमृत को धारण करने वाला (भगवान्) शिव का, किञ्चित् स्पन्द को अधिगत करने वाला (या निस्पन्द) चरणयुगल (क्या) निरन्तर सुशोभित (अभिभासित) नहीं हो रहा है?॥४॥

वृथागारास्तारापतिकिरणधारासमरुचः
सुधाधाराकारा अपि ललितदाराननरुचः।
वृथाराजद्वाराहितविविधभाराः सकनक-
प्रकाराः किं नाराधयसि नरनारायणपदम्॥५॥

अन्वय- तारापतिकिरणधारासमरुचः आगाराः वृथा। ललितदाराननरुचः सुधाधाराकाराः अपि (वृथा)। सकनकप्रकाराः राजद्वाराहितविविधभाराः वृथा। नरनारायणपदम् किं न आराधयसि॥५॥

अनुवाद-तारकमण्डल की किरणश्रेणी की भाँति कान्ति को धारण करने वाले गृह (भवनादिक) व्यर्थ हैं। ललितसुन्दरियों के मुख की कान्ति जैसी कान्ति को धारण करने वाले सुधा की धारा की तरह आकार (रूपादिक) भी व्यर्थ हैं। स्वर्णों के विविध प्रकार को आत्मसात् करने वाले राजद्वार से प्राप्त विविध भार (सामग्री-उपहार) व्यर्थ हैं। नरनारायण के चरणों की आराधना क्यों नहीं कर रहे हो?॥५॥

न बालामालापैरुपचर मृणालामलतरैः
कलानाथे किं रे नवकुसुममालासु किमथ।
मतङ्गे तुङ्गे वा सुललिततरङ्गे किमथवा
वधूसङ्गे रङ्गे परिहर चिरं गेहविषयान्॥६॥

अन्वय- रे! मृणालामलतरैः आलापैः बालां न उपचर। कलानाथे किम्? नवकुसुम-मालासु अथ किम्? तुङ्गे मतङ्गे वा सुललिततरङ्गे वधूसङ्गे अथवा रङ्गे किम्? चिरं गेहविषयान् परिहर॥६॥

अनुवाद-रे (मानव)! कमल की तरह कोमलतर (निर्मलतर) आलापों से सुन्दरी का उपचार मत करो। कलाओं का विज्ञ हो जाने पर भी क्या? अभिनव पुष्प की मालाओं के होते हुए भी क्या? घोड़ा हाथी या सुललित तरङ्गों वाली प्रियतमा के साथ या रंग (उमंग) के रहने पर (भी) क्या। हमेशा के लिए गृहगतविषयों (लौकिक-भौतिक-वासनासामग्रियों) को छोड़ दो॥६॥

कियद् गङ्गातीरं स्फुरदमलनीरं फलनम-
ल्लतालीनीरन्ध्रदुमचयकुटीरं विजयते।
तथापि त्वं व्यर्थं नृपतिकुलमर्थं विगणयन्
समभ्यर्थ्य क्लेशान् भजसि बहुदेशाटनपरः॥७॥

अन्वय- स्फुरदमलनीरं फलनमल्लतानीरन्ध्रद्रुमचयकुटीरं गङ्गातीरं कियत् विजयते। तथापि त्वं नृपतिकुलं बहु विगणयन् अर्थम् समभ्यर्थ्य व्यर्थं देशाटनपरः क्लेशान् भजसि॥७॥

अनुवाद-स्फुरित होते हुए स्वच्छ जलवाला, फल से झुकती हुई लताओं की श्रेणी तथा नीरन्ध्रद्रुम के समूह से युक्त कुटीरवाला गंगा का तट कितना सर्वोत्कर्षशील हो रहा है। फिर भी तुम राजकुल को बहुत समझते हुए अर्थ की याचना करके व्यर्थ ही देशाटन में संलग्न होकर क्लेशों को भोग रहे हो॥७॥

जडीभूतो मूढ त्वमसि निगडीयत्यपि वधू-
कटाक्षाली साक्षादखिलभयकक्षायितगतिः।
न कुम्भीपाकादि स्फुरति किमु दम्भीयसि वृथा
सुगम्भीरं भीमध्वनिजनितसम्भीषणविधिः॥८॥

अन्वय-मूढ! त्वं जडीभूतः असि। अखिलभयकक्षायितगतिः वधूकटाक्षाली अपि साक्षात् निगडीयति न। भीमध्वनिजनितसम्भीषणविधिः कुम्भीपाकादिः स्फुरति। किम् वृथा सुगम्भीरं दम्भीयसि॥८॥

अनुवाद-मूर्ख! तुम जड़ हो गये हो। अनेकभय से सीमित कर दिये गये गति वाली नायिका की कटाक्षश्रेणी भी साक्षात् रूप से हथकड़ी की तरह आचरण नहीं कर रही है। घोरध्वनि से उत्पादित डरावने व्यवहारवाला कुम्भीपाकादि नरक स्फुरित हो रहा है। क्यों व्यर्थ ही गम्भीरता के घमण्ड का प्रदर्शन कर रहे हो? ॥८॥

सुशीतायां सीतातटभुवि विगीताखिलरसः
परीतापं हित्वा परमलयनीतामपि मतिम्।
विधाय त्वं गीताभ्यसनपरिपीतां वरगुण-
प्रकाशेन स्फीतामिह कलय सीतापतिपदम्॥९॥

अन्वय- सुशीतायां सीतातटभुवि विगीताखिलरसः परीतापं हित्वा गीताभ्यसनपरिपीताम् परमलयनीताम् अपि मतिम् वरगुणप्रकाशेन स्फीताम् विधाय इह सीतापतिपदम् कलय॥९॥

अनुवाद-सुशीतल सीताकी तट की भूमि पर सारे रसों को गा लेने वाले (अनुभव कर लेने वाले तुम) परिताप को त्यागकर, गीता को अभ्यास से सर्वथा पी लेने वाली परमलय को प्राप्त करा दी गयी भी बुद्धि को श्रेष्ठ गुणप्रकाश से स्वच्छ (ज्योतिर्मयी) बनाकर यहाँ सीता के पति (श्रीरामचन्द्र) के चरण का सेवन करो॥९॥

वधूनेत्रान्दोलस्फुरितबहुकल्लोलगहनो
धनाशाशैवालो ज्वलितबहुकोपौर्वदहनः।
कुकर्मग्राहालीकलितबहुलोकग्रहविधिः
सुखक्लेशावर्तः स्फुरति परमेको जलनिधिः॥१०॥

अन्वय-वधूनेग्रान्दोलस्फुरितबहुकल्लोकगहनः धनाशाशैवालः ज्वलितबहुको- पौर्वदहनः कुकर्मग्राहालीकलितबहुलोकग्रहविधिः सुखक्लेशावर्तः एकः जलनिधिः परं स्फुरति॥१०॥

अनुवाद- स्त्री के नेत्रान्दोलन से स्फुरित होने वाली अनेकतरंगों से दुर्गम, धनों के आशारूपी शैवाल को धारण करने वाला, जलती हुई बहुविध क्रोधरूपी वड़वाग्नि को धारण करने वाला, कुकर्मरूपी ग्राहों की श्रेणी के द्वारा अधिगृहीत बहुविधलोक को ग्रहण कर लेने की (निगल जाने की) विधि सम्पन्न करने वाला, सुख एवं क्लेशरूपी भँवर वाला एक समुद्र तेजी के साथ स्फुरित हो रहा है॥१०॥

अमुस्मिन् पाथोधौ कति कति न मज्जन्ति हि जनाः
यशोविद्यानारीकुतुककुलशौर्यादिमणिभिः।
भृशं पूर्णास्तेषां पुनरपि निमज्जन्ति सहसा
भजन्ते तत्पारं पुनरहह केचित्सुमनसः॥११॥

अन्वय- अमुस्मिन् पाथोधौ कति कति जनाः न हि मज्जन्ति। यशो विद्यानारी-कुतुककुलशौर्यादिमणिभिः भृशं पूर्णाः अपि पुनःसहसा मज्जन्ति। अहह! तेषां केचित्सुमनसः तत्पारम् भजन्ते॥११॥

अनुवाद-इस समुद्र में कितने कितने लोग नहीं ही डूब जाते हैं। यश विद्या एवं नारीविषयक विविध इच्छाओं, शौर्यादिकों एवं मणियों से नितान्त पूर्ण भी (लोग) फिर अचानक डूब जाते हैं। अहह! (अरे!) उनमें कुछ सुन्दर मन वाले उस (जलनिधि) के पार पहुँचते हैं॥११॥

न मग्नो मोहोर्मिप्रकरपरिपातादपि न वा
मदावर्ते व्यस्तो भवति न च कोपोरगशतैः।
क्वचिद् दृष्टो नो वा पतति धनजंवालनिचये
सुधीः कोऽपि स्वैरं तरति भवपाथोधिमखिलम्॥१२॥

अन्वय- कोऽपि सुधीः मोहोर्मिप्रकरपरिपातात् अपि मदावर्ते न मग्नः च कोपोरगशतैः व्यस्तः दष्टः न भवति। वा क्वचिद् धनजंवालनिचये न पतति। (सः)

अखिलम् भवपाथोधिं तरति॥१२॥

अनुवाद-कोई शुद्धबुद्धिवाला मोहरूपी ऊर्मियों के समूह में गिर जाने से भी मदरूपी भँवर में न (तो) मग्न (होता है) और क्रोधरूपी सैकड़ों सर्पों से घिरा हुआ (भी) (उनके द्वारा) काटा नहीं जाता है। या कहीं धनरूपी सेवारों के समूह में नहीं गिरता है। (वह) सम्पूर्ण संसार रूपी समुद्र को पार कर जाता है (तर जाता है) ॥१२॥

सुवर्णे पाषाणे स्तुतिवचसि कुत्साक्षरचये
विषे वा श्रीखण्डे गिरिकुहरगर्भे च भवने।
कलावत्यां यष्टौ समदृशि जने कोऽपि विमलो
भवध्वान्तोच्छेदोच्छलितरविरेकः प्रभवति॥१३॥

अन्वय-सुवर्णे पाषाणे स्तुतिवचसि कुत्साक्षरचये विषे वा श्रीखण्डे च भवने कलावत्याम् यष्टौ च समदृशि जने कोऽपि एकः भवध्वान्तोच्छेदोच्छलित- रविः प्रभवति॥१३॥

अनुवाद-सुवर्ण में, पाषाण में, स्तुतिवाक् में, कुत्साक्षरसमूह में, विष में या श्रीखण्ड में, पर्वत की कन्दरा के अन्दर, घर में, चाँदनी में, यज्ञ में और समदर्शी मनुष्य में, कोई एक संसाररूपी अन्धकार के विनाश के लिए उच्छलित सूर्य जन्म ले रहा है॥१३॥

कामोच्छेदैककामः प्रकशति सुधियां लोभविध्वंशलोभः
कोपः कोपे च मोहोत्करकलितजगद्वस्तुसङ्गे च मोहः।
तृष्णाभावैकतृष्णा परमपदसमासङ्गमस्यैकचिन्ता
लोकासङ्गे च शोको हरणमपि समस्तागमार्थस्य नित्यम्॥१४॥

अन्वय- कामोच्छेदैककामः, लोभविध्वंशलोभः, कोपे कोपः, मोहोत्करकलित-जगद्वस्तुसङ्गे मोहः, तृष्णाभावैकतृष्णा, च परमपदसमासङ्गमस्यैकचिन्ता, च लोकासङ्गे शोकः च समस्तागमार्थस्य नित्यम् हरणम् सुधियां प्रकशति॥१४॥

अनुवाद-काम का उच्छेद करने के लिए एकमात्र काम, लोभ का विध्वंश करने के लिए लोभ, कोप के प्रति कोप, मोहसमूह से सम्पादित संसार की वस्तुओं की आसक्ति समाप्त करने के प्रति मोह, तृष्णा भाव को समाप्त कर देने के लिए एकमात्र तृष्णा और संसार की आसक्ति के प्रति शोक तथा समग्रशास्त्रों के अर्थों का प्रतिदिन ग्रहण (अभ्यसन) रूप कार्य, विद्वानों का प्रकाशित हो रहा है। (अर्थात्

विद्वानों के ये उपर्युक्त कार्य प्रतिदिन प्रकाशित होते रहते हैं। सम्पन्न होते रहते हैं)॥१४॥

गाढध्यानसमुद्रमज्जनवशादानन्दसान्द्रो लयो
यस्यार्थं मुनिपुङ्गवे विकसति स्वैरं कदाचित्स्वयम्।
लब्ध्वा तं च मुनीश्वरा जगदिदं पश्यन्ति रज्ज्वाहिवद्
विश्वोत्पादनधारणक्षयविदे कस्मैचिदस्मै नमः॥१५॥

अन्वय- गाढध्यानसमुद्रमज्जनवशात् आनन्दसान्द्रो लयः कदाचित् मुनिपुङ्गवे स्वयं विकसति। यस्य तम् अर्थम् लब्ध्वा मुनीश्वराः इदं जगत् रज्जौ अहिवत् पश्यन्ति। कस्मैचिद् विश्वोत्पादनधारणक्षयविदे अस्मै नमः॥१५॥

अनुवाद- कठोर ध्यान के समुद्र में डूबने के कारण आनन्द से सान्द्र (परमतत्त्व में) लय (लीन हो जाने का साधनाक्रम) कभी श्रेष्ठ मुनि (मुनियों) में स्वयं विकसित होता है। जिसके उस अर्थ को ग्रहण कर मुनिश्रेष्ठ इस संसार को रज्जु में सर्प की भ्रान्ति की बुद्धि से देखते हैं। किसी विश्वोत्पत्ति-पालन एवं विनाश के जानकार ऐसे (मुनि) को नमस्कार है॥१५॥

॥इति श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचिते सकलरससारसङ्ग्रहे शान्तरसप्रकरणम्॥

॥ श्रीमैथिलाभिनवकालिदासविरचितसकलरससारसङ्ग्रह में शान्तरसप्रकरण समाप्त ॥

पुष्पिकापद्यद्वयम्

नानालङ्कारपूर्णा सुललितवचनन्यासतो व्यङ्ग्यमर्थं
सद्भावा बोधयन्ती मधुरनवरसोन्मीलिता नैकभङ्गिः।
दृक्पातादेव सद्यो रसिकजनमनस्याविशन्तीव चेतो-
मोदं केषां न कुर्यान्मम कृतिरपरा मोदिनीवाङ्गनेयम्॥१॥

अन्वय-नाना-अलङ्कारपूर्णा सद्भावा सुललितवचनन्यासतः व्यङ्ग्यम् अर्थम् बोधयन्ती नैकभङ्गिः मधुरनवरसोन्मीलिता सद्यः दृक्पातात् एव रसिक जनमनसि आविशन्ती इव इयं मम अपरा कृतिः आमोदिनी अङ्गना इव केषां चेतो मोदं न कुर्यात्॥१॥

अनुवाद-नाना प्रकार के अलङ्कारों से पूर्ण, सुन्दर भावों वाली, सुललित वचनन्यास से व्यङ्ग्यार्थ को प्रकाशित करती हुई, अनेक भङ्गिमाओं वाली, मधुर एवं नवरसों से

उन्मीलित, सद्यः नजर पड़ते ही रसिक जनों के मन में मानो प्रवेश करती हुई यह मेरी बेजोड़ (अद्वितीय) कृति, (नायिका पक्ष में) अनेक प्रकार के आभूषणों से परिपूर्ण, अनुकूल भावों (विचारों) वाली सुन्दर मधुर वचन प्रयोग से बोद्धव्यवैशिष्ट्यानुरूप सहृदयरमणीय विलक्षण अर्थ का बोध कराती हुई, अनेकविच्छित्तियों (वाग्विच्छित्तियों एवं नेत्रविच्छित्तियों) वाली, मधुर एवं नित्य नवीन कामोन्मादयुक्तशृङ्गाररसाभिव्यञ्जनहेतु आँखों को उन्मीलित किए हुए, सद्यः नजर गिराते ही कामिजनों के मन में मानों उतरती हुई (प्रवेश करती हुई) आनन्दित करने वाली नायिका की भाँति, किसके चित्त को आनन्दित नहीं करती है, अर्थात् सब के चित्त को आनन्दित करती है॥ (सब के चित्त को आनन्दित करे, भविष्य में भी करती रहे)॥१॥

कालुष्यं कवितासु कुत्रचिदपि स्यादेव नैवं जना
जाग्रत्काव्यविचारकौशलवशाद् व्यग्रं कुरुध्वं मनः।
एतस्मिन्नवकालिदासरचनाव्यापारलीलाविधौ
नीलाम्भोधरसुन्दरद्युतिदृशोरुन्मीलनं साधनम्॥२॥

अन्वय- जनाः! कवितासु कुत्रचित् अपि कालुष्यं स्यात् एव। एवं जाग्रत्काव्यविचारकौशलवशात् मनः व्यग्रं न कुरुध्वम्। एतस्मिन् नवकालिदासरचनाव्यापारलीलाविधौ नीलाम्भोधरसुन्दरद्युतिदृशोः उन्मीलनम् साधनम्॥२॥

अनुवाद-हे लोगो! कविताओं में कहीं भी कालुष्य (दोष) हो ही जाता है, इस प्रकार (मानकर) जीवन्त काव्यसमीक्षण के कौशलवश मन को व्यग्र न कीजियेगा। इस अभिनव कालिदास की रचना के व्यापार की लीलाविधि (लीलाव्यवहृति) में नीले बादलों की तरह सुन्दर द्युति को धारण करने वाले (भगवान् श्रीविष्णु) के नेत्रों का उन्मीलन ही साधन है॥२॥

समाप्तः अयं ग्रन्थः

यह ग्रन्थ समाप्त

माघे मासि सिते पक्षे चतुर्दश्यां मन्दवासरे समाप्तम्

माघमास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को शनिवार के दिन समाप्त

संवत् १८६६

लिखितमिदं मुनीलालमिश्रवैद्येन

मुनीलाल मिश्र वैद्य के द्वारा लिखा गया

□□





राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

(गङ्गानाथझा-अनुसन्धानसंस्थानम्)

प्रयागः

२०११